प्रथम संस्करण : १९४०
आठवी आवृत्ति · १९६९

मूल्य ८ ००

प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
८ फैज बाजार, दिल्ली-६
मुद्रक नवीन प्रेस, यूनिट-२
ओखला-नयी दिल्ली-२०

स्वर्गीय पितृव्य

पूज्य 'पण्डितजी' के चरणों में

आठवीं आवृत्ति पर

'हिन्दी साहित्य की भूमिका' की यह आवृत्ति 'राजकमल प्रकाशन' की ओर से प्रकाशित हो रही है। इतना ही इसमें नयापन है। इस पुस्तक को सहृदय पाठकों ने प्रेमपूर्वक अपनाया है और मेरे प्रयत्नों को मान दिया है। इससे मुझे बहुत संतोष हुआ है। मुझे आशा है कि इस नये संस्करण से उन्हें भी संतोष होगा।

दिल्ली
६.८.६६

हजारीप्रसाद द्विवेदी

द्वितीय संस्करण की भूमिका

'हिन्दी साहित्य की भूमिका' के पुनर्मुद्रण तो अनेक बार हुए हैं, पर उनमें परिवर्तन नहीं हुए थे। इस बीच हिन्दी में शोध-कार्य की काफी प्रगति हुई है और मेरे विचारों में भी कुछ परिवर्तन हुए हैं। इसीलिए 'भूमिका' को एक बार फिर नये सिरे से देखने की आवश्यकता हुई। अपभ्रंश के सम्बन्ध मे नई जानकारियाँ जोड़ दी गई हैं और भक्ति-साहित्य की चर्चा में भी कहीं-कहीं परिवर्तन किये गये हैं। प्रयत्न किया गया है कि यथा-सभव नई जानकारियाँ आ जायँ, परन्तु पुस्तक का कलेवर भी बहुत न बढ़े। आशा है, पाठकों को इस सामान्य परिवर्तन-परिवर्धन से सन्तोष होगा।

७.५.५६

हजारीप्रसाद द्विवेदी

निवेदन

'विश्वभारती' के अहिन्दी-भाषी साहित्यिकों को हिन्दी साहित्य का परिचय कराने के बहाने इस पुस्तक का आरम्भ हुआ था। बाद में कुछ नये अध्याय जोड़कर इसे पूर्ण रूप देने की चेष्टा की गई है। मूल व्याख्यानो मे से ऐसे बहुत से अंश छोड़ दिये गये हैं जो हिन्दी-भाषी साहित्यिकों के लिए अनावश्यक थे। फिर भी इस बात का यथासंभव ध्यान रखा गया है कि प्रवाह में बाधा न पड़े। इसके लिए कभी-कभी कोई-कोई बात दो जगह भी आ जाने दी गई है। ऐसा प्रयत्न किया गया है कि हिन्दी साहित्य को सम्पूर्ण भारतीय साहित्य से विच्छिन्न करके न देखा जाय। मूल पुस्तक मे बार-बार संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश के साहित्य की चर्चा आई है, इसीलिए कई लम्बे परिशिष्ट जोड़कर संक्षेप में वैदिक, बौद्ध और जैन साहित्यो का परिचय करा देने की चेष्टा की गई है। रीति-काव्य की विवेचना के प्रसंग में कवि-प्रसिद्धियाँ और स्त्री-अंग के उपमानों की चर्चा आई है। मध्य-काल की कविता के साथ संस्कृत कविता की तुलना के लिए आवश्यक समझकर परिशिष्ट मे इन दो विषयों पर भी अध्याय जोड़ दिये गये है।

श्री प० नाथूरामजी प्रेमी ने जिस प्रेम और उत्साह से इस ग्रथ को छापा है उसके लिए लेखक उनका सदा कृतज्ञ रहेगा। प्रेमीजी ने प्रेमपूर्वक इसे सुन्दर रूप मे उपस्थित ही नही किया है, आवश्यक स्थानों पर परिवर्तन-परिवर्धन की भी बातें सुझाकर पुस्तक को अधिक त्रुटियुक्त होने से बचा लिया है।

बौद्ध साहित्य वाले अध्याय मे प्रो० विंटरनित्स, पं० विधुशेखर शास्त्री और श्री वेणीमाधव बाड़ुआ के लेखो से बहुत सहायता मिली है। पुस्तक जब प्रेस मे थी तब श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने भी इसके एक अंश की आलोचना करके लेखक की सहायता की है। शान्तिनिकेतन के पाली और सस्कृत के अध्यापक पण्डित-प्रवर श्री नित्यानन्द विनोद गोस्वामी ने इसे देख लिया था और आवश्यक सुधार सुझाये थे। इन बातो के लिए लेखक सभी का अत्यन्त कृतज्ञ है।

सन्त-साहित्य के सम्बन्ध में लिखते समय आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन महाशय से अनेक स्थानो पर बहुत सहायता मिली है। लेखक के ऊपर उनका स्नेह इतना अधिक रहा है कि इस स्थान पर उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने मे भी उसे बहुत संकोच हो रहा है।

अनेक विद्वानो की लिखी हुई अनेक पुस्तको से सहायता मिली है। पुस्तको मे ही यथा-स्थान उनका उल्लेख कर दिया गया है। वस्तुतः इस पुस्तक में जो कुछ भी अच्छा है वह अन्य विद्वानों की चीज है, लेखक का काम संग्रह करना ही अधिक रहा है। सबके प्रति वह अपनी कृतज्ञता निवेदन करता है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी

विषय-सूची

आप ही है। मूल कथानक मे जितने भी चरित्र है वे अपने-आप मे ही पूर्ण है। भीष्म जैसा तेजस्वी और ज्ञानी, कर्ण जैसा गम्भीर और वदान्य, द्रोण जैसा योद्धा, बलराम जैसा फक्कड़, कुन्ती और द्रौपदी जैसी तेजोद्दप्त नारियाँ, गान्धारी जैसी पतिपरायणा, श्रीकृष्ण जैसा उपस्थित-बुद्धि और गम्भीर तत्त्वदर्शी, युधिष्ठिर जैसा सत्यपरायण, भीम जैसा मस्तमौला, अर्जुन जैसा वीर, विदुर जैसा नीतिज्ञ चरित्र अन्यत्र दुर्लभ है। मूल कथानक को छोड दिया जाए, तो भी महाभारत के वर्णित नल और दमयन्ती, सावित्री और सत्यवान, कच और देवयानी, शर्मिष्ठा और चित्रागदा आदि चरित्र ससार के साहित्य मे बेजोड है।

महाभारत का शायद ही कोई उत्तम चरित्र महलो के भीतर पलकर चमका हो। सब-के-सब एक तूफान के भीतर से गुज़रे है। अपना रास्ता उन्होने स्वय बनाया है और अपनी रची हुई विपत्ति की चिन्ता मे वे हँसते-हँसते कूद गये है। महाभारत का अदना-से-अदना चरित्र भी डरना नही जानता। किसी के चेहरे पर कभी शिकन नही पड़ने पाती। पाठक महाभारत पढते समय एक जादू-भरे वीरत्व के अरण्य मे प्रवेश करता है जहाँ पद-पद पर विपत्ति है, पर भय नही है, जहाँ जीवन की चेष्टाएँ बार-बार असफलता की चट्टान पर टकराकर चूर-चूर हो जाती हैं, पर चेष्टा करने वाला हतोत्साह नही होता; जहाँ गलती करने वाला अपनी गलती पर गर्व करता है, प्रेम करने वाला अपने प्रेम पर अभिमान करता है और घृणा करने वाला अपनी घृणा का खुलकर प्रदर्शन करता है। वहाँ सरलता है, दर्प है, तेज है, वीर्य है, महाभारत की नारी अपने नारीत्व पर अभिमान करती है, पुरुष इस अभिमान की रक्षा के लिए अपने को मृत्यु के हाथ सौंप देता है। प्राचीन भारत का, उसके समस्त दोष-गुणो के साथ, ऐसा सुन्दर और सच्चा निदर्शन दूसरा नही।

महाभारतका वर्तमान रूप

इस बात का निश्चित प्रमाण पाया गया है कि सन् ईसवी की ५वी शताब्दी मे महाभारत अपने वर्तमान रूप को धारण कर चुका था। सन् ४६३ ई० (या अधिक-से-अधिक ५३२ ई०) का एक दान-पत्र पाया गया है जिसमे स्पष्ट लिखा है कि वेद-व्यास ने महाभारत मे एक लाख श्लोक लिखे थे। महाभारत के सबसे लम्बे शान्ति और अनुशासन पर्व और हरिवश भी निश्चय ही उस समय लगभग अपने इसी रूप मे वर्तमान होगे, क्योकि बिना इन सबको मिलाये महाभारत के श्लोको की सख्या एक लाख नही हो सकती। ४५०-५०० ई० के आस-पास के ऐसे अनेक दान-पत्र पाये गये है, जिनमे महाभारत के श्लोक धर्म-शास्त्र के विधान मानकर उद्धृत किये गये है। उत्तरी बौद्ध धर्म की अनेक पुस्तके, जो मूल सस्कृत मे लुप्त हो गई है पर चीनी अनु-वाद के रूप मे सुरक्षित है, इस बात की प्रमाण हैं कि ३३० ई० के लगभग भारतीय समाज मे महाभारत पर बड़ी श्रद्धा थी। जो ग्रन्थ ई० सन् की पाँचवी शताब्दी मे आज का वर्तमान रूप धारण कर गया था और इस प्रकार श्रद्धा और आदर का ग्रन्थ

हो चुका था, उसने निश्चय ही कई सौ वर्ष पहले रूप-परिवर्तन करना बन्द कर दिया होगा। इसीलिए पण्डितो का अनुमान है कि कम-से-कम आज से दो हज़ार वर्ष पहले महाभारत को यह विशाल रूप प्राप्त हो गया होगा।

महाभारत के जितने रूप है, उनमे दो मुख्य है उत्तरी रूप और दक्षिणी रूप। इतना निश्चित है कि किसी एक ही मूल रूप के ये दो रूपान्तर अति प्राचीन काल मे पृथक् हो गये थे। उत्तरी रूपान्तर के कई उपभेद है जो मूलत. एक होकर भी कई वातो मे अपना विशेष रूप रखते है। काश्मीर मे उत्तरी रूपान्तर दो उपभेदो मे वँट गया है: शारदा मे लिखा हुआ और देवनागरी लिपि मे लिखा हुआ। पूर्वी प्रान्तो मे आकर उत्तरी महाभारत ने तीन भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण किये है . नेपाली, मैथिली और वगाली। ये तीनो रूप अपनी-अपनी विशेष लिपियो मे लिखे पाये जाते है। युक्तप्रान्त और मध्यप्रदेश मे उत्तरी महाभारत का एक सामान्य रूप पाया जाता है जिसे पण्डितो ने देवनागरी रूपान्तर नाम दिया है। इस प्रकार उत्तर में आकर महाभारत ने छ भिन्न-भिन्न रूप धारण किये है।

दक्षिणी महाभारत के तीन मुख्य रूप हैं—मलयालम, तेलुगु और ग्रन्थलिपि मे लिखा हुआ। तेलुगु और ग्रन्थ-लिपियो के पाठ प्राय. मिलते है, पर मलयालम का महाभारत इन दोनो से अलग है। किसी-किसी पण्डित के मत से यह अन्तिम महा-भारत अपने मूल रूप के वहुत निकट है।

महाभारत का काल

स्वभावत ही यह प्रश्न हो सकता है कि महाभारत का काल क्या है ? जैसा कि पहले ही वताया जा चुका है, निश्चयपूर्वक इतना ही कहा जा सकता है कि आज से लगभग दो हजार वर्ष पहले महाभारत को वर्तमान रूप प्राप्त हो चला था, परन्तु महाभारत की अनेक कहानियाँ उतनी ही पुरानी है जितने कि स्वय वेद। महाभारत के काल के सम्वन्ध मे नाना विचारो की अवतारणा के बाद प्रो० विण्टरनित्ज निम्न-लिखित नौ सिद्धान्तो पर पहुँचे है—

(१) महाभारत की कितनी ही पौराणिक कहानियाँ, काव्य और वर्णनात्मक कथाएँ वैदिक काल तक पहुँचती है। (२) लेकिन वैदिक काल मे 'भारत' या 'महा-भारत' नामक किसी काव्य का अस्तित्व नही था। (३) नीति-सम्वन्धी कितनी ही सूक्तियाँ और कथाएँ जो वर्तमान महाभारत के अन्तर्गत सगृहीत है, वैराग्य-प्रवण सम्प्रदायो (जैन, वौद्ध आदि) से ग्रहण की गई है। इनमे से कितनी ही ईसवी सन् से पूर्व की छठी शताव्दी तक की हो सकती है। (४) यदि ई० पूर्व की छठी से लेकर चौथी शताव्दी तक कोई महाभारत नामक काव्य-ग्रथ रहा भी हो, तो यह वौद्धधर्म की आवास-भूमि मे अपरिचित ही था, क्योकि वौद्ध ग्रथो मे इसकी कोई चर्चा नही मिलती। (५) ई० पूर्व की चौथी शताव्दी से पहले महाभारत-काव्य के अस्तित्व का कोई निश्चित प्रमाण नही पाया जाता। (६) सन् ई० के पूर्व की चौथी शताव्दी से

लेकर ई० सन् के बाद की चौथी शताब्दी तक महाभारत बनता और सगृहीत होता रहा। सम्भवत क्रमश ही इसने वर्तमान रूप धारण किया था। (७) ई० सन् की चौथी शताब्दी मे महाभारत ने सब मिलाकर यह वर्तमान रूप धारण कर लिया था। (८) बाद की शताब्दियो मे भी छोटे-मोटे आख्यान और फुटकर श्लोक, कुछ-न-कुछ, मिलते ही रहे। (९) सारे महाभारत का एक काल नही है। काल-निर्णय करते समय इसके प्रत्येक भाग का काल-विचार अलग-अलग से होना चाहिए।

: ३ :

रामायण और पुराण

महाभारत की भाँति ही रामायण ने भी भारतीय जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया है। परन्तु महाभारत जिस प्रकार अनेक कवियो की लेखनी से लिखे हुए अनेक कवियो का विराट विश्वकोष है, उस प्रकार रामायण नही है। सारा-का-सारा काव्य प्रायः एक ही हाथ का लिखा हुआ है। प्रक्षिप्त अश इसमे भी है, पर वह महाभारत से भिन्न जाति का है। विश्वास किया जाता है कि यह वैदिक साहित्य के बाद मानव कवि का लिखा हुआ पहला काव्य है। इसीलिए इसके रचयिता वाल्मीकि को आदि-कवि और इसे आदि-काव्य कहते है। विद्वानों की परीक्षा से भी यह सिद्ध हुआ है कि रामायण सचमुच काव्य (अलकृत काव्य या ornate poetry) जाति के ग्रथो मे सबसे पहला है। वाल्मीकि सचमुच ही एक ही कवि रहे होगे, इस विषय में विद्वानो मे मतभेद नही है। यह भी सभव है कि मूल मे इस काव्य का जो रूप रहा हो वह महाभारत से पूर्ववर्ती हो, परन्तु उसका वर्तमान रूप महाभारत के बाद का है। कहते हैं कि ससार के समूचे साहित्य मे इस प्रकार का लोकप्रिय काव्यजातीय ग्रथ नही है। समूचा भारतवर्ष एक स्वर से इसे पवित्र आदर्श काव्य-ग्रथ मानता है और सम्पूर्ण भारतीय साहित्य का आधा इस महाकाव्य के द्वारा अनुप्रमाणित है। काव्य के आरम्भ मे ही ऐसी भविष्यवाणी की गई है जो अक्षरश सत्य सिद्ध हुई है।

प्रत्येक युग के आचार्य, कवि और नाटककार इस महाग्रथ से चालित हुए है। कालिदास और भवभूति की रचनाओ मे इसका प्रभाव है और चौदहवी शताब्दी के बाद के लोक-साहित्य मे इसका बहुत अधिक प्रभाव विद्यमान है। लोक-जीवन पर भी इसका जबर्दस्त प्रभाव है। लोकप्रिय होने के कारण इसमे निरन्तर कुछ-न-कुछ प्रक्षेप होते रहे है और इस प्रकार इसका वर्तमान आकार २४००० श्लोको का हुआ है। विद्वानो का अनुमान है कि मूल काव्य मे राम विष्णु के अवतार नही कहे गये होगे, बाद मे चलकर मूल ग्रथ मे इस प्रकार की बाते प्रक्षेप की गई होगी। बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड निश्चित रूप से परिवर्ती रचनाएँ है। इन्ही दोनो मे राम को विष्णु का अवतार बताया गया है और दूसरे से छठे काण्ड तक रामचन्द्र लौकिक नायक की भाँति अकित किये गये हैं। ऐसे स्थल बहुत कम है (और ये निश्चय ही प्रक्षिप्त है) जहाँ उन्हे विष्णु का अवतार बताया गया हो। कभी-कभी बालकाण्ड की घटनाओ के विरुद्ध कही हुई बातें भी अन्य काण्डो मे मिल जाती है। उदाहरणार्थ, बालकाण्ड मे राम के साथ ही अन्यान्य भाइयो की भी शादी हो गई है, पर आगे चलकर शूर्पणखा

के प्रसंग मे राम ने बताया है कि लक्ष्मण की शादी नही हुई है। दूसरे से छठे काण्ड तक मे जो पौराणिक कहानियाँ आती है, वे काफी पुरानी है।

सारे भारतवर्ष मे रामायण के कई रूप मिलते हैं जिनमे परस्पर बडा भेद है। कभी-कभी कई सर्ग एक प्रति मे अधिक होते है और दूसरी मे कम। साधारणत. तीन सस्करण अब तक मुद्रित होकर प्रचारित हुए है। अधिक प्रचलित बम्बई वाला सस्करण है जो कई बार छप चुका है। बगाली सस्करण भी कलकत्ते से कई बार छप चुका है। उत्तरी या काश्मीरी सस्करण प्रकाशित करने का भी प्रयत्न हो रहा है। जैकोबी का कहना है कि सम्पूर्ण भारतवर्ष के प्रचलित पाठ-भेदो को छोड देने से रामायण का मूल रूप आसानी से पाया जा सकता है,—अन्तत. उसका खोज निकालना उतना कठिन नही है जितना महाभारत का। सम्भवत सब छोड़-छाडकर २४००० श्लोको मे से केवल एक-चौथाई बच रहे।

महाभारत की भाँति रामायण के काल के सम्बन्ध मे कुछ भी निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। इतना निचिश्त है कि महाभारत के वर्तमान रूप प्राप्त होने के पहले ही रामायण को वर्तमान रूप प्राप्त हो गया था। महाभारत के वनपर्व मे केवल रामायण की कथा ही नही आती, वाल्मीकि कवि की चर्चा, राम का विष्णु अवतार होना आदि बाते भी पाई जाती है। कुछ कहानियाँ, जिन्हे पण्डित-मण्डली बाद की प्रक्षिप्त मानने मे नही हिचकती (जैसे हनुमान का लका दाह) महाभारत मे पाई जाती है। इन सब बातो से यह सिद्ध होता है कि रामायण के वर्तमान रूप का ही सक्षिप्त रूप महाभारत मे जोडा गया है। जिस प्रसग मे वह कहानी महाभारत मे कही गई है, वह भी मूल कथा के साथ कुछ विशेष योग नही रखती। द्रौपदी को कोई राक्षस चुरा ले जाता है और युधिठिर दुखित होते है। उन्ही को उत्साहित करने के लिए रामोपाख्यान सुनाया जाता है। अनुमान किया गया है कि द्रौपदी-हरण की यह कहानी सीता-हरण के आदर्श पर ही रची गई होगी। महाभारत को वर्तमान रूप चौथी शताब्दी मे प्राप्त हो गया था, रामायण उससे दो-एक शताब्दी पहले ही यह रूप पा गया होगा। किन्तु इससे यह नही समझना चाहिए कि समूचा रामायण समूचे महाभारत से पुराना है। असल मे, जैसा कि एक यूरोपियन पडित ने कहा, भारतीय साहित्य के इतिहास मे यह अद्भुत विरोधाभास है कि रामायण महाभारत से प्राचीन है और महाभारत रामायण से प्राचीन। असल में महाभारत के अनेक उपाख्यान निश्चित ही रामायण से भी पूर्ववर्ती है। इनमे से कई की चर्चा रामायण मे भी आती है, जैसे नल, सावित्री आदि के उपाख्यान। परन्तु सम्पूर्ण रामायण मे पाण्डवो की कही चर्चा नही मिलती। यह अनुमान किया गया है कि राम का विष्णु रूप मे अवतार माना जाना कृष्ण के अवतार माने जाने के बाद की कल्पना है, यद्यपि राम कृष्ण के पूर्ववर्ती अवतार है। इसके सिवा रामायण मे वर्णित सभ्यता उतनी लड़ाकू नही है जितनी महाभारत मे वर्णित सभ्यता है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि रामायण उत्तरकालीन समाज के कवि की रचना है और महाभारत पूर्वकालीन समाज के।

जिन दिनो त्रिपिटक की रचना (सकलन) हुई थी, उन दिनो राम की कथा जरूर प्रचलित रही होगी। जातक कथाओ मे इसके प्रमाण है पर रामायण काव्य शायद ही रहा हो। सारे बौद्ध साहित्य मे रामायण के दो प्रसिद्ध चरित्र रावण और हनुमान का नाम भी नही पाया जाता। इस पर से किसी-किसी ने अनुमान किया है कि रामायण काव्य बौद्ध-युग मे बना होगा। बना भी हो तो बौद्ध प्रदेशो मे अज्ञात रहा होगा लेकिन सम्पूर्ण रामायण मे बौद्ध प्रवाह खोजने पर भी नही मिलेगा। केवल एक जगह राम के मुख से बुद्ध को नास्तिक कहलवाया गया है पर वह सभी प्रतियों में नही पाया जाता और प्रक्षिप्त सिद्ध हो चुका है। साथ ही इस प्रकार यह भी प्रमाणित होता है कि रामायण बौद्ध-काल के पहले ही रचित हो गया था। अवश्य ही प्रक्षेप बाद मे भी होता रहा होगा। पर प्रक्षेप सन् ईसवी की पहली शताब्दी के बाद रुक गया होगा। खोज करने पर रामायण की कथा का बौद्धो और जैनो मे समाहृत होना पाया जा सकता है। वसुबन्धु के ग्रन्थो के जो चीनी अनुवाद सुरक्षित है, उनसे स्पष्ट है कि रामायण (लगभग इसी रूप मे) बौद्धो मे भी समादृत थी। सन् ईसवी की पहली शताब्दी मे विमलसूरि ने रामायण की कथा को आश्रय करके 'पउमचरिय' नामक प्राकृत काव्य लिखा था जो जैन धर्म और तत्त्ववाद के अनुकूल रचा गया था। ६०० ई० के आसपास कबोडिया मे रामायण का धार्मिक ग्रन्थ के रूप मे प्रचार पाया जाता है। कनिष्क युगीय बौद्ध कवि अश्वघोष के बुद्ध-चरित मे ऐसे अश हैं जो रामायण से मिलते-जुलते हैं। इन सब बातो से सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि मूल रामायण बौद्ध युग के पहले का है।

पुराण और उपपुराण

पुराण शब्द का अर्थ है 'पुराना', इसलिए पुराण-ग्रन्थो से मतलब उन ग्रन्थो से है जिनमे प्राचीन आख्यायिकाएँ सगृहीत हो। ब्राह्मणो, उपनिषदो और बौद्ध ग्रन्थो मे यह शब्द कभी-कभी इतिहास शब्द के साथ आया है और कभी-कभी 'इतिहास' के अर्थ मे। कौटिल्य अर्थशास्त्र (१-५) के अनुसार इतिहास मे पुराण और इतिवृत्त दोनो ही शामिल हैं। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि पुराण इतिवृत्त से भिन्न वस्तु है। जो हो, पुराणो ने उत्तरकालीन हिन्दू धर्म को एकदम नया रूप दे दिया है और सच पूछा जाय तो सन् ईसवी के बाद का हिन्दू धर्म मे धीरे-धीरे पौराणिक होते-होते अन्त मे सम्पूर्णरूप से पौराणिक हो गया। लेकिन इसका अर्थ यह नही कि भारतीय साहित्य मे पुराण-साहित्य कोई नई चीज है। गौतम धर्मसूत्र मे (११-१९) पुराण-साहित्य की स्पष्ट ही चर्चा है और आपस्तबीय धर्मसूत्र मे तो पुराणो से कई श्लोक उद्धृत किये गये है। एक ऐसा ही श्लोक 'भविष्यत्-पुराण' से उद्धृत किया गया है। इसीलिए 'भविष्य-पुराण' जैसे सर्वजन-स्वीकृत आधुनिक पुराण भी कितने प्राचीन हैं, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। वर्तमान भविष्य पुराण मे यह श्लोक नही मिलता, पर उससे मिलता-जुलता श्लोक खोज निकालना मुश्किल नही है। यह तो निर्विवाद है

कि कम-से-कम पाँचवी शताब्दी ईसवी पूर्व के पहले ये धर्मसूत्र बन गये थे, इसीलिए इस काल के पहले भी पुराण-जातीय ग्रन्थ रहे होगे, यद्यपि उनका आकार-प्रकार हू-ब-हू वही नही होगा जो आज के पुराणों का है। पुराण-ग्रन्थ काफी लोक-प्रचलित रहे है इसलिए उनमे परिवर्तन-परिवर्धन भी यथेच्छ हुआ है। परन्तु इसीलिए पुराण साहित्य की प्राचीनता पर सन्देह नही किया जा सकता। विद्वानो का अनुमान है कि इन पुराणो मे वैदिक काल के पूर्ववर्ती काल का इतिहास भी कही-कहीं पाया जाता है। महाभारत बनने के पहले पुराण-जातीय ग्रन्थ वर्तमान थे, इस विषय मे अब कोई सन्देह नही करता। एक समय ऐसा गया है जब इन ग्रन्थो को अप्रामाणिक कहकर उडाने की चेष्टा की गई थी; परन्तु अब इतिहास-अनुरागी उन्हे बहुत अमूल्य निधि मानने लगे है। उनमे की बेहूदी बातें उत्तरकालीन पण्डितों की कृति समझी जाती है। असल मे लगभग डेढ हज़ार वर्ष पहले से लेकर आज तक पुराण बहुत अविकसित बुद्धि के लोगो के हाथ मे रहे है और फलतः उनमे बेहूदी बाते इतनी आ घुसी है कि पुराणो का मूल रूप खोज निकालना बड़ा दुष्कर कार्य हो गया है। पुराणो के लक्षण मे बताया गया है कि उनमे सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग, वश, मन्वन्तर और वशानुचरित इन पाँच बातो का वर्णन होना चाहिए। पुराणो की वशावलियाँ और उनकी कथाएँ निश्चय ही बहुत पुरानी है। पुराण के कर्ता व्यासजी ही माने जाते है।

पुराण नाम के ग्रन्थ बहुत है। पुराणो और उपपुराणो की सख्या सौ से ऊपर होगी। परन्तु सभी बडे-बडे पुराण अठारह पुराणो की चर्चा करते हैं। इनका क्रम यद्यपि सर्वत्र एक-सा नही है और कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि एक सूची मे एक पुराण का नाम है और दूसरी मे दूसरे का, पर साधारणतः निम्नलिखित अठारह पुराणों को प्रामाणिक माना जाता है—

१ ब्राह्म, २ पाद्म, ३ वैष्णव, ४ शैव या वायवीय, ५ भागवत, ६ नारदीय, ७ मार्कण्डेय, ८ आग्नेय, ९ भविष्य, १० ब्रह्मवैवर्त, ११ लैंग, १२ वाराह, १३ स्कान्द, १४ वामन, १५ कौर्म, १६ मात्स्य, १७ गारुड, १८ ब्रह्माण्ड।

यह एक मजेदार बात है कि यह सूची प्रायः सब पुराणो मे दी हुई है (देखिए विष्णु० ३६, भागवत १२-१३, पद्म० १-६२, वराह० ११२, मत्स्य० ५३, अग्नि० २७२ इत्यादि)। अर्थात् यह प्रत्येक पुराण स्वीकार करता है कि उसकी रचना के पहले अन्यान्य पुराण बन चुके थे। इन पुराणो के सिवा १८ उपपुराण बताये गये हैं, पर असल मे उपपुराणो की सख्या और भी अधिक है। पौराणिक कथाओ के अनुसार ब्रह्मा ने सब पुराणो को कल्पादि मे पहले ही रचा था, उनसे मुनियो ने सुना और सुनकर भिन्न-भिन्न कल्प मे अलग-अलग सहिताएँ लिखी। इस कल्प के द्वापर युग के अन्त मे कलिकाल के अल्पज्ञ मनुष्यो के उपकारार्थ व्यासजी ने फिर से उन वचनो का सक्षेप करके पुराण-सहिताएँ लिखी। विष्णुपुराण के अनुसार वेदव्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा, कल्प-शुद्धि सहित पुराण-सहिता की रचना करके उसे सूत लोमहर्षण को समर्पित किया। लोमहर्षण के छः शिष्य थे—सुमति, अग्निवर्चा, मित्रायु, अकृतव्रण, शाखायन और

सार्वणि । अन्तिम तीन शिष्यो मे से प्रत्येक ने मूलसहिता को अवलवन करके अपनी एक एक सहिता वनाई । इन्ही चार सहिताओ पर से सभी पुराण वने है । इनमे सबसे आदि पुराण व्राह्म-पुराण ही है । इस कथा से मालूम होता है कि व्यासजी ने सव सहिताएँ नही लिखी थी । उन्होने किसी एक मूल सहिता की कथा अपने शिष्य को सुनाई थी । वही से शिष्य-प्रशिष्यो ने इन सहिताओ की अलग-अलग रचना की । वस्तुतः पुराणो की परीक्षा से इतना तो स्पष्ट ही है कि मूल रूप मे ये काफी पुराने हैं, पर इसमे भी सन्देह नही रह जाता कि अपने वर्तमान रूप मे ये अनेक लोगो की नाना उद्देश्यो से लिखी हुई कथाओ के सग्रह है ।

पुराणो के अध्ययन से कुछ वाते तो स्पष्ट ही आधुनिक जान पडती है । व्राह्म पुराण को यद्यपि आदि पुराण कहा जाता है पर उसमे उडीसा के तीर्थो के माहात्म्य का विशेष विवरण है जो निश्चय ही वाद का होना चाहिए । साधारणत सन् ईसवी की वारहवी शताब्दी तक इसने वर्तमान रूप धारण कर लिया होगा । पद्मपुराण मे वौद्धो और जैनो की वाते है और उसके पिछले खड और भी नये जान पडते है । विष्णुपुराण मे प्राचीनता के सभी लक्षण विद्यमान है । विष्णु के किसी वडे मन्दिर या मठ आदि की चर्चा इसमे नही आती । रामानुजाचार्य ने इस पुराण के वचन उद्धृत किये है । किसी-किसी ने अनुमान किया है कि विष्णुपुराण मे उल्लिखित कैलकिल या या कैकिल यवनो ने आन्ध्रदेश मे ५०० से ६०० ई० तक राज्य किया था, अतः इस पुराण का काल नवी शताब्दी से अधिक पुराना नही होना चाहिए । पर यह केवल कल्पना-ही-कल्पना है, किसी ऐतिहासिक प्रमाण से सिद्ध नही है । वायुपुराण सम्भवतः पुराने पुराणो का एक नमूना है । उसमे प्राचीनता के सभी लक्षण विद्यमान है । श्रीमद्भागवत समस्त पुराणो मे अधिक प्रसिद्ध और सारे भारत मे समादृत है । इसमे जो कवित्व है, वह वहुत ही ऊँचे दर्जे का है । रामायण और महाभारत की भाँति इसने भी भारतीय साहित्य को वहुत दूर तक प्रभावित किया है । अकेले बगाल मे ही इसके चालीस से अधिक अनुवाद हैं । हिन्दी मे भी इसके दशम स्कन्ध के अनुवादो की सख्या इससे कम न होगी । हिन्दी का गौरवभूत काव्य सूरसागर भागवत द्वारा ही प्रभावित है । किसी-किसी ने यह अफवाह उडा रखी है कि भागवत के कर्ता वोपदेव है, पर असल मे वोपदेव ने भागवत के अनेक वचन सग्रह करके एक निवन्ध-ग्रथ लिखा था । भागवत पुराण काफी पुराना है। सबसे वडी वात यह है कि अन्यान्य पुराणो की अपेक्षा यह एक हाथ की रचना अधिक है । इसमे विष्णु के सभी अवतारो का वर्णन हैं । विशेष रूप से श्रीकृष्ण अवतार की कथा है । नारदीय और वृहन्नारदीय पुराण वहुत-कुछ माहात्म्य ग्रन्थ-से है और उत्तरकालीन रचना जान पडते है । मार्कण्डेय पुराण भी काफी पुराना है यद्यपि किसी-किसी ने इसे नवी-दसवी शताब्दी की रचना सिद्ध किया है । अग्निपुराण नाना विपयो का एक विशाल विश्वकोप है। नाना भारतीय विद्याएँ, जिन पर लिखे गये स्वतन्त्र ग्रथ अधिकाश लोप हो गये है, इसमे सुरक्षित है । भारतीय साहित्य के विद्यार्थियो के लिए इसका मूल्य वहुत अधिक

है। भविष्य और ब्रह्मवैवर्त मे पुराणों के लक्षण नही मिलते। इसी प्रकार लिंग-पुराण भी एक कर्म-ग्रथ है। वाराह पुराण मे रामानुजाचार्य का उल्लेख है। ये सभी पुराण बहुत पुराने नही है। सबको अन्तिम रूप तेरहवी-चौदहवी शताब्दी मे प्राप्त हुआ जान पड़ता है। स्कन्दपुराण बहुत बडा और नाना दृष्टियो से काफी महत्त्वपूर्ण है। वामन, कूर्म, गरुड आदि मे पुराणो के सब लक्षण नही मिलते। इस प्रकार सभी पुराण बहुत प्राचीन नही है।

इन पुराणो से सम्बद्ध बहुत-से माहात्म्य और स्तोत्रो के ग्रथ है। समूचा पुराण साहित्य बहुत विशाल है। यह वर्तमान हिन्दू धर्म के समझने का सबसे बडा साधन है। यद्यपि इनमे परस्पर-विरोधी और अतिरजित घटनायें बहुत है, परन्तु बीच-बीच मे ऐसी अमूल्य साहित्यिक रचनाएँ और ऐतिहासिक उपादान है कि भारतीय साहित्य का विद्यार्थी कभी इनकी उपेक्षा नही कर सकता।

: ४ :

बौद्ध-साहित्य

वैदिक साहित्य की भाँति बौद्ध साहित्य भारतवर्ष के प्रागैतिहासिक युग से सम्वद्ध नही है। इस साहित्य का निर्माण जिन दिनो हुआ था, उस काल को निस्सदिग्ध रूप से पडितो ने ऐतिहासिक युग माना है। बुद्धदेव की मृत्यु ईसवी-पूर्व पाँचवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे हुई थी। लगभग पचास वर्षों तक वे धर्म का प्रचार करते रहे। इस प्रकार उनके धर्म-प्रचार समय निश्चित रूप से ईसवी पूर्व की पाँचवी शताब्दी का मध्य भाग है। एक श्रेणी के बौद्ध लोगो का विश्वास है कि लका, स्याम, ब्रह्मा आदि देशो मे प्रचलिन और पाली भाषा में लिखित जो बौद्ध-ग्रथ मिले है, उनमे के प्रधान-प्रधान बुद्धदेव के श्रीमुख से उच्चारित हुए थे। यदि यह विश्वसनीय हो, तो पाली-साहित्य के मुख्य भाग का काल आसानी से ई० पू० पाँचवी शताब्दी मे मान ले सकते हैं, लेकिन स्वय बौद्ध-ग्रन्थो मे ऐसी बाते है जो ऐसा विश्वास होने देने मे बाधक है। इतना तो ग्रंथो मे स्पष्ट ही है कि बुद्धदेव ने स्वय कोई ग्रथ नही लिखा। पाली-साहित्य (वस्तुतः 'पालि-साहित्य') मे जो कुछ है वह बुद्धदेव के वचनो का सग्रह या उसकी व्याख्या है। ग्रथो से पता चलता है कि ये संग्रह समय-समय पर आहूत बौद्ध सगीतियो या सम्मेलनो मे बड़े-बडे आचार्यों के निर्णयानुसार सगृहीत हुए थे। पाली-ग्रथो मे कुल मिलाकर ऐसी नौ सगीतियो का उल्लेख है। इनमे से जिन कई मुख्य संगीतियो का आलोच्य विषय के साथ बहुत अधिक सम्बन्ध है, उन्ही की चर्चा यहाँ की जायगी।

प्रथम सगीति बुद्धदेव के महानिर्वाण के कुछ ही दिनो बाद राजगह (राजगृह) मे स्थविर महाकाश्यप के उद्योग से हुई थी। उसका उद्देश्य धर्म और विनय का सस्थापन था। इस सगीनि का सबसे प्राचीन विवरण चुल्लवग्ग (जिसकी चर्चा आगे की जाएगी) मे पाया जाता है। चुल्लवग्ग स्वय ही विनयपिटक का एक अग है, इसलिए इतना तो निर्विवाद है ही कि समूचा विनयपिटक सम्पूर्णत॰ इस सगीति की पूर्ववर्ती बातो का ही सग्रह नही है। जिस बात मे सबसे कम आपत्ति की गुजाइश है, वह यह कि धम्म और विनयपिटक के प्राचीनतम भाग इसी सगीति मे निर्धारित हुए होगे और यदि बुद्धदेव ने सचमुच पाली भाषा मे ही उपदेश दिया था (जिसमे बहुत-से पडित अब सदेह करने लगे हैं) तो मानना पडेगा कि हमारे पास बहुत-कुछ बुद्धदेव के ज्यो-के-त्यो कहे हुए वचन भी प्राप्त है। दूसरी महत्त्वपूर्ण सगीति बुद्ध-निर्वाण के सौ वर्ष बाद वेसाली (वैशाली) मे हुई थी। इसका भी सबसे प्राचीन विवरण चुल्लवग्ग मे ही मिलता है; पर इसमे यह नही लिखा है कि यह सगीति बुद्ध-निर्वाण के सौ वर्ष के बाद हुई थी। बाद के ग्रन्थो

(दीपवश और महावश) के अनुसार इस सगीति का उक्त समय बताया गया है। प्रथम सगीति मे धम्म और विनय का सकलन हुआ पर इसमे छोटे-छोटे नियमो का। कहते है कि वैशाली के भिक्षुओ ने दस प्राचीन नियमो का अप-व्यवहार किया था, उसी के सशोधन मे इस सगीति को अधिक समय लगा। दीपवश और महावश के अनुसार यह सगीति आठ महीने तक चलती रही। ऊपर उल्लिखित दस नियमों के अतिरिक्त धर्म और विनय की आवृत्ति भी इस सगीति मे हुई थी। पण्डितो का अनुमान है कि इस समय तक निश्चित रूप से विनय और धम्मपिटक का कोई-न-कोई आकार रहा होगा, क्योकि दस नियमो के विचारार्थ विनय और धम्म के पूर्व-निर्णीत नियमों की ज़रूरत रही होगी और यह ज़रूरत किसी नियम-सग्रह से ही पूरी की गई होगी। उदाहरणार्थ, वैशाली के भिक्षुओ ने नियम किया था कि जहाँ नमक का अभाव होने की सम्भावना है, वहाँ उसे भी भिक्षु लोग सीगो मे भरकर ले जा सकते है। अब इस बात के औचित्य के निर्णय के लिए किसी पूर्व-निर्णीत विधि-निषेध की आवश्यकता होनी चाहिए (श्रावस्ती मे कथित सुत्तविभग के अनुसार यह बात नियम-विरुद्ध है) बुद्धदेव ने सारिपुत्त को ऐसा करने से मना किया था। इस प्रकार उस समय तक कुछ ग्रथ (भले ही वे मौखिक हो) जरूर बन चुके थे। तीसरी सगीति, जो वृजिपुत्त भिक्षुओ के उद्योग से आहूत हुई थी, हमारे विषय से उतनी सम्बद्ध नही है। सबसे महत्त्वपूर्ण सगीति चौथी है जिसे अशोक सगीति भी कहते है। लका मे प्राप्त परम्परा के अनुसार यही तीसरी सगीति है। कहा गया है कि जव अशोक ने बौद्ध-धर्म पर अपनी आस्था प्रकट की तो बहुत-से अन्य सम्प्रदाय के लोग भी बौद्ध-सघ मे आ घुसे और अपना-अपना राग अलापने लगे। तग आकर सम्राट् ने तिस्स मोग्गलिपुत्त को बुलवाया जिन्होने सम्राट् को वास्तविक रहस्य समझाया। तब राजा ने एक-एक बौद्ध-भिक्षु को बुलाकर उसके मत के विषय मे पूछा। कहा गया है कि जो लोग विभाज्यवादी (विभज्जवादी) थे उन्ही को तिस्स ने असली बौद्ध माना और बाकी को श्वेत वस्त्र पहनवाकर निकाल बाहर किया। इन्ही तिस्स (तिष्य) ने चुने हुए एक हज़ार भिक्षुओ की सभा बुलाई जो नौ महीने की निरन्तर आलोचना के बाद तीन पिटको या पिटारो का सग्रह करने मे समर्थ हुई। ये तीन पिटक ये है, विनयपिटक, सुत्तपिटक और अधिधम्मपिटक। सक्षेप मे इन्हे त्रिपिटक कहते है। अन्तिम पिटक का एक-एक अग कथावत्थु तिष्य का रचित बताया जाता है। लक्ष्य करने की बात यह है कि स्थविरवादियो के सम्प्रदाय को छोडकर और किसी सम्प्रदाय के ग्रथो मे इस सगीति का उल्लेख नही मिलता। अशोक की प्रशस्तियो मे भी इसकी चर्चा नही है यद्यपि सारनाथ, साँची और कौशाम्बी की स्तम्भ-लिपियो मे अशोक ने अनाचार-परायण भिक्षुओ को श्वेत वस्त्र पहनवाकर निकाल देने का जो आदेश दिया है, उसके साथ इसका सामजस्य स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार ईसवी-पूर्व तीसरी शताब्दी मे इन ग्रथो का सगृहीत होना सिद्ध होता है। पण्डितो ने तीन पिटको मे से ही यह बात सिद्ध करने की कोशिश की है कि अशोक के बहुत बाद तक भी इनमे बहुत-सी बाते जोडी, बदली और सुधारी जाती

रही। फिर भी इतना मान लेने मे किसी को भी कोई आपत्ति नही कि ईसा मसीह के जन्म के दो सौ वर्ष पहले इन पिटको के मुख्य भाग निश्चय ही सगृहीत हो गये थे, यद्यपि इनके वर्तमान रूप मे जो भाषा पाई जाती है वह बुद्ध या अशोक के युग की भाषा नही हो सकती। पिटको से पता चलता है कि अशोक के पहले ही बुद्ध-वचनो का भाषान्तर करना शुरू कर दिया गया था। किसी किसी ने तो सस्कृत मे भी अनुवाद किया था जिसका स्वय बुद्धदेव ने निषेध किया था। इस प्रकार पिटको मे जो भाषा सुरक्षित है, उसकी विशुद्धता सन्देह से परे नही है।

ऊपर जो विवरण दिया गया है वह पाली-साहित्य का है। इसी को एक मात्र बौद्ध-साहित्य मान लेना ठीक नही। जैसा कि ऊपर बताये हुए अशोक-सगीति के विवरण से स्पष्ट है, यह केवल एक सम्प्रदाय का सग्रह है। यह भी नही कहा जा सकता कि यही बौद्धो का प्राचीनतम साहित्य है। चीनी तुर्किस्तान मे पाये गये कुछ सस्कृत ग्रन्थो ने पण्डितो को यह सोचने को बाध्य किया है कि पाली और सस्कृत दोनो ही किसी एक ही सामान्य भाषा से सगृहीत ग्रन्थो के रूपान्तर हो सकते है। जो बात निस्सकोच कही जा सकती है वह यह है कि अन्यान्य सम्प्रदाय के प्रामाणिक प्राचीन संग्रहो के अभाव मे यही सग्रह (पालीवाला) हमारे लिए बुद्ध-धर्म के मूल रूप को समझने मे सर्वाधिक सहायक है। इनके अतिरिक्त सस्कृत और अर्द्धसस्कृत मे लिखे हुए अनेकानेक बौद्धग्रन्थ पाये गये है और अब भी खोजकर निकाले जा रहे है। इनमे से अधिकाश ग्रन्थो के अनुवाद चीनी, तिब्बती और मगोलियन भाषाओ मे सुरक्षित है। सच पूछा जाय तो ये अनुवाद ही बौद्ध सस्कृत-ग्रन्थो की जानकारी के प्रधान सहायक है। इनकी चर्चा हम इसी प्रबन्ध मे यथास्थान करेगे।

पाली-साहित्य

हिन्दी मे हम जिसे 'पाली' लिखा करते हैं वह मूल शब्द है 'पालि' जो पंक्ति का वाचक है। बौद्ध ग्रन्थो के अनुसार समग्र बौद्ध-साहित्य दो भागो मे विभक्त है—(१) पालि या पिटक, (२) अनुपालि या अनुपिटक। इसके अनुसार पालि बुद्ध-वचनयुक्त त्रिपिटक को कहते है और अनुपालि मे वह समग्र साहित्य है जो है तो पिटक के बाहर, पर जिसका आधार या उपजीव्य त्रिपिटक ही है। इसमे अर्थकथा, आचार्यवाद, कोष, सग्रह, वग, टीका-अनुटीका, व्याकरण, दीपिका ग्रथि इत्यादि सम्मिलित है। इनमे त्रिपिटक ही प्रधान है। इनमे बुद्धदेव के मूल वचन सगृहीत माने जाते है। छ प्रकार के विभाग किये गये है। श्री बेनीमाधव बाड़ुया महाशय ने ये विभाग इस प्रकार गिनाये है—

(१) उपदेश और आदेश के अनुसार बुद्ध-वचन दो प्रकार के है धर्म और विनय। (२) कालपर्याय-क्रम से तीन प्रकार के है : प्रथम (बुद्धत्व-प्राप्ति के पश्चात् पहले-पहल निकले हुए वाक्य), अन्तिम (मृत्यु-समय के उपदेश) और मध्यम अर्थात् इन दोनो के बीच समस्त जीवन के दिये हुए उपदेश)। (३) पिटक के

अनुसार तीन प्रकार सुत्त (सूत्र), विनय और अभिधम्म (अधिधर्म) है। (४) निकाय या आगम के अनुसार पाँच प्रकार : दीघनिकाय या दीघागम (दीर्घागम), मज्झिमनिकाय (मध्यमागम), सयुत्तनिकाय (सयुक्तागम), अगुत्तरनिकाय (एकोत्तरागम), खुद्दकनिकाय (क्षुद्रकागम)। (५) अग या श्रेणी के अनुसार नौ प्रकार—सुत्त (सूत्र), गेय्य (गेय), वय्याकरण (व्याकरण), गाथा उदान, इतिवुत्तक (इत्युक्तक), अब्भुतधम्म (अद्भुतधर्म), वेदल्ल (वेदल्य)। (६) पाठ या परिच्छेद-गणना के अनुसार ८४,००० धम्मखन्ध या धर्मस्कन्ध।

त्रिपिटक

पडितो ने विचार करके देखा है कि जब तक बुद्धदेव का धर्म लोकव्यापी नही हुआ था, तब तक वे धर्म के विषय मे ही चिन्ता करते रहे। धीरे-धीरे उनका धर्म जब फैल गया और बहुत से शिष्य उनके निकट एकत्र हो गये तो उन्होने उनमे नियम के प्रति एक अनास्था का भाव लक्ष्य किया और वे धर्म और विनय (discipline) दोनो पर जोर देने लगे। इसके बाद उन्होने अकेले, धर्म शब्द का व्यवहार कभी नही किया। भिक्षुओ को भी धर्म और विनय दोनो का प्रचार करने को कहते रहे। प्रथम सगीति के विवरण मे कहा गया है कि महाकाश्यप ने भिक्षु-सघ से पूछा कि धर्म और विनय मे से पहले किसका पाठ होगा, तो भिक्षुओ ने कहा था कि विनय ही बुद्ध-शासन की आयु है, विनय के अभाव मे बुद्ध-शासन टिकेगा नही। इस प्रकार बुद्ध के निर्वाण के बाद ही भिक्षु-सघ मे विनय की जबरदस्त प्रतिष्ठा हो गई थी। प्रथम सगीति मे धर्म और विनय की चर्चा हुई थी, किन्तु बुद्ध की मृत्यु के बाद उनके अनुभवी शिष्य ने धर्म के अश-विशेष (अर्थात् दार्शनिक चिन्ता के अनुकूल विषयो) का अवलम्बन करके एक नये साहित्य का उद्भावन किया। इसका नाम रखा गया अभिधम्म (अभि-धर्म)। बुद्ध-वचनो के जो अश 'धर्म' नाम से प्रचलित थे, उन्ही को सूत्रया सूत्रान्त नाम दिया गया। जिसे बुद्धदेव ने विनय नाम दिया था, वह उसी नाम से प्रचलित हुआ। अशोक सगीति के अवसर पर ये तीनों भाग तीन पृथक्-पृथक् नामो से सकलित हुए। प्रत्येक को एक-एक पिटक या पिटारा कहा गया। इन्ही तीनो को त्रिपिटक कहते है। इन्ही तीन पिटारो मे बुद्धदेव के अमूल्य विचार सुरक्षित है। शील-सम्बन्धी शिक्षा विनय मे, चित्त-विषयक उपदेश-सूत्र मे और प्रज्ञा-सबधी शिक्षाएँ अभिधर्म मे सुरक्षित है।

विनयपिटक

विनय-पिटक मे ये सम्मिलित है—

१ पाराजिक कण्ड } विभग
२ पाचित्तिय कण्ड }

३ महावग्ग } खन्धक
४ चुल्लवग्ग }

५ परिवार

किसी-किसी पण्डित ने इसी में भिक्खु पातिमोक्ख और भिक्खुनी पातिमोक्ख (या एक शब्द मे उभयानि पातिमोक्खानि) को इस पिटक के अन्तर्गत माना है, पर ऐसा मानने का कोई कारण नही, क्योकि ये दोनी पातिमोक्ख या प्रतिमोक्ष असल मे दोनो विभगो के ही अन्तर्गत है। प्रतिमोक्षो मे जो नियम दिये गये है, विभगो मे हू-व-हू वही दिये गये है। विशेषता यह है कि इन घटनाओ का विवरण भी विभगो मे दिया गया है जिनके कारण वे नियम वनाये गये थे। इस प्रकार या तो प्रतिमोक्ष का ही घटना-विवरण वढाकर विभग वनाया गया है, या विभग का ही सक्षिप्त रूप प्रतिमोक्ष है। दूसरा पक्ष ही विद्वानो को अधिक मान्य है। विभग शब्द का अर्थ ही है चूर्ण करके वनाये हुए नियम, अर्थात् जो नियम, पातिमोक्खो में ठोस भाव से गुँथे हुए थे, उन्हे तोड-तोडकर घटना-पुरस्सर सम्पादित करके विभगो मे सरल और वोधगम्य वनाया गया है। फिर पण्डितो ने जो इन पातिमोक्खो को अलग ग्रन्थ माना है वह नितान्त उपेक्षणीय भी नही है, क्योकि स्थान-स्थान पर प्रतिमोक्षो के साथ विभागो का थोडा-वहुत अन्तर भी मिल जाया करता है। जो वात निस्सकोच मानी जा सकती है, वह यह है कि दोनो विभग असल मे पातिमोक्खो के एक प्रकार के सटीक सस्करण ही है। हर अमावस्या और पूर्णिमा को भिक्षु लोग एकत्र होकर पातिमोक्खो का पाठ किया करते थे। प्रत्येक अध्याय के अन्त मे प्रधान पूछा करते थे कि भिक्षुओ मे से किसी ने उक्त अध्याय मे वर्णित कोई अपराध किया है या नही और भिक्षुगण ईमानदारी के साथ अपने-अपने पाप स्वीकार किया करते थे। इसी को उपोसथ कहा करते थे। पण्डितो का अनुमान है कि मूल वौद्ध धर्म के आदि-ग्रन्थो मे पातिमोक्ख जरूर रहा होगा, क्योंकि सौभाग्यवश प्रतिमोक्ष का एक सस्कृत, एक तिव्वती और कम-से-कम चार चीनी अनुवाद अव तक पाये जा चुके हैं जो पाली-भापणवाले पातिमोक्ख से वहुत-कुछ मिलते है। वर्तमान पातिमोक्ख मे २२७ नियम हैं, जिनमे १५२ निश्चय ही प्राचीन होगे।

महावग्ग और चुल्लवग्ग को (खन्धक स्कन्धक) कहते है। असल मे ये भी सुत्तविभग की भाँति मर्यादा पालने के लिए ही लिखित हुए थे। इनमे सघ की व्यवस्था के नियम हैं। विभगो मे वताया गया है कि भिक्खु कैसे रहेगा, कैसे खायेगा, कैसे हँसेगा, कैसे चीवर धारण करेगा, क्या सोचेगा और क्या नही सोचेगा इत्यादि। खन्धको मे सघ के नियम, उपोसथो मे भाग लेने के नियम, वर्षावास के नियम, पादुकाधारण, रथा-रोहण और वस्त्रो के व्यवहार के विधि-निषेधो का विवरण है। चुल्लवग्ग के प्रथम नौ वर्गो मे सघ के भीतर छोटे-मोटे मर्यादा-भगजन्य अपराधो का प्रतिविधान है। इनमे भिक्षुओ के आपसी झगडे, उनके एक-दूसरे के प्रति कैसे व्यवहार होने चाहिए आदि वाते वताई है। दसवें वर्ग मे भिक्षुणियो के नियम वताये गये है।

पातिमोक्खो मे एक काफी जटिल भिक्षु-समाज का परिचय मिलता है और खन्धको मे आकर वह समाज और भी जटिलतर हो गया है। छोटी-से-छोटी वात का भी विचार किया गया है। भिक्षु को नियमानुसार भिक्षा पर ही निर्भर रहना चाहिए;

पर साथ ही वह बड़े-बड़े रईसो का निमन्त्रण भी स्वीकर सकता है[१]। उसे इधर-उधर से बटोकर सी हुई कन्था धारण करनी चाहिए, पर यह कन्था रेशमी या ऊनी वस्त्रो की भी हो सकती है। उसे मानसा, वाचा और कर्मणा अहिंसक होना चाहिए, पर वह मछली भी खा सकता है, बशर्ते कि उसके लिए न मारी गई हो। इसीलिए विंटरनित्ज का विचार है कि इस प्रकार दो कोटियो पर गये हुए नियमो के बनने मे निश्चय ही सैकड़ो वर्ष लगे होगे और इसीलिए एक प्रकार के पण्डित हैं जो इन पुस्तको मे आये हुए बुद्धदेव के सवादो को बहुत महत्त्व नही देते; पर दूसरे ऐसे भी है कि ये नियम बहुत-कुछ बुद्ध-पूर्व सयासी-सम्प्रदायो से लिये गए होगे और इस तरह काफी प्राचीन हो सकते है। इसमे सन्देह नही कि महावग्ग की कई कहानियाँ (विशेषकर जो शुरू मे आई है) काफी प्राचीन है, पर खन्धको के भीतर ऐसी बाते है जिनसे सिद्ध होता है कि इनका सकलन प्रतिमोक्षो के बहुत बाद हुआ है। विनय-पिटक के इन ग्रन्थो का ब्राह्मण-ग्रन्थो से बहुत मेल है, और पण्डितो ने वैदिक सूत्र-ग्रन्थो के नियमो के साथ इन नियमो का मनोरजक साम्य दिखाया है।

परिवार का अर्थ है परिशिष्ट। असल मे यह बहुत बाद का बना हुआ ग्रन्थ है। सम्भवत किसी सिहली भिक्षु ने इसे लिखकर विनयपिटक मे जोड दिया है।

---

१ मेरा यह वक्तव्य अगस्त १९३९ के विशाल भारत मे प्रकाशित हुआ था। उस पर आलोचना करते हुए बौद्धशास्त्रो के विशेषज्ञ श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने नवम्बर १९३९ के विशाल-भारत मे एक नोट लिखा था। उक्त विद्वान का कहना है कि "इस अश मे (पातिमोक्खो और खन्धको मे वर्णित जटिल भिक्षुसमाज के उपपादक वाक्यो मे) द्विवेदीजी की लेखनी उतनी जिम्मेदार नही रही। क्या हम जान सकते हैं कि पातिमोक्ख का कौन-सा नियम है जिसका अर्थ पण्डितजी ने 'भिक्षा पर ही निर्भर रहना चाहिए' किया है, और कौन-सा दूसरा नियम है जिसका अर्थ पण्डितजी ने 'बडे-बडे रईसो के निमत्रण भी स्वीकार कर सकता है', किया है ?" भदन्त आनन्द जैसे पण्डित ने इसकी सफाई माँगी है, इसलिए अपनी बात समझा देना मेरा कर्तव्य हो जाता है। वस्तुत भदन्तजी ने जल्दी मे इस अश को पढा है। ऊपर के पैराग्राफ से स्पष्ट है कि मैंने जो यह लिखा था कि 'भिक्षु को भिक्षा पर ही निर्भर करना चाहिए।' इत्यादि, उमका सम्बन्ध प्रतिमोक्षो से नहीं बल्कि खन्धको (महा-वग्ग और चुल्लवग्ग से है। महावग्ग मे (१।२।६) स्पष्ट ही लिखा है कि बुद्धदेव ने चार निश्चयो की व्यवस्था की थी जिनमे पहला यह है—'यह प्रव्रज्या भिक्षा माँगे भोजन के निश्चय से है, इसके (पालन मे), जिन्दगी भर तुझे उद्योग करना चाहिए। हाँ (यह) अधिक लाभ भी (तेरे लिए विहित है)—सघ-भोज, (तेरे) उद्देश्य से बना भोजन, निमत्रण, शलाका भोजन, पाक्षिक (भोज), उपोसथ के दिन करते हुए बताया गया का (भोज), प्रतिपद का भोज।" (—राहुल साकृत्यायन का अनुवाद) जब बुद्धदेव को यह नियम है, उस समय का प्रसग यह है कि 'उस समय राजगृह मे उत्तम भोजो का सिल-सिला चल रहा था—तब एक ब्राह्मण के मन मे ऐसा हुआ—यह शाक्यपुत्रीय (=बौद्ध), श्रमण (=साधु), शील औरआचार मे आराम से रहने वाले हैं, सुन्दर भोजन करके शान्त शय्याओ मे सोते हैं। क्यो न मैं भी शाक्य-पुत्रीय साधुओ मे साधु बनूँ।' इत्यादि (अनुवाद, राहुल साकृत्यायन)। 'भिक्षु को नियमानुसार प्रसग से स्पष्ट है कि ये उत्तम भोज रईसो के निमन्त्रण मे होते होगे। इसलिए मेरा यह कहना कि भिक्षा पर ही निर्भर रहना चाहिए, साथ ही वह बडे-बडे रईसो का निमन्त्रण भी स्वीकार कर सकता हैं' भित्तिहीन नही है। मैं समझता हूँ, आदरणीय, भदन्त आनन्द इस सफाई से सन्तुष्ट हो जायँगे।

है। इसमे अनुक्रमणिका, परिशिष्ट आदि है, यह बहुत-कुछ वेद और वेदाग ग्रन्थो के अनुक्रमणी और परिशिष्ट आदि की जाति के है, और प्रश्न तथा उत्तर के रूप मे लिखित है।

सुत्तपिटक

जिस प्रकार विनयपिटक से हम बौद्ध-सघ और भिक्षुओ के दैनदिन आचार-व्यवहारो को समझ सकते है, उसी प्रकार सुत्तपिटक से हम बौद्ध धर्म को समझते है। इस पिटक मे पञ्ज निकाय (समूह) या आगम हैं—दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, सयुत्तनिकाय, अगुत्तरनिकाय और खुद्दकनिकाय। प्रथम चार निकाय सूत्रो के सग्रह हैं। दीघनिकाय में बडे-बडे सूत्र, मज्झिम मे मध्यम मान के सूत्र, सयुत्तनिकाय मे सयुक्त विषयो के सूत्र और अगुत्तरनिकाय मे एक-दो आदि सख्याओ के सूत्र है।

सूत्र किसे कहते हैं, इस विषय मे अर्थ-कथाओ मे अनेक अर्थ दिये है सुत्त उसे कहते है जो सूचना दे, जो सुष्ठु भाव से कहा गया हो, जो सवन-(या फलप्रसव-) कारी हो, सूदन यानी गाय के थन से दूध की तरह अर्थ जिससे निःसृत हो रहा हो, जो सुत्राण करे, बढई के सूत्रो की तरह विज्ञानो का माप करे इत्यादि। निकायो मे या तो बुद्धदेव के (कभी-कभी उनके किसी प्रधान शिष्य के) उपदेशो की बात है, या फिर इतिहास-सवाद के रूप मे बातचीत। इस प्रकार बडी सरलता के साथ प्रश्नोत्तर-छल से भगवान् बुद्ध गूढ विषयो को समझा देते है। निकाय शब्द के लिए पाली मे आगम शब्द भी प्रचलित है, पर सस्कृत मे जो निकाय थे, उन्हे आगम ही कहा जाता हैं। सम्भवत निकाय स्थविरवादियो का शब्द है। दिव्यावदान मे चार आगमो का स्पष्ट उल्लेख है : दीर्घ, मध्यम, सयुक्त और एकोत्तर। पाँचवें क्षुद्रक का कोई उल्लेख न देखकर किसी-किसी पण्डित ने सन्देह किया था कि यह निकाय बाद का है। दिव्यावदान सर्वास्तिवाद का ग्रन्थ है और लेवी साहब ने सिद्ध किया है कि इस सम्प्रदाय के पास भी क्षुद्रकनिकाय नामक आगम वर्तमान था। बुद्धघोष नामक प्रसिद्ध भाष्यकार ने सुदिन्न नामक एक भिक्षु का मत उद्धृत किया है जिससे जान पडता है कि प्राचीन काल मे कोई-कोई ऐसे भिक्षु थे जो क्षुद्रकनिकाय को सूत्रपिटक के अन्तर्गत नही मानना चाहते थे। दो बौद्ध सम्प्रदायो मे क्षुद्रकनिकाय के ग्रन्थो की दो प्रकार की सूची दी हुई है, दीघमाणको के मत से १२ और मज्झिममाणको के मत से १५। अन्तिम मत को ही प्रमाण समझकर बुद्धघोष ने निम्नलिखित पन्द्रह ग्रन्थो की सूची दी है—(१) खुद्दकपाठ, (२) धम्मपद, (३) उदान, (४) इत्तिवुत्तक, (५) सुत्तनिपात, (६) विमानवत्थु, (७) पेतवत्थु, (८) थेरगाथा, (९) थेरीगाथा, (१०) जातक, (११) निद्देश, (१२) पटिसम्भिदा, (१३) अभिधान, (१४) बुद्धवस, (१५) चारियापिटक। अन्तिम तीन ग्रन्थ मज्झिममाणको ने दीघमाणको से अधिक स्वीकार किये है। यह एक विशाल साहित्य है और इसकी रचना सैकडो वर्षो तक होती रही है। हम स्थानाभाव के कारण उसका विशेष वर्णन देने मे असमर्थ है।

अभिधम्मपिटक

जैसा कि पहले ही बताया गया है, अभिधम्मपिटक बुद्धदेव के बहुत बाद सग्रह किये गये थे। सुत्तपिटक की प्रतिपाद्य वस्तु से कोई नवीनता इसमे नही है। दोनो मे अन्तर इतना ही है कि सुत्तपिटक सरस और सहज बौद्ध सिद्धान्तो का सग्रह है और अभिधम्म मे पण्डिताऊपन, रूक्षता और वर्गीकरण की अधिकता है। फिर भी बौद्ध-दर्शन, बौद्ध परिभाषा आदि के समझने मे यह पिटक बहुत ही उपयोगी है। महाबोधिवंश की तालिका के अनुसार निम्नलिखित ग्रन्थ अभिधम्मपिटक के अन्तर्गत है—धम्मसगणि, विभग, कथावत्थु, पुग्गलपञ्ञत्ति, धातुकथा, यमक, पट्ठान या महापट्ठान।

अनुपालि या अनुपिटक ग्रन्थ

अनुपालि या अनुपिटक ग्रन्थ त्रिपिटक के आधार पर ही रचित है। इनमे अधिकाश लका के भिक्षुओ के लिखे है। कुछ अपवाद भी है। जो अनुपालि ग्रन्थ लका मे नही लिखे गये, उनमे सबसे प्रसिद्ध है मिलिन्दपण्णहो या मिलिन्दप्रश्न। ग्रीक राजा मीनाण्डर और बौद्ध सन्यासी नागसेन के बीच जो तत्त्व-चर्चा हुई थी उसी का यह लिपि-बद्ध रूप है। यह ग्रन्थ मीनाण्डर के राज्यकाल के ही आस-पास रचित हुआ होगा। इसकी प्रतिष्ठा हीनयान और महायान दोनो सम्प्रदायो मे है और बौद्ध लोगो मे यह त्रिपिटक के समान ही समादृत होता है। विद्वानो ने इसके वार्तालाप को दीघनिकाय आदि ग्रन्थो से अधिक परिमार्जित बताया है। ससार के वार्तालाप साहित्य मे इस ग्रन्थ का बहुत ही श्रेष्ठ स्थान है। दूसरा ग्रन्थ जो भारतवर्ष मे लिखा गया था वह है नेत्ति-प्रकरण जिसे नेत्तिगन्ध या नेत्ति भी कहते है। इसमे बुद्धदेव की शिक्षाओ का क्रम-बद्ध विवरण दिया हुआ है। कहते है कि अभिधम्मपिटक के अन्तिम दो ग्रन्थो से भी यह अधिक प्राचीन है और इसके कर्त्ता बुद्धदेव के शिष्य महाकच्चायन है जो पेटकोपदेस के भी रचयिता माने जाते है।

लेकिन ऐसा विश्वास किया जाता है कि अनुपिटक ग्रन्थो मे का अधिकाश लका मे ही रचित हुआ था। लका के भिक्षुओ के निकट हम बुद्ध-वचनो के अपेक्षाकृत विश्वस-नीय सकलनो को सुरक्षित रखने के लिए ही ऋणी नही हैं, बल्कि इन भिक्षुओ के उन समस्त प्रयत्नो के लिए भी, जो उन्होने उक्त साहित्य को बोधगम्य और समृद्ध बनाने के लिए किया है, हम सदा ऋणी रहेगे। इन प्रयत्नो मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है बुद्धघोष की अट्ठकथाएँ (या भाष्य)। सिंहली परम्परा के अनुसार अर्थकथाएँ (पा० अट्टकथाएँ = भाष्य) भी प्रथम सगीति-काल से ही चली आ रही है, जिन्हे महिन्द ने वट्टगामणी के तत्त्वावधान मे सिंहली भाषा मे अनूदित किया था। इसी अनुवाद को बुद्धघोष ने पाँचवी शताब्दी मे पाली मे भाषान्तरित किया। पडितो का विचार है कि असल मे यह परम्परा भारतीय प्रकृति की देन है, जो किसी वस्तु को तब तक प्रामाण्य नही मानती, जब तक कि प्राचीन परम्परा के साथ उसका योग न साबित हो जाय

और बुद्धघोष वास्तव मे इन अर्थकथाओ के कर्त्ता है। पर इस विषय मे कोई सन्देह नही करता कि बुद्धघोष को निश्चय ही सिंहली रूप में कुछ भारतीय भिक्षुओ की व्याख्याएँ मिली थी जो उनके भाष्य का मेरुदण्ड है। इन्ही प्राचीनो को बुद्धघोष ने 'पौराणा '(प्रचीन लोग) कहकर उद्‌धृत किया है। सिंहली अनुवाद मे मूल पाली पद्य ज्यो-के-त्यो रखे गये थे। भारतवर्ष मे ज्यो-ज्यो स्थविरवाद अन्यान्य सम्प्रदायो द्वारा अभिभूत होता गया, त्यो-त्यो लका में उसका केन्द्र दृढ होता गया।[1]

लका मे जो नई चीजे लिखी गई, उनमे सबसे पहले निदान-कथा का नाम लिया जाना चाहिए। यह बुद्धदेव का जीवन-चरित है और जातक की टीका 'जातकत्थवण्णना' के आरम्भ मे है। इसमें बुद्धदेव का जो जीवन-वृत्त दिया हुआ है वह महायान सम्प्रदाय के सस्कृत-ग्रन्थो से मिलता है, अत यह माना जाता है कि इसका भी आधार निश्चय ही कोई भारतीय कहानी रही होगी, जो उस समय लका मे पहुँची होगी, जब महायान सम्प्रदाय सगठित होगा, या फिर दोनो जीवन-वृत्तो का कोई एक ही सामान्य आधार होगा। इसीलिए यह पुस्तक बहुत महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। जातकत्थवण्णना (स० जातकार्थवर्णना) के लेखक भी बुद्धघोष ही माने जाते है, अतः इसके कर्ता भी वही समझे जाते है। कहते है कि बुद्धघोष बौद्धगया के पास के रहने वाले ब्राह्मण थे, जो बाद मे बौद्ध होकर सिंहल चले गये थे। इन्होने प्राय सभी मुख्य त्रिपिटक ग्रन्थो की टीका लिखी है। विसुद्धिमग्गो (विसुद्धि मार्ग) के लेखक भी वही माने जाते हैं। असल मे यह भी एक श्लोक को आश्रय करके लिखी हुई टीका ही है। ये बहुत श्रेष्ठ कोटि के भाष्यकार माने जाते है। इनके लिखे हुए ये ग्रन्थ प्रसिद्ध है — विसुद्धिमग्गो, समन्तपासादिका (विनयपिटक), सुमगलविलासिनी (दीघ०), पपचसूदनी (मज्झिम०), सारत्थपकासिनी (सयुक्त०), मनोरथपूरनी (अगु०), कखावितरणी (पाति०) इत्यादि। इनके अनतिपश्चात् धम्मपाल नामक टीकाकार हुए जिन्होने त्रिपिटक के उन सभी ग्रन्थो पर, जिन्हे बुद्धघोष छोड गये थे, परमत्थदीपिनी नाम की टीका लिखी। ये ग्रन्थ हैं —इतिवुत्तक, उदान, चरियापिटक, थेरगाथा, विमानवत्थु और पेतवत्थु। कहते है कि ये दक्षिण भारत के रहने वाले ब्राह्मण थे और अनुमानत सिंहल के अनुराधपुर में पढे थे। इन अर्थकथाओ के आधार पर दो ऐतिहासिक काव्य दीपवश और महावश भी लिखे गये। दोनो ही काव्य पाँचवी शताब्दी की कृति माने जाते है। दीपवश की अपेक्षा महावश का काव्यत्व अधिक प्रशसित हुआ है। अर्थकथाएँ और ये दोनो काव्य बाद मे एक बहुत बडी काव्य-परम्परा को उत्तेजित कर सके। इस परम्परा के मुख्य ग्रथ बोधिवश, दाठावश और थूपवश है। ये भी पहले सिंहली भाषा मे लिखे गये थे और बाद मे पाली मे भाषान्तरित हुए। इस तरह बुद्धघोष के बाद से ई० सन् की बारहवी शताब्दी तक लका मे बहुत से पाली-ग्रन्थ लिखित हुए। बुद्धदत्त नामक एक भिक्षु ने, जो बुद्धघोष के सम-सामयिक माने जाते हैं (पर इसमें पण्डितो ने सन्देह

---

१ अनिरुद्धाचार्य का अभिधम्मत्थ-सग्रह नामक ग्रथ भी (विभावनी-टीका-सहित) सिंहली परम्परा की बहुमूल्य देन है।

किया है), अभिधम्मावतार, रूपारूप विभाग और विनय-विनिश्चय नामक ग्रंथ लिखे थे। इसके बाद भी पाली मे ग्रन्थ लिखे जाते रहे और आज भी लिखे जाते हैं, जिनमे कितने ही काफी महत्त्वपूर्ण है। ब्रह्म देश में तो ग्यारहवी शताब्दी के पहले पाली भाषा पहुँची ही नही थी। बाद की शताब्दियो मे वहाँ भी कई अच्छी पुस्तके लिखी गई, पर प्राय सबके आधार जातक-ग्रन्थ ही थे। पाली मे ज्योतिष, व्याकरण आदि विषयो पर भी लिखने का प्रयत्न किया गया; पर बहुत कम।

: ५ :

बौद्ध सस्कृत-साहित्य

अब तक जिस बौद्ध-साहित्य का परिचय दिया गया है, वह पाली मे लिखा हुआ है। यह समूचा साहित्य हीनयान के स्थविरवादियो का है। बौद्ध-धर्म के अन्यान्य सम्प्रदाय भारतवर्ष से उठ गये है। अशोक सगीति के अवसर पर १८ बौद्ध सम्प्रदायो की चर्चा मिलती है। इन सबके अपने-अपने पिटक थे, जो सम्भवत ब्राह्मणो की वैदिक शाखाओ की भाँति कुछ न्यूनाधिक पाठ-भेद रखते थे। परन्तु वैदिक शाखाओ से इनकी एक विशेषता थी। इनमे केवल पाठ का ही नही, भाषा का भी भेद था। स्थविर-वादियो का साहित्य पाली-भाषा मे है, पर ऐसा नही कहा जा सकता कि यही भाषा बुद्ध की उच्चरित भाषा हो। ऐसे कुछ सस्कृत और मिश्र सस्कृत के ग्रन्थ पाये गये है जो या तो बौद्ध-सम्प्रदायो के है या उनके द्वारा प्रभावित हैं। हीनयान और महायान ग्रन्थो का मोटे तौर पर भेद समझना हो, तो हिन्दुओ के ज्ञानपथ और भक्तिपथ के उदाहरण से समझा जा सकता है। हीनयान के साधक अनेक यत्नो के बाद निर्वाण-प्राप्ति को सम्भव बताते है, जो निश्चय ही बहुत कम लोगो को सुलभ है, पर महायान वाले साधक जप, मत्र, पूजा-पाठ आदि के द्वारा निर्वाण को बहुत सहजसाध्य और सर्वलोकसुलभ बताते है। यद्यपि सस्कृत या अर्ध-सस्कृत का साहित्य महायान-सम्प्रदाय का ही अधिक है, पर ऐसा नही कह सकते कि इस भाषा मे हीनयान का साहित्य एकदम है ही नही। लोकोत्तरवादी बौद्ध, जो अधिकाश महायान से प्रभावित थे, वस्तुत हीनयानी ही थे। फिर सर्वास्तिवादी भी, जो काश्मीर, गाधार आदि सरहदी सूबो मे फैले हुए थे, हीनयानी ही थे। यही लोग तिब्बत, चीन और मध्य एशिया मे भी अपना प्रभाव-विस्तार कर सके थे। इनका अपना सस्कृत साहित्य था। आज तक इनके मत के सम्पूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध नही हो सके है, फिर भी कुछ यूरोपियन पडितो ने पूर्वी तुर्किस्तान से इनके ग्रन्थो के छोटे-बडे बहुत-से छिन्न अशो का उद्धार किया है। फिर महावस्तु, दिव्या-वदान और ललितविस्तर (परिचय आगे देखिए) मे भी इनका उल्लेख पाया जाता है। मूल सर्वास्तिवादियो के प्रसिद्ध ग्रन्थो का चीनी यात्री ईत्सिग ने चीनी भाषा मे अनुवाद किया था। सस्कृत और पाली ग्रन्थो मे समानता बहुत है, पर अन्तर भी कम नही है, इसका कारण यह अनुमान किया है कि शायद दोनो ही उस मूल मागधी रूप से लिये गये हो, जो अब खो गये हैं और बाद मे स्वतन्त्र भाव से प्रक्षिप्त अश जोडे जाते रहे हो।

भारतवर्ष मे बौद्ध धर्म केवल नाम-शेष ही रह गया है। इसका भग्नावशेष केवल

उत्तरी प्रान्त नेपाल मे बचा हुआ है। वहाँ के गुरखे तो हिन्दू है, नेवारी लोग बौद्ध है। उनमे केवल इन नौ ग्रन्थो का प्रचार है ' प्रज्ञापारमिता, गडव्यूह, दशभूमीश्वर, समाधिराज, लकावतार, सद्धर्म-पुण्डरीक, तथागत-गुह्यक, ललितविस्तर और सुवर्णप्रभा। इनके अतिरिक्त यहाँ और भी कई ग्रन्थ खोज से मिले है, जिनमे महावस्तु और दिव्यावदान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। बहुत दिनो तक विद्वानो की धारणा रही कि ये ग्रन्थ वस्तुत पाली के ग्रन्थो के ही सस्कृत रूपान्तर है, जो स्थान स्थान पर वदल दिये गये है। यही कहा जाता रहा कि इस सस्कृत शाखा में विनय-ग्रन्थ नही है पर अब ये बाते गलत साबित हो गई है। महावस्तु, असल मे लोकोत्तरवादियो का विनय ही है जो महासांघिकों मे भी गृहीत हो गया है। हाल ही मे यह भी समझा जाने लगा हे कि दिव्यावदान भी मूल सर्वास्तिवादियो के विनय के आधार पर ही रचित है। नेपाली ग्रन्थो में और भी ऐसी बाते मिली है जिनके विपय में लोगो की धारणा थी कि ये पाली की विशेषता है। फिर तिब्बत मे बहुत-से सस्कृत-ग्रन्थो के अनुवाद पाये गये है। इस देश मे बौद्धधर्म सातवी शताब्दी में पहुँचा था। वहाँ ये ग्रन्थ दो भागो में विभक्त किये गये है —कँजुर और तँजुर। पहले मे मूल ग्रन्थो के अनुवाद है और दूसरे मे व्याख्यापरक-ग्रन्थ और व्यवहार-सम्बन्धी पुस्तिकाएँ है। कँजुर के सात विभाग है—दुल्ल (विनय), शेस्-यिन् (प्राज्ञापारमिता), फल् चेन् (अवतसक), द्कोन-ब्रगर्चेस (रत्नकूट), म्यड-दस् (निर्वाण), म्दोस्दे (सूत्र) और र-म्युद्-मह्ल (तत्र)। ये सभी सस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद है। फिर चीन मे सन् ईसवी की पहली शताब्दी से ही बौद्ध धर्म का प्रवेशारम्भ हुआ। वहाँ सन् ५१८ से १०१० ई० तक बौद्ध धर्म बारह बार गया। प्रत्येक बार कुछ-न-कुछ नये अनुवाद हुए, इसीलिए चीन मे कभी-कभी एक ही ग्रन्थ के कई-कई अनुवाद पाये जाते हैं। परन्तु जिसे चीनी त्रिपिटक कहा जाता है वह नाममात्र का ही त्रिपिटक है। कोई ऐसा सिद्धान्त और मतवाद नही, जो इसमे स्थान न पा सका हो। इसके बाद कोरिया मे चीन से मूल अनुवाद ग्रन्थ सन् १०१० मे ले जाये गये थे, जो सब-के-सब जापान में अब भी सुरक्षित हैं। इन समस्त उद्गमो से बौद्धो के सस्कृत-साहित्य की विशालता की एक झलक हम पा सकते है। हाल ही में यूरोपियन और भारतीय पण्डितों ने अनेक यत्नो के साथ इन ग्रन्थो मे से कई को फिर से सस्कृत मे उल्था किया है। यह काम अभी शुरू ही हुआ है।

चीनी पर्यटक हुएन्त्साग के जीवन से जान पडता है कि वे महायान सूत्रो के २२४ ग्रथ, अभिधर्म के १९२ ग्रथ; स्थविर-सम्प्रदाय के सूत्र, विनय और अभिधर्म-जातीय १४ ग्रथ, महासाघिक सम्प्रदाय के इसी श्रेणी के १५ ग्रथ, महीशास्त्रक सम्प्रदाय के तीनो श्रेणी के २२ ग्रथ; काश्यपीय सम्प्रदाय के ऐसे ही १७ ग्रथ; धर्मगुप्त-सम्प्रदाय के ४२ ग्रथ साथ ले गये थे। इस पर से यह अनुमान करना अयौक्तिक नही कि सभी बौद्ध-सम्प्रदायो के अपने-अपने त्रिपिटक थे और सबके पास अपने-अपने विशाल साहित्य वर्तमान थे। चीनी तालिका मे मूल सर्वास्तिवाद, महासाघिक, महीशास्त्रक, सर्वास्तिवाद, धर्मगुप्त और काश्यपीय सम्प्रदाय के विनय-ग्रथो का उल्लेख मिलता है। अभिधर्मपिटक के प्रसग

में सर्वास्तिवाद सम्प्रदाय के ६ पादशास्त्र या प्रकरण ग्रथो और सम्मितीय सम्प्रदाय के केवल एक ग्रथ का उल्लेख है। कुछ पडित हुएन्त्साग के विवरण को प्रामाणिक नही मानते और कहना चाहते है कि केवल सर्वास्तिवादी और वैभाषिक सम्प्रदायो के पास ही पालि-त्रिपिटक के अनुरूप त्रिपिटक थे।

लेकिन केवल त्रिपिटक ग्रथ ही सस्कृत मे लिखे गये हो, ऐसी बात नही। बौद्ध नाटक और काव्य तथा स्तोत्र आदि ग्रथ भी काफी लिखे गये थे। इनमे से कइयो का साहित्यिक मूल्य बहुत अधिक कूता गया है। प्रसिद्ध कवि, नाटककार और दार्शनिक अश्वघोष को कालिदास का भी मार्गदर्शक बताया गया है। उनके 'बुद्धचरित' और 'सौन्दरनन्द' निश्चय ही सस्कृत-काव्य के भूषण है। इन दो ग्रथो के सिवा मध्य-एशिया से उनके द्वारा रचित एक नाटक के छिन्न अग का भी उद्धार किया गया है। उनका सूत्रालकार कहानियो का ग्रथ है जो जातक के ढग पर लिखी गई है। अश्वघोष का एक ग्रथ वज्रसूची आधुनिक पाठको के लिए काफी मनोरजक हो सकता है। इसमे जाति-वर्ण-व्यवस्था को अस्वाभाविक सिद्ध किया गया है। अश्वघोष ने महायान के तत्त्व-वाद की भी पुस्तके लिखी है। इनके सम्प्रदाय के दो और भी प्रसिद्ध कवि हो गये है,—मातृचेट और आर्यशूर। अगर तिब्बती अनुवादो पर विश्वास किया जाय, तो मातृचेट अश्वघोष का ही दूसरा नाम है। शूर या आर्यशूर की जातकमाला उनके पूर्व-वर्ती वैभाषिक कवि आर्यचन्द्र की कल्पनामडितिका के ढग पर लिखी गई है। अर्यचन्द्र की पुस्तक का अपूर्व अग ही सस्कृत मे प्राप्त हुआ है। पर यह पुस्तक कई बार चीन, तिब्बत, मगोलिया आदि की भाषा मे अनूदित हो चुकी है।

महावस्तु और ललितविस्तर

हीनयान का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रथ महावस्तुअवदान (या सक्षेप मे महा-वस्तु) है। जैसा कि पहले ही कहा गया है, यह पुस्तक महासाघिक सम्प्रदाय की लोको-त्तरवादी शाखा का विनयपिटक है। लोकोत्तरवादियो के मत से बुद्ध लोकोतर चरित्र के पुरुष है। वे केवल लीला के लिए शरीर ग्रहण करते है, परमार्थत नही। महावस्तु मे वस्तुत. बुद्धदेव का जीवन-चरित ही ग्रथित है जिसमे पाली के लिखे हुए बुद्ध-चरितो से विशेष अन्तर नही है। वह ग्रथ बुद्धदेव के लोकोत्तर चरित्र और करामाती कार्यो से भरा है। निदान-कथा की भाँति इसके भी तीन विभाग है। अन्तिम हिस्से की मुख्य बात प्राय महावग्ग से मिलती है। यद्यपि यह पुस्तक बुद्धदेव की जीवनी है, पर यह जीवनी सिलसिलेवार नही लिखी गई है। बीच-बीच मे जातक की कहानियाँ और धर्मव्याख्यानकारी सूत्र आदि प्राय आते रहते है। सिलसिला प्राय टूट जाता है। सारी पुस्तक मिश्र-सस्कृत मे लिखी गई है। इस ग्रथ मे ऐसी जातक और अवदान-कथाएँ भी पाई जाती हैं जिनका पाली मे कोई पता नहीं चलता। इस दृष्टि से भी इस ग्रथ का महत्त्व है। यद्यपि यह हीनयान-सम्प्रदाय का ग्रथ है, परन्तु इसमे महायान-प्रभाव स्पष्ट है।

ललितविस्तर महायान-सम्प्रदाय का ग्रथ है। पण्डितो का कहना है कि इसमे सभी महायानी लक्षण विद्यमान है, यद्यपि यह ग्रथ मूल रूप से हीनयान-सम्प्रदाय के सर्वास्तिवादियो के लिए लिखा गया था। ललितविस्तर का अर्थ है लीला का विस्तार। यह नाम ही महायान-विश्वास का निदर्शक है। अन्यान्य महायान सूत्रो की भाँति यह भी अपने-आपको महावैपुल्य सूत्र कहता है। इस ग्रथ मे जिस पौराणिक ढग से बुद्ध का वर्णन किया गया है, वह हिन्दू पुराणो की याद दिला देता है और भक्ततत्त्व की व्याख्या तो भगवत की याद दिलाती है। बुद्धदेव आनन्द को उसी प्रकार शरणागत के उद्धार का विश्वास दिलाते है जैसे गीता मे श्रीकृष्ण अर्जुन की ललितविस्तर की गाथाएँ बहुत पुरानी मानी जाती है। सन् ईसवी की प्रथम शताब्दी मे ही इसका एक अनुवाद चीनी भाषा मे हो गया था, किन्तु वर्तमान पुस्तक मे उसके बाद भी प्रक्षेप हुए है। महावस्तु और ललितविस्तर ने चौथी शताब्दी तक निश्चित रूप से यह रूप धारण कर लिया होगा। ललितविस्तर यद्यपि बुद्धदेव के जीवन का वास्तविक महाकाव्य नही है, पर इसमे सभी बातें मूल रूप से विद्यमान है जो ऐसे काव्य का उपादान हैं। पण्डितो का अनुमान है कि अश्वघोष ने अपने प्रसिद्ध काव्य बुद्ध-चरित्र का मसाला इसी ग्रथ के प्राचीनतर रूप से सग्रह किया होगा।

अवदान-साहित्य

अवदान का सम्बन्ध पालि-भाषा के शब्द से होना चाहिए। इसका अर्थ होता है कोई उल्लेख योग्य कार्य। कभी-कभी इसका व्यवहार खराब अर्थ मे भी हुआ है। अवदानो मे जातक कथाओ की भाँति बुद्धदेव के पूर्ववर्ती जन्मो की उल्लेख-योग्य घटनाओ का निबन्धन होता है। कहा जाता है कि अवदानो का भी प्राचीनतम रूप हीनयान-सम्प्रदाय से सम्बद्ध था, पर वर्तमान रूप का सम्बन्ध केवल महायान-सम्प्रदाय से ही है। आर्यशूर और आर्यचन्द्र की जिन दो पुस्तको (जातकमाला और कल्पनामण्डितिका) की पहले चर्चा की जा चुकी है, वे असल मे अवदान की जाति की ही है।

अवदानशतक मे सौ अवदान सगृहीत है। इस ग्रथ का अनुवाद सन् ईसवी के दो सौ वर्ष बाद चीनी भाषा मे हो गया था। इसमे महायानीय पौराणिकता का भी बहुत कम प्रभाव विद्यमान है। इस श्रेणी की एक और पुस्तक कर्मशतक है जो अधिकाश अवदानशतक की ही भाँति है। दुर्भाग्यवश इसका पता केवल एक तिब्बती अनुवाद से ही चलता है। इस जाति के ग्रथो मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रथ दिव्यावदान है जो यद्यपि अवदानशतक के बाद सगृहीत है, पर इसमे ऐसी बहुत-सी कहानियाँ है जो मूलत अवदानशतक की कहानियो की अपेक्षा अधिक प्राचीन हैं। ऐसा अनुमान किया गया है कि इसकी घटनाएँ सम्भवतः मूल सर्वास्तिवादियो (हीनयानी) के विनय-पिटक से ली गई होगी। कहानियाँ अधिकतर सस्कृत-गद्य मे लिखी गई है, जिनमे बीच-बीच में प्राचीन गाथाएँ भी है। कभी-कभी काव्य-पद्धति की अलकृत कविताएँ

भी मिल जाती हैं, जो इस वात का सवूत है कि पुस्तक-रचना के समय काव्य-पद्धति काफी अग्रसर हो चुकी होगी। अनुमान है कि इसका वर्तमान रूप अन्तिम वार सन् ईसवी की चौथी शताब्दी मे निश्चित हो गया होगा। इन पुस्तको से और इनमे भी विशेष रूप से अवदानशतक से काव्यात्मक पद्यो का सग्रह करके कई पुस्तकें लिखी गई है जिनमे कल्पद्रुमावदानमाला, रत्नावदानमाला, अशोकावदानमाला और द्वाविंशावदान मुख्य है। एक और पुस्तक, जिसे भद्रकल्पावदान कहते है, उपगुप्त और अशोक की ३४ कहानियो की है। अवदानशतक की कहानियो को अधिकाश में उपजीव्य मानकर लिखी हुई दूसरी पुस्तक चित्रावदान है। अन्तिम महत्त्वपूर्ण प्रसिद्ध कश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र की अवदान-कल्पलता है जो ग्यारहवी शताब्दी मे लिखी गई थी। तिव्वत में इस पुस्तक का वहुत मान है। ऊपर के सक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि अवदान एक समय मे वहुत ही लोकप्रिय विष था। इस विपय के निश्चय ही सैंकडो ग्रथ लिखे गये होगे जो कालचक्र के पहिये के नीचे पिस गये है। कइयो का पता चीनी और तिव्वती अनुवादो की कृपा से ही लगा है। अवदानो मे से कई ऐसे है जिनकी भापा अलकृत और मँजी हुई है और जो कवित्व के सुन्दर नमूने है।

महायानसूत्र

अव तक जिस साहित्य की चर्चा हुई है उसका एक पैर हीनयान मे है और दूसरा महायान मे। अव जिन ग्रथो की चर्चा की जायगी वे सम्पूर्णत महायान-सम्प्रदाय के है। महायानसूत्रो मे सवसे अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रथ सद्धर्म-पुण्डरीक है। जो कोई भी महायान-सम्प्रदाय के साथ परिचित होना चाहे, उसके लिए इससे अधिक अच्छी सहायक पुस्तक दूसरी नही है। इस ग्रथ के शाक्यमुनि (बुद्ध) मे मनुष्य के कुछ भी चरित्र अवशिष्ट नही रह गये है। वे देवताओ के भी देवता, स्वयभू और भूतमात्र के परित्राता है। उनकी तुलना वहुत-कुछ वैष्णव अवतारो के साथ की जा सकती है। उनका जन्म और मृत्यु केवल दिखावा-भर है, असल मे वे इन दोनो से अतीत है। एक वात जो उल्लेखयोग्य है वह यह है कि सद्धर्म-पुण्डरीक के बुद्धदेव पाली के बुद्ध की भाँति एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूम-घूमकर धर्म-प्रचार नही करते, वल्कि सहस्रो वोधिसत्त्वो और देवताओ से घिरे हुए गृध्रकूट पर्वत पर बैठे रहते है और जव धर्म की वर्पा करना चाहते हैं, जव धर्म का नगाडा वजाना चाहते हैं, जव धर्म की विशाल ज्योति उद्भासित करना चाहते है, तव उनके भ्रूओ के एक केश से ज्योति-रेखा निकलती है, जो अठारह हजार वुद्धलोको को प्रकाशित करती है और वोधित्त्व मैत्रेय को आश्चर्यजनक ज्योति दिखाती हुई अन्त मे बुद्धदेव के पास ही लौट आती है। इसी तरह पुण्डरीक-लिखित वुद्ध-सिद्धान्त भी पाली ग्रथो से भिन्न है। जो कोई भी वुद्ध का उपदेश सुनता है, कोई पुण्य-कार्य करता है, कोई स्तूप वनवा देता है, वही वुद्धत्व प्राप्त कर लेता है। वहाँ मुक्ति वहुत सहज है। यहाँ का वौद्धधर्म उत्तरकालीन पौराणिक हिन्दू धर्म की याद दिला देता है। पुण्डरीक का चीनी भापा में पहला अनुवाद सन्

२२३ ई० में हुआ था। बाद मे और भी कई अनुवाद हुए। सौभाग्यवश मूल ग्रन्थ के कुछ छिन्न अंग तुर्किस्तान मे भी पाये गये हैं। यह प्राप्त अंग हू-ब-हू नेपाली ग्रंथ से नही मिलता, इसलिए यह अनुमान किया गया है कि इस ग्रंथ के अन्तत दो रूप निश्चय ही रहे होगे।

बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर का गुणगान करने वाला एक और महायानसूत्र पाया जाता है, जिसका पूरा नाम अवलोकितेश्वर-गुण-कारण्डव्यूह है; पर सक्षेप मे इसे 'कारण्ड-व्यूह' कहा करते है। इसकी रचना और शैली सब ब्राह्मण पुराणो के ढग की है। पण्डितो के मत से इसका पद्यांश तो सन् ईसवी की चौथी शताब्दी मे ही लिखा गया होगा, पर गद्यांश बाद का लिखा होगा। अवलोकितेश्वर की कल्पना बहुत उच्च कोटि की है। जब तक समस्त प्राणियों का दुःखमोचन न हो जाय, तब तक अवलोकितेश्वर बुद्धत्व ही नही प्राप्त करना चाहते। जिस प्रकार कारण्ड-व्यूह मे अवलोकितेश्वर की महिमा गाई जाती है, उसी प्रकार सुखावती-व्यूह मे अमिताभ बोधिसत्त्व की। सुखावती-व्यूह के नाम से दो पुस्तकें सस्कृत मे पाई जाती हैं, एक छोटी और दूसरी बडी। इनमें का प्रधान प्रतिपाद्य यह है कि जो कोई अमिताभ का गुण-कीर्तन करता है, वह बुद्धलोक को प्राप्त होता है। बडी पुस्तक के बारह अनुवाद चीनी भाषा में हो चुके हैं। सबसे पुराना अनुवाद सन् १४७ और १८६ ई० के बीच का है। छोटी पुस्तक भी तीन बार अनूदित हुई थी। सबसे पुराना अनुवाद कुमार-जीव का है जो सन् ४२० ई० मे हुआ था। चीनी अनुवादो से एक और तरह के ग्रथो का भी पता चलता है। वे हैं अमितायुर्ध्यान-सूत्र। इस श्रेणी का एक और ग्रन्थ अक्षोभ्य-व्यूह पाया गया है जिसमे अक्षोभ्य नामक बोधिसत्त्व का माहात्म्य वर्णित है। इसके भी दो चीनी अनुवाद पाए जाते हैं। पुराना चौथी शताब्दी का है।

इनके अतिरिक्त दार्शनिक महायानसूत्र भी हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण हैं प्रज्ञापार-मिताएँ। इनका प्रतिपाद्य विषय है बोधिसत्त्व की ६ प्रकार की पारमिता या पूर्णता और विशेष भाव से प्रज्ञा अर्थात् ज्ञान की पूर्णता। यह पूर्णता शून्यता के ज्ञान से होती है। नेपाल मे दो प्रकार की परम्परागत प्रसिद्धियाँ प्रचलित हैं। एक के अनुसार पहले सवा लाख श्लोको की प्रज्ञापारमिता थी जो बाद में क्रमश. एक लाख, पचीस हज़ार, दस हज़ार और अन्त में आठ हज़ार श्लोको मे सक्षिप्त हुई। दूसरी प्रसिद्धि के अनु-सार आठ हज़ार वाली प्रज्ञापारमिता ही पहली है; बाकी उसी पर से क्रमशः बढाई गई है। भारतवर्ष में बहुत अधिक प्रज्ञापारमिताएँ लिखी गई थी। तिब्बत और चीन में तो ये और भी बढती ही गईं। चीनी और तिब्बती में लम्बी पारमिताओ के अनु-वाद हैं। कई तो लाख-लाख श्लोको की हैं। खूब सम्भव है कि अष्टसाहस्रिका या आठ सहस्र श्लोको वाली प्रज्ञापारमिता ही प्राचीन हो।

इन पारमिताओं में समस्त जागतिक व्यापारों को माया और अस्तित्वहीन बताया गया है। यहाँ तक कि बुद्धदेव और बोधिसत्त्व भी नही हैं। समस्त पारमिताओं मे इतनी पुनरुक्ति और एकघृष्टता है कि पढते-पढते तबीयत ऊब जाती है। शायद इन

लम्बी रचनाओ का कारण यह हो कि इनका पाठ करना और पाठ का दीर्घकाल तक चलना सन्यासियो का आवश्यक कर्तव्य था और कामकाजहीन सन्यासियो को इन्हे बढाते जाने मे ही लाभ रहा हो । कभी-कभी गैर-बौद्ध विद्वानो को इसमे व्यर्थ की ऊलजलूल (Nonsense) बातें नज़र आई है, पर इस बात को अस्वीकार नही किया जा सकता कि इनके आधारभूत सिद्धान्तो मे गहराई रही होगी । कई महायान आचार्यो ने, जो निश्चय ही बडे भारी-भारी दार्शनिक थे —जैसे नागार्जुन, असग, वसुबन्धु आदि —इन पारमिताओ पर टीकाएँ लिखी है । दुर्भाग्यवश ये टीकाएँ मूल रूप मे उपलब्ध नही हुई हैं, केवल चीनी और तिब्बती अनुवादो से इनके विषय मे हम जान सकते है ।

चीन मे छठी शताब्दी में एक अवतसक सम्प्रदाय का उद्भव हुआ । इसका और जापान के केगन-सम्प्रदाय का सर्वमान्य सूत्र बुद्धावतसक है जिसकी चर्चा महाव्युत्पत्ति नामक बौद्ध-कोष मे आती है । चीनी परम्परा के अनुसार छह अवतसक सूत्र थे जिनमें सबसे बडा एक लाख गाथाओ का था और जो सबसे छोटा था उसमे ३६००० गाथाएँ थी । सन् ४१६ ई० मे छोटे अवतसक सूत्र का अनुवाद चीनी भाषा मे हुआ था । इस प्रकार का कोई अवतसक सूत्र आजकल सस्कृत में उपलब्ध नही है, लेकिन एक गण्डव्यूह महायान सूत्र है जो चीनी अनुवाद से मिलता है । दशभूमिक या दशभूमीश्वर इन्ही अवतसको का एक अश माना जाता है । इनमें उन दशभूमियो या पदो की चर्चा है जिससे बुद्धत्व प्राप्त किया जा सकता है । तिब्बती और चीनी अनुवादो से इन अवतसको की तरह एक रत्नकूट का भी पता चलता है । यह सन् ईसवी की दूसरी शताब्दी मे चीनी भाषा मे अनूदित हुआ था । उक्त अनुवादो में कई परिपृच्छा-ग्रथो की भी चर्चा है जिनमें एक मुख्य राष्ट्रपाल-परिपृच्छा या राष्ट्रपाल सूत्र है । इसका अनुवाद चीन मे छठी शताब्दी में हुआ था ।

जिस प्रकार प्रज्ञापारमिताएँ शून्यवाद का प्रचार करती हैं, उसी प्रकार सद्धर्मलकावतार-सूत्र विज्ञानवाद का । विज्ञानवाद शून्यवाद का ही कुछ नरम रूप है जो यद्यपि जगत् को वाह्यत. असत् मानता है, पर आन्तरिक अनुभूति के निकट उसकी सत्ता को स्वीकार भी करता है । पडितो का कहना है कि उक्त ग्रन्थ एक ही बार नही लिखा गया होगा । इसमें निरन्तर प्रक्षेप होते रहे है । तीन बार यह चीनी भाषा मे अनूदित हुआ । सबसे पहला अनुवाद गुणभद्रक ने ४४३ ई० में किया था । उत्तरकालीन महायान सूत्रो में समाधिराज या चन्द्रप्रदीप-सूत्र और सुवर्ण-प्रभास उल्लेख-योग्य हैं । अन्तिम पुस्तक महायानी देशो मे बहुत प्रचलित है । इसका एक छिन्न अ श मध्य-एशिया में भी पाया गया । इसके भी कई चीनी अनुवाद हुए । प्राप्त प्राचीन अनुवाद पाँचवी शताब्दी का है ।

कुछ महायानी आचार्य

अश्वघोष, मातृचेट और आर्यशूर का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है । और भी कई ऐसे आचार्य हुए हैं जिन्होने अपनी दार्शनिक चिन्ताओ, ग्रन्थो, टीका

और काव्यो से सस्कृत-साहित्य को बहुत समृद्ध किया। इनमें कई एक, जिनकी कीर्ति भारतवर्ष की सीमा लाँघकर सुदूर-पूर्व मे फैल गई थी, भारतवर्ष की विशेष गौरव की वस्तु है। नागार्जुन, आर्यदेव, वसुबन्धु, असग, शान्तिदेव आदि पडितो की लोकोत्तर प्रतिभा का गर्व आज भी यह देश औचित्य के साथ कर सकता है। कुमारजीव के किये हुए चीनी अनुवाद आज चीन मे क्लासिक माने जाते है। इन्होने सैकडो बौद्ध-ग्रथो का चीनी भाषा मे अनुवाद किया था। भारतवर्ष से जाकर वहाँ की भाषा पर अधिकार करके अनुवाद करना आसान काम नही है। इनके सिवा अन्य अनेक आचार्यो ने भी चीन और तिब्बत की भाषा मे अनुवाद किये है। आज भारतवर्ष की खोई हुई सम्पत्ति को सुरक्षित रखने का सम्पूर्ण श्रेय इन परिव्राजक आचार्यो को और साथ ही चीन और तिब्बत के गुणज्ञ जन-समुदाय को है।

नागार्जुन माध्यमिक सम्प्रदाय के आचार्य थे। उन्होने अपनी माध्यमिक कारिका पर स्वयमेव अकुतोभया नामक टीका लिखी थी। भारतीय दार्शनिक और वैज्ञानिक साहित्य मे यह प्रथा खूब लोकप्रिय हुई थी। कहते हैं नागार्जुन ही इस प्रथा (कारिका और टीका दोनो लिखने की प्रथा) के आदि-प्रवर्तक हैं। नागार्जुन के दो और ग्रंथ हैं, युक्तिषष्टिका और श्रीलेख। इत्सिग ने दूसरे को भारतवर्ष मे खूब प्रचलित देखा था। आर्यदेव नागार्जुन के शिष्य थे। इन्ही को काणदेव भी कहते है। शायद इनकी एक आँख कानी थी। इनके नाम पर अनेक ग्रन्थ चलते है। सबसे प्रसिद्ध है चतु शतक, जिसे तिब्बती अनुवाद के आधार पर विश्व-भारती के भूतपूर्व आचार्य प० विधुशेखर भट्टाचार्य ने फिर से सस्कृत मे उल्था करके सम्पादन किया है। यह माध्यमिक सम्प्रदाय का प्रामाणिक ग्रन्थ है। इनके नाम पर एक और चित्तविशुद्धि-प्रकरण नामक ग्रन्थ भी चलता है जिसके कुछ छिन्न अश प्राप्त हुए है। पडित लोग इसको इनकी रचना मानने मे हिचकिचाते है। चीनी अनुवादो मे दो और ग्रथ भी इनके अनुवादित है।

अब तक समझा जाता था कि असग या आर्यासग ही महायान योगाचार सम्प्रदाय के आदि आचार्य थे। परन्तु असल में इस सम्प्रदाय के आदि आचार्य इनके गुरु मैत्रेयनाथ थे। यह सम्प्रदाय विज्ञानवाद का ही प्रचारक है। *अभिसम्यालंकार-कारिका या प्रज्ञापारमितोपदेश* शास्त्र मैत्रेयनाथ की रचना है। चौथी शताब्दी में पचविंशसहस्र-प्रज्ञापारमिता के साथ चीनी भाषा मे इसका अनुवाद हो गया था। महायानसूत्रालकार भी इन्ही का लिखा हुआ ग्रन्थ है। असगदेव की प्रसिद्ध पुस्तक योगाचारभूमिशास्त्र या सप्तदशभूमिशास्त्र का केवल एक अश ही मूल सस्कृत मे उपलब्ध हो सका है। किसी-किसी ने इसे भी मैत्रेयनाथ की ही रचना कहा है, पर हुएनत्सांग तथा तिब्बती ऐतिहासिक इसे असगलिखित ही बताते है। इसके भी कई चीनी अनुवाद हुए हैं। पुराना अनुवाद छठी शताब्दी का है। असग के भाई वसुबन्धु का प्रधान ग्रथ अभिधर्मकोश है जो मूल सस्कृत में नही पाया जा सका है। इसके भी चीनी भाषा मे कई अनुवाद हुए है। सातवी शताब्दी में यह ग्रथ इस देश मे इतना

लोकप्रिय था कि सुप्रसिद्ध कवि वाण ने लिखा है कि तोते भी आपम मे इसकी चर्चा किया करते थे। चीन और जापान मे यह भी बौद्ध धर्म का पाठ्य-ग्रन्थ है और विवादास्पद व्यवस्थाओ के निर्णय के लिए प्रमाण माना जाता है। इस आचार्य ने अपने भाई असग की मृत्यु के पश्चात् अनेक महायान सूत्रो की टीकाएँ लिखी। तिब्वत मे इनके नाम पर और भी अनेक ग्रथ मिलते है। नागार्जुन और आर्यदेव के सम्प्रदाय के दो और प्रसिद्ध टीकाकार हुए: बुद्धपालित और भाव्यविवेक (भव्य)। ये दोनो क्रमश आसगिक और स्वतत्र सम्प्रदायो के आचार्य है।

माध्यमिक और विज्ञानवादी मतो के समन्वय की भी चेष्टा हुई थी। महायान-श्रद्धोत्पाद नामक ग्रथ मे यही चेष्टा है। इसके कर्त्ता अश्वघोष माने जाते है। यह ग्रथ सातवी शताब्दी में चीनी भाषा मे अनूदित हुआ था। हुएन्त्साग जव भारतवर्ष मे तीर्थ-यात्रा को आये थे, तो इस ग्रन्थ का यहाँ प्रचार न देखकर उन्होने फिर से इसे सस्कृत में उल्था करके प्रचारित किया था। दुर्भाग्यवश यह उल्था भी अव नही पाया जाता। चीनी अनुवाद, जिस पर से हुएन्त्साग ने पुनर्वार सस्कृत किया था, सुरक्षित है और चीन, कोरिया और जापान मे वहुत लोकप्रिय है।

पाँचवी शताब्दी मे वसुवन्धु के सम्प्रदाय मे तीन वडे-वडे आचार्य हुए जिनके नाम हैं स्थिरमति, दिङ्नाग और धर्मपाल। इनमे दिङ्नाथ बौद्ध-न्याय के प्रतिष्ठाता कहे जाते है। कहते है कि ये महाकवि कालिदास के प्रतिद्वन्द्वी थे। इसी सम्प्रदाय में धर्मकीर्ति और चन्द्रकीर्ति भी नामी टीकाकार हो गये हैं। चन्द्रगोमिन् का नाम बौद्ध वैयाकरण, दार्शनिक और कवि के रूप मे विख्यात है। शान्तिदेव, जो गुजरात के राजपुत्र कहे जाते है, नि सन्देह वहुत उच्च कोटि के कवि थे। इनके तीन ग्रथ शिक्षासमुच्चय, सूत्रसमुच्चय और वोधिचर्यावतार बौद्धो मे प्रसिद्ध है। अन्तिम पुस्तक प्राप्त हुई है और वह सचमुच ही विश्व-साहित्य की अमूल्य निधि है। कहते है कि भूसुकपाद नामक सिद्ध मे ये अभिन्न है। आठवी शताब्दी मे सुप्रसिद्ध बौद्ध आचार्य शान्तिरक्षित हुए, जिनका तत्त्वसग्रह नामक दार्शनिक ग्रथ वहुत महत्त्वपूर्ण है। यहाँ तक आते-आते बौद्ध-स्रोत भारतवर्ष मे प्राय सूख चला था। ग्यारहवी शताब्दी के अन्त मे एकमात्र उल्लेख-योग्य आचार्य अद्वयराज हुए जिन्होने महायान और वज्रयान सम्वन्धी कविताएँ लिखी।

माहात्म्य, स्तोत्र, धारणी और तंत्र

बौद्ध माहात्म्य और स्रोत हिन्दुओ के-से है। स्वयभू-पुराण का नाम यद्यपि पुराण है, पर है वह एक माहात्म्य ग्रथ। बौद्धो का स्तोत्र-साहित्य काफी वडा है। सवमे अधिक स्तोत्र तारा के हैं। तारा अवलोकितेश्वर की शक्ति और प्रज्ञास्वरूपा है। इन स्तोत्रो और माहात्म्यो के चिह्न प्राचीन सूत्रो मे पाये जाते है।

धारिणी मन्त्रो की पुस्तकें हैं। नाना प्रकार के मन्त्र, जिनके जप से सव प्रकार की वाधाएँ दूर हो जाती है, इनमें सगृहीत है। महायान सूत्रो मे भी ये धारणियाँ पाई जाती हैं। असल मे धारणी और सूत्रो मे कभी भी कडाई के साथ भेद नही किया

गया। धारणियो के नाम पर सूत्र और सूत्रो के नाम पर धारणियाँ प्राय· पाई जाती है। इन धारणियों के विचित्र मन्त्रो का कोई अर्थ नही होता। उदाहरणार्थ, साँपो के भगाने का मत्र है, 'सर-सर सिरी-सिरी सुरु-सुरु नागाना जय-जय जिवि-जिवि जुवु-जुवु'। इसमे 'सर' और 'नागाना' सार्थक पद कहे जा सकते है, पर समूचे वाक्य में वे भी निरर्थक से हो गये है। इन मत्रो के जप करने से निर्दिष्ट सिद्ध-लाभ होने की बात कही गई है। ये मत्र उत्तरकालीन हिन्दू समाज मे बहुधा ज्यो-के-त्यो आ गए है असल मे अन्तिम समय मे बौद्ध धर्म का प्रधान सबल मत्र-तत्र ही रह गये थे। मन्त्रयान और वज्रयान बौद्ध धर्म के अन्तिम प्रतिनिधि है, परन्तु ये भी धीरे-धीरे शैवादि मतो मे घुल-मिल गये।

तन्त्रो की पुस्तके प्रायः शावतो जैसी ही है, अन्तर इतना ही है कि उनमे थोडा-बहुत बौद्धत्व बाकी है। इनमे बताया गया है कि किस विशेष सिद्धि के लिए किस विशेष देवता का किस विशेष मुद्रा मे ध्यान करना चाहिए। ध्यान के लिए देवता के अगो का पूरा विवरण दिया गया है और मूर्ति-शिल्प के द्वारा इस प्रक्रिया को सहजबोध्य भी बनाया गया है। यह मूर्ति-शिल्प बौद्ध-तन्त्रो की अमूल्य देन है। इनमें मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन आदि की विधियाँ भी बताई गई है और जपार्थ मन्त्र-निर्देश भी हैं। कभी अभीष्ट-सिद्धि के लिए यन्त्रो का विधान भी है। ये यन्त्र अक्षरो या अको के रहस्यमय कोष्ठक है। इन्हे विशेष मन्त्रो से अभिमन्त्रित करके धारण करने से भौतिक बाधाएँ दूर होती है। पडितो का अनुमान है कि तन्त्रो के इस विपुल साहित्य पर शैव तन्त्रो का खूब प्रभाव है।

उपसंहार

विशाल बौद्धसाहित्य, जिसने आधी से अधिक दुनिया को अप्रत्यक्ष भाव से प्रभावित किया था और जिसकी अमूल्य चिन्ताएँ अब भी भ्रान्त मानव-समाज को मार्ग दिखा सकती है, अपने अन्तिम दिनो मे धारणी, मन्त्रो और यन्त्रो का शिकार हो गया। वह जहाँ से निकला था, अन्त मे उसी विशाल हिन्दू वाङ्मय मे विलीन हो गया। ससार के इतिहास मे उसका उद्भव, प्रसार और विलय तीनो ही अतुलनीय आश्चर्यजनक व्यापार है।

: ६ :

जैन-साहित्य

जैनधर्म के प्रवर्तक या सस्कर्ता महावीर स्वामी (निगण्ठ नातपुत्त) बुद्धदेव के पूर्ववर्ती थे। परन्तु जैन-साहित्य इस समय जिस रूप मे मिलता है, उसके महावीर-कालीन होने मे बहुतो को सन्देह है। जैनो के दो प्रधान सम्प्रदाय है, श्वेताम्बर और दिगम्बर। श्वेताम्बर ग्रथो से मालूम होता है कि महावीर स्वामी ने जो उपदेश दिया था उसे उनके दो प्रधान शिष्य, इन्द्रभूति और सुधर्मा ने, जो गणधर कहलाते थे, व्यवस्थित रूप से सकलित किया और वह समुच्चय सकलन द्वादशाड्गी कहलाया, अर्थात्, उनकी समस्त वाणी वर्गीकरण करके बारह अगो मे विभक्त की गई।

अभी तक जैन-साहित्य के इतिहास की अच्छी तरह छान-बीन नही हो पाई है और इससे बौद्ध-साहित्य के समान जैन-साहित्य का ठीक-ठीक प्रारम्भिक इतिहास नही बतलाया जा सकता, फिर भी श्वेताम्बर-दिगम्बर सम्प्रदायो की परम्परागत अनुश्रुतियो के आधार से वह इस प्रकार मालूम होता है।

महावीर के निर्वाण की दूसरी शताब्दी मे मगध मे एक द्वादश वर्षव्यापी बडा भारी अकाल पडा। उस समय मौर्य चन्द्रगुप्त राज्य कर रहा था। अकालताडित होकर आचार्य भद्रबाहु अपने बहुत-से शिष्योसहित कर्णाटक देश मे चले गये। जो लोग मगध मे रह गये उनके नेता स्थूलभद्र हुए।

स्थूलभद्र को पूर्वोक्त द्वादशाड्गी के लुप्त हो जाने का डर हुआ, इसीलिए उन्होने महावीर-निर्वाण के लगभग १६० वर्ष बाद पाटलीपुत्र मे श्रमण-सघ की एक सभा बुलाई। उन सबके सहयोग से सम्प्रदाय के मान्य तत्त्वो का ग्यारह अगो मे सकलन किया गया। यह सग्रह 'पाटिपुत्र-वाचना' कहलाता है। बारहवे अग दिट्ठिवाय (दृष्टिवाद) के १४ भागो मे से, जो कि पुव्व या पूर्व कहलाते थे, अन्तिम चार पूर्व नष्ट हो चुके थे, अर्थात् उन्हे सभी शिष्य प्राय भूल गये थे। फिर भी जो कुछ याद था उसका सग्रह कर लिया गया। इस सभा मे भद्रबाहु उपस्थित नही थे।

भद्रबाहु ने लौटकर देखा कि उनके वापस आये हुए दल के साथ इस दल का बडा भेद है। जो लोग मगध मे रह गये थे वे वस्त्र पहनने लगे थे, परन्तु भद्रबाहु और उनके शिष्य कडाई के साथ महावीर के नियमो का पालन करते रहे। जान पडता है, यहाँ से जैनो के दो सम्प्रदाय हो गये। भद्रबाहु और उनके शिष्य दिगम्बर और स्थूल-भद्र और उनके शिष्य श्वेताम्बर कहलाये। इसका परिणाम यह हुआ कि दिगम्बरो ने पाटलिपुत्र की सभा द्वारा सगृहीत अगो और पूर्वो को अस्वीकार कर दिया और कह

दिया कि असली अग-पूर्व तो लुप्त हो चुके है।

कुछ समय और बीतने पर जान पडता है कि श्वेताम्बरो का पूर्वोक्त सकलन भी अव्यवस्थित या अस्त-व्यस्त हो गया और तब महावीर-निर्वाण की छठी शताब्दी मे आर्य स्कन्दिल के आधिपत्य मे मथुरा मे फिर एक सभा की गई और फिर जो कुछ बच रहा था वह सुव्यवस्थित किया गया। इस उद्धार को 'माथुरी-वाचना' कहते है। इसके बाद महावीर-निर्वाण की दसवी शताब्दी के लगभग (सन् ई० की छठी शताब्दी) वल्लभी-नगरी (काठियावाड़) मे एक और सभा की गई जिसके अध्यक्ष देवर्धिगणि क्षमाश्रमण हुए जो उन दिनो सम्प्रदाय के गणधर या नेता थे। इस सभा मे फिर से ग्यारह अगो का सकलन हुआ। बारहवाँ अग दृष्टिवाद तो इसके पहले ही लुप्त हो चुका था। इस समय जो ग्यारह अग उपलब्ध है वे देवर्धिगणि के सकलन किये हुए माने जाते है।

इस वर्णन से इतना तो स्पष्ट है कि अगो का वर्तमान आकार छठी शताब्दी का है और इसलिए इनमे निश्चय ही महावीर स्वामी के बाद की बहुत-सी बाते घुल-मिल गई होगी। फिर भी यह नही कहा जा सकता कि इनमे प्राचीन अग है ही नही। असल मे सग्रह और सकलन चाहे जब क्यो न किया जाय उसमे प्राचीन अशो का यथासम्भव सुरक्षित रखा जाना ही अधिक सगत जान पडता है। और फिर वल्लभी की सभा ने पाटलिपुत्र और मथुरा वाली सभा के सकलन का ही सस्कार या जीर्णोद्धार किया था, कुछ नया सकलन नही किया था।

दिगम्बरो के मत से भगवान् महावीर की दिव्यवाणी को अवधारण करके उनके प्रथम शिष्य इन्द्रभूति (गौतम) गणधर ने अग-ग्रन्थो की रचना की।[1] फिर उन्हे अपने सधर्मा सुधर्मा (लोहार्य) को और सुधर्मा स्वामी ने जम्बूस्वामी को दिया। जम्बूस्वामी से अन्य मुनियो ने उनका अध्ययन किया। यह सब महावीर स्वामी के जीवन-काल मे हुआ। इसके बाद विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु ये पाँच श्रुतकेवली हुए। इन्हे पूर्वोक्त अग और पूर्वो का सम्पूर्ण ज्ञान था। महावीर-निर्वाण के ६२ वर्ष बाद तक जम्बूस्वामी का और उनके १०० वर्ष बाद तक भद्रबाहु का समय है। अर्थात् दिगम्बर शास्त्रो के अनुसार महावीर-निर्वाण के १६२ वर्ष बाद तक अग और पूर्वो का अस्तित्व रहा।

इसके बाद वे क्रमश लुप्त होते गये और वीर-निर्वाण ६८३ तक एक तरह से सर्वथा लुप्त हो गये। अन्तिम अगधारी लोहार्य (द्वितीय) बतलाये गये है जिनको केवल एक आचाराग का ज्ञान था।

इसके बाद अग और पूर्वो के एक देश के ज्ञाता और उस देश के भी अगो के ज्ञाता आचार्य हुए जिनमे सौराष्ट्र के गिरिनगर के धरसेनाचार्य का नाम उल्लेखनीय है। उन्हे अग्रायणीपूर्व के पचमवस्तुगत महाकर्मप्राभृत का ज्ञान था। इन्होने अपने अन्तिम

---

१ तेनेन्द्रभूतिगणिना तद्दिव्यवचोऽवबुध्य तत्त्वेन।
ग्रन्थोऽङगपूर्वनाम्ना प्रतिरचितो युगपदपराह्णे ॥ ६६—श्रुतावतार

काल में आन्ध्रदेश से भूतबलि और पुष्पदन्त नामक शिष्यो को बुलाकर पढाया और तब इन शिष्यो ने विक्रम की लगभग दूसरी शताब्दी मे षट्-खण्डागम तथा कषायप्राभृत सिद्धान्तो की रचना की। ये सिद्धान्त-ग्रथ बडी विशाल टीकाओं के सहित अब तक सिर्फ कर्णाटक के मूडविद्री नामक स्थान में सुरक्षित थे, अन्यत्र कही नही थे। कुछ ही समय हुआ इनमे से दो टीका-ग्रथ धवला और जय-धवला बाहर आये है और उनमे से एक वीरसेनाचार्यकृत धवला टीका का प्रकाशन आरम्भ हो गया है। इस टीका के निर्माण का समय शक सवत् ७३८ है।[1]

ऐसा मालूम होता है कि श्वेताम्बर-मान्य अग-ग्रथ एक काल के लिखे हुए नही है। सम्भवत इनकी रचना महावीर-निर्वाण के अव्यवहित बाद से लेकर कुछ-न-कुछ देवर्द्धिगणि के काल तक होती रही होगी। इसका एक प्रमाण यह भी है कि आर्य सुधर्म, आर्य श्याम और भद्रबाहु आदि महावीर के परवर्ती अनेक आचार्य अगो और उपागो के रचयिता माने जाते है।

सम्पूर्ण जैनागम छः भागो में विभक्त है—(१) बारह अग, (२) बारह उवग या उपाग, (३) दस पइण्णा या प्रकीर्णक, (४) छह छेयसुत्त या छेदसूत्र, (५) दो सूत्रग्रथ, (६) चार मूल सुत्त या मूल सूत्र। ये सभी ग्रथ आर्ष या अर्ध-मागधी प्राकृत मे लिखे हुए हैं। कुछ आचार्यो के मत से बारहवाँ अग दृष्टिवाद सस्कृत मे था। बाकी जैन-साहित्य महाराष्ट्री प्राकृत, अपभ्रश और सस्कृत मे है।

अंग और उपाग

पहला अग आयारगसुत्त या आचारागसूत्र है जो दो विस्तृत श्रुत-स्कन्धो मे जैन मुनियो के कर्तव्याकर्तव्य-आचार का निर्देश करता है। विद्वानों के मत से इसका प्रथम श्रुतस्कन्ध दूसरे से पुराना होना चाहिए। बौद्ध-साहित्य मे जिस प्रकार गद्य-पद्यमय रचनाएँ पाई जाती है, ठीक वैसे ही इसमे भी हैं। जैन और बौद्ध शास्त्रो मे जो अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है, वह यह है कि जहाँ बौद्ध-सघ से नियमो मे बहुत-कुछ ढील दिखलाई पडती है, वहाँ जैन-सघ के नियमो और अनुशासनो मे बडी कडाई की व्यवस्था है।

बारह अग ये है : १ आयारगसुत्त (आचारागसूत्र), २ सूयगडग (सूत्र-कृताग), ३ ठाणाग (स्थानाग), ४ समवायग (समवायाग), ५ भगवती विया-हण्णति (भगवती व्याख्याप्रज्ञप्ति), ६ नाया धम्मकहाओ (ज्ञातृध र्मकथा), ७ उवास-गदसाओ (उपासकदशा), ८ अन्तगडसाओ (अन्तकृद्दशा), ९ अणुत्तरोववाइयदसाओ (अनुत्तरोपपातिकदशा), १० पण्हवागरणाई (प्रश्नव्याकरणानि), ११ विवागसुय (विपाकश्रुत), १२ दिट्ठिवाय (दृष्टिवाद)।

बारह उपाग ये है १. उपवाइय (औपपातिक), २ रायपसेणइज्ज (राज-

---

१ कषायप्राभृत सिद्धान्त की जयधवला का भी प्रकाशन आरम्भ हो गया है। इसके सिवाय षट्खडा-गम का छठा खड महाबन्ध भी छपने लगा है।

प्रश्नीय), ३ जीवाभिगम, ४ पन्नवणा (प्रज्ञापना), ५ सूरपण्णत्ति (सूर्य-प्रज्ञप्ति), ६ जम्बुद्दीवपण्णत्ति (जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति), ७ चन्द-पण्णति (चन्द्रप्रज्ञप्ति), ८ निरयावली, (नरकावलिका), ९. कप्पाबडसिआओ (कल्पावतसिका), १०. पुप्फचूलिआओ (पुष्पचूलिका), ११ बण्हिदसाओ (वृष्णिदशाः) ।

दस पइण्णा (प्रकीर्णक) ये है : १ वीरभद्रलिखित चऊसरण (चतु शरण), २. आउरपच्चक्खाण (आतुरप्रत्याख्यान), ३. भत्तपरिण्णा (भक्तपरिज्ञा), ४ सथार (सस्तार), ५ तडुल-वेयालिय (तन्दुलवैचारिक), ६ चन्दाविज्झय (चन्द्रवेधक), ७ देविन्दत्थअ (देवेन्द्रस्तव), ८. गणिविज्जा (गणिविद्या), ९ महापच्चक्खाण (महाप्रत्याख्यान), १० वीरत्थअ (वीरस्तव) ।

छ छेद सूत्र ये है . १. निसीह (निशीथ), २. महानिसीह (महानिशीथ), ३ ववहार (व्यवहार), ४. आचारदसाओ (आचारदशाः), ५ कप्प (बृहत्कल्प), ६. पचकप्प (पञ्चकल्प) । पचकल्प के बदले कोई-कोई जिन भद्ररचित जीयकप्प या जीतकल्प को छठा सूत्र मानते है ।

· चार मूल सुत्त (मूलसूत्र) ये है . १. उत्तराज्भाय (उत्तराध्याया) या उत्तराज्भयन (उत्तराध्ययन), २ आवस्सयन (आवश्यक), ३. दसवेआलिय (दशवैकालिक), ४ पिण्डनिज्जुत्ति (पिण्डनिर्युक्ति) । तृतीय और चतुर्थ मूल सूत्रो के स्थान पर कभी-कभी ओहनिज्जुत्ति (ओघनियुक्ति) और पक्खीसुत्त (पाक्षिक सूत्र) का नाम लिया जाता है ।

दो और ग्रथ इस प्रकार है—१. नन्दीसुत्त (नन्दि सूत्र) और २. अणुयोगदार (अणुयोगद्वार) ।

इस प्रकार इन ४५ ग्रथो को सिद्धान्त-ग्रथ माना जाता है, पर कही-कही इन ग्रथो के नामो से मतभेद भी पाया जाता है। मतभेद वाले ग्रथो को भी सिद्धान्तग्रथ मान लिया जाय तो उनकी सख्या सब मिलाकर ५० के आस-पास होती है । अगो मे साधारणत. जैन तत्त्ववाद, विरुद्धमत का खण्डन और जैन ऐतिहासिक कहानियाँ विवृत है । अनेक मे आचार-व्रत आदि का वर्णन है । उपागो मे कई (नम्बर ५, ६, ७) बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । उनमे ज्योतिष, भूगोल, खगोल आदि का वर्णन है। सूर्यप्रज्ञप्ति और चन्द्रप्रज्ञप्ति (दोनो प्राय समान वर्णन वाले हैं) ससार के ज्योतिषिक साहित्य मे अपना अद्वितीय सिद्धान्त उपस्थित करती है । इनके अनुसार आकाश मे दिखने वाले ज्योतिष्क पिण्ड दो-दो है, अर्थात् दो-दो सूर्य है, दो-दो नक्षत्र । वेदाग ज्योतिष की भाँति ये दोनो ग्रथ खीष्टपूर्व छठी शताब्दी के भारतीय ज्योतिष-विज्ञान के रेकार्ड हैं । सब मिलाकर जैन सिद्धान्त ग्रन्थो मे बहुत ज्ञातव्य और महत्त्वपूर्ण सामग्री बिखरी पडी है, पर बौद्ध-साहित्य की भाँति इस साहित्य ने अब तक देश-विदेश के पण्डितो का ध्यान आकृष्ट नही किया है । कारण कुछ तो इनकी प्रतिपादन-शैली की शुष्कता है और कुछ उस वस्तु का अभाव जिसे आधुनिक पण्डित Human-interest कहते है ।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपपण्णति को उपाग माना है और दिगम्बरो ने दृष्टिवाद के पहले भेद परिकर्म मे इनकी गणना की है। इसी तरह श्वेताम्बरो के अनुसार जो सामायिक, सस्तव, वन्दना और प्रतिक्रमण दूसरे मूल-सूत्र आवश्यक के अग-विशेष हैं उन्हे दिगम्बरो ने अग-बाह्य के चौदह भेदो मे गिनाया है। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार और निशीथ नामक ग्रथ भी अगबाह्य बतलाये गये है। अगो के अतिरिक्त जो भी साहित्य है, वह सब अगबाह्य है। अग-प्रविष्ट और अग-बाह्य भेद श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे भी माने गये है और उपाग एक तरह से अग-बाह्य ही है। दिगम्बर सम्प्रदाय मे उपाग भेद का उल्लेख नही है।

परन्तु उक्त अग और अग-बाह्य ग्रथो के दिगम्बर सम्प्रदाय मे सिर्फ नाम ही नाम है, इन नामो का कोई ग्रथ उपलब्ध नही है। उनका कहना है कि वे सब नष्ट हो चुके है।

दिगम्बरो ने एक दूसरे ढग से भी समस्त जैन-साहित्य का वर्गीकरण करके उसे चार भागो मे विभक्त किया है; (१) प्रथमानुयोग, जिसमे पुराण-पुरुषो के चरित्र और कथा-ग्रथ है, जैसे पद्मपुराण, हरिवशपुराण, त्रिषष्टिलक्षणमहापुराण (आदिपुराण और उत्तरपुराण)। (२) करणानुयोग, जिसमे भूगोल-खगोल का, चारो गतियो का और काल-विभाग का वर्णन है, जैसे त्रिलोकप्रज्ञप्ति, त्रिलोकसार, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, सूर्य-चद्र-प्रज्ञप्ति आदि। (३) द्रव्यानुयोग जिसमे जीव-अजीव आदि तत्त्वो का पुण्य-पाप, बन्ध-मोक्ष का वर्णन हो, कुन्दकुन्दाचार्य के समयसार, प्रवचनसार, पचास्तिकाय, उमास्वाति का तत्त्वार्थाधिगम आदि। (४) चरणानुयोग, जिसमे मुनियो और श्रावको के आचार का वर्णन हो, जैसे बट्टकेर का मूलाचार, आशाधर के सागार-अनगारधर्मामृत, समन्तभद्र का रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदि। इन चार अनुयोगो को वेद भी कहा गया है।

दिगम्बर-सम्प्रदाय के अनुसार बारह अगो के नाम वही है जो ऊपर लिखे गये है। बारहवे अग दृष्टिवाद के पाँच भेद किये है—१. परिकर्म, २. सूत्र ३ प्रथमानुयोग, ४ पूर्वगत और ५ चूलिका। फिर पूर्वगत के चौदह भेद बतलाये है—१. उत्पादपूर्व, २ अग्रायाणी, ३. वीर्यानुवाद, ४. अस्तिनास्तिप्रवाद, ५ ज्ञानप्रवाद, ६ सत्यप्रवाद ७ आत्मप्रवाद, ८ कर्मप्रवाद, ९ प्रत्याख्यान, १० विद्यानुप्रवाद, ११ कल्याण, १२. प्राणावाय, १३ क्रियाविशाल और १४ लोकबिन्दुसार। इन बारहो अगो की रचना भगवान् के साक्षात् शिष्य गणधरो द्वारा हुई बतलाई गई है। इनके अतिरिक्त जो साहित्य है वह अग-बाह्य नाम से अभिहित किया गया है। उसके चौदह भेद है, जिन्हे प्रकीर्णक कहते हैं १ सामायिक, २ सस्तव, ३ वन्दना, ४ प्रतिक्रमण, ५ विनय, ६ कृतिकर्म, ७ दशवैकालिक, ८ उत्तराध्ययन, ९ कल्पव्यवहार, १० कल्पाकल्प, ११ महाकल्प, १२ पुण्डरीक, १३. महापुण्डरीक, १४ निशीथ। इन प्रकीर्णको के रचयिता आरातीय मुनि बतलाये गये है जो अग-पूर्वो के एक देश के ज्ञाता थे।

सिद्धान्तोत्तर साहित्य

देवर्धिगणि के सिद्धान्त-ग्रन्थ सकलन के पहले से ही जैन आचार्यो के ग्रन्थ लिखने का प्रमाण पाया जाता है। सिद्धान्त-ग्रन्थो मे कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं जिन्हे निश्चित रूप से किसी आचार्य की कृति कहा जा सकता है। बाद मे तो ऐसे ग्रन्थों की भरमार हो गई। साधारणत ये ग्रन्थ जैन प्राकृत मे लिखे जाते रहे, पर सस्कृत भाषा ने भी सन् ईसवी के बाद प्रवेश पाया। कई जैन आचार्यो ने सस्कृत भाषा पर भी अधिकार कर लिया, फिर भी प्राकृत और अपभ्रंश को त्यागा नही गया। सस्कृत को भी लोक-सुलभ बनाने की चेष्टा की गई। यह पहले ही बताया गया है कि भद्रबाहु महावीर स्वामी के निर्वाण की दूसरी शताब्दी मे वर्तमान थे। कल्पसूत्र उन्ही का लिखा हुआ कहा जाता है। दिगम्बर लोग एक और भद्रबाहु की चर्चा करते है जो सन् ईसवी से १२ वर्ष पहले हुए थे। यह कहना कठिन है कि कल्पसूत्र किस भद्रबाहु की रचना है। कुन्दकुन्द ने प्राकृत मे ही ग्रन्थ लिखे है। इनके सिवाय उमास्वामी, वट्टकेर सिद्धसेन, दिवाकर, विमलसूरि, पालित्त आदि आचार्य सन् ईसवी के कुछ आगे-पीछे उत्पन्न हुए, जिनमे से कई दोनो सम्प्रदायो मे समान भाव से आहत है। पाँचवी शताब्दी के बाद एक प्रसिद्ध दार्शनिक और वैयाकरण हुए जिन्हे देवनन्दि (पूज्यपाद) कहते है। सातवी-आठवी शताब्दी दर्शन के इतिहास मे अपनी उज्ज्वल आभा छोड़ गई। प्रसिद्ध मीमासक कुमारिलभट्ट का जन्म इन्ही शताब्दियो मे हुआ, जिन्होने बौद्ध और जैन आचार्यो (वशेषकर समन्तभद्र और अकलक) पर कटु आक्रमण किया तथा बदले मे जैन आचार्यो (विशेष रूप से प्रभाचन्द्र और विद्यानन्द) द्वारा प्रत्याक्रमण पाया। इन्ही शताब्दियो मे सुप्रसिद्ध आचार्य शकर स्वामी हुए जिन्होने अद्वैत वेदात की प्रतिष्ठा की। इस शताब्दी मे सर्वाधिक प्रतिभाशाली जैन आचार्य हरिभद्र हुए जो ब्राह्मणवश मे उत्पन्न होकर समस्त ब्राह्मण शास्त्रो के अध्ययन के बाद जैन हुए थे। इनके लिखे ८८ ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं, जिनमे बहुत-से छप चुके हैं।

बारहवी शताब्दी मे प्रसिद्ध जैन आचार्य हेमचन्द्र का प्रादुर्भाव हुआ। इन्होने दर्शन, व्याकरण और काव्य तीनो मे समान भाव से कलम चलाई। इन नाना विषयो मे, नाना भाषाओ मे और नाना मतो मे अगाध पाण्डित्य प्राप्त करने के कारण इन्हे शिष्य-मण्डली 'कलिकालसर्वज्ञ' कहा करती थी। इस शताब्दी मे और इसके बाद भी जैन-ग्रन्थो और टीकाओ की बाढ-सी आ गई। इन दिनो की लिखी हुई सिद्धान्त-ग्रन्थो की अनेक टीकाएँ बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। असल मे यह युग ही टीकाओ का था, भारतीय मनीषा सर्वत्र टीका मे व्यस्त थी।

विमलसूरि का पउमचरिय (पद्मचरित) नामक प्राकृत काव्य, जो शायद सन् ईसवी के आरम्भ काल मे लिखा गया था, काफी मनोरजक है। इसमे राम की

कथा है जो हिन्दुओ की रामायण से वहुत भिन्न है। ग्रथ मे वाल्मीकि को मिथ्यावादी कहा गया है। इस पर से यह अनुमान करना असगत नही कि कवि ने वाल्मीकि की रामायण को देखा था। दशरथ की तीन रानियो मे कौशल्या के स्थान पर अपराजिता नाम है जो पद्म या राम की माता थी। दशरथ के वडे भाई थे अनन्तरथ। ये जैन साधु हो गये थे, इसीलिए दशरथ को राज्य लेना पडा। जनक ने अपनी कन्या सीता को राम से व्याहने का इसलिए विचार किया था कि राम (पद्म) ने म्लेच्छो के विरुद्ध जनक की सहायता की थी। परन्तु विद्याधर लोग झगड पडे कि सीता पहले से उनके राजकुमार चन्द्रगति की वाग्दत्ता थी। इसी झगडे को मिटाने के लिए धनुष वाली स्वयवर-सभा हुई थी। अन्त मे दशरथ जैन भिक्षु हो गये। भरत की यही इच्छा थी, पर राम और कैकेयी के आग्रह से वे तब तक के लिए राज्य सँभालने को प्रस्तुत हो गये जब तक पद्म (राम) न लौट आवे। आगे की कथा प्रायः सब वही है। अत मे राम को निर्वाण प्राप्त होता है। यहाँ राम सम्पूर्ण जैन वातावरण मे पले हैं।

सन् ६७५ मे रविषेण ने सस्कृत मे जो पद्मचरित लिखा वह विमल के प्राकृत पउमचरिय का प्रायः सस्कृत रूपान्तर या अनुवाद है। गुणभद्र भदन्त के उत्तरपुराण के ६८वें पर्व मे और हेमचन्द्र के त्रिषष्टिशलाका-पुरुष चरित के ७वें पर्व मे भी यह कथा है। हेमचन्द्र की कृति को जैन-रामायण भी कहते है। रामायण की भाँति महाभारत की कथा भी जैन-ग्रथो मे बार-बार आई है। सबसे पुराना सघदास गणिका वसुदेवहिण्डी नामक विशाल ग्रथ प्राकृत भाषा मे है और सस्कृत मे पुन्नाट सघ के आचार्य जिनसेन का ६६ सर्गी हरिवशपुराण है। सकलकीर्ति आदि और भी अनेक विद्वानो ने हरिवशपुराण लिखे हैं। इसी तरह १२०० ई० मे मलधारि देवप्रभसूरि ने पाण्डवचरित नामक एक काव्य लिखा था जो महाभारत का सक्षिप्त रूप है। १६वी शताब्दी मे शुभचन्द्र ने एक पाण्डव-पुराण, जिसे जैन महाभारत भी कहते है, लिखा था। अपभ्रश भाषा मे तो महापुराण, हरिवशपुराण, पद्मपुराण, स्वयभु, पुष्पदत आदि-आदि अनेक कवियो ने लिखे है।

जैन पुराणो के मूल प्रतिपाद्य विषय ६३ महापुरुषो के चरित्र हैं। इनमे २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ वलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रतिवासुदेव है। इन चरित्रो के आधार पर लिखे गये ग्रथो को दिगबर लोग साधारणत 'पुराण' कहते हैं और श्वेताम्बर लोग 'चरित'। पुराणों मे सबसे पुराना त्रिषष्टिलक्षणमहापुराण (सक्षेप मे महापुराण) है जिसके आदिपुराण और उत्तरपुराण, ऐसे दो भाग है। आदिपुराण के अतिम पाँच अध्यायो को छोडकर बाकी के लेखक जिनसेन (पचस्तूपान्वयी) है तथा अन्तिम पाँच अध्याय और समूचा उत्तरपुराण उनके शिष्य गुणभद्र का लिखा हुआ है। पुराणो की कथाएँ वहुधा राजा श्रेणिक (विम्बसार) के प्रश्न करने पर गौतम गणधर द्वारा कहलाई गई है। महापुराण का रचना-काल शायद सन् ईसवी की नवी शताब्दी है। इन पुराणो से मिलते हुए श्वेताम्बर चरितो मे सबसे प्रसिद्ध है हेमचन्द्र का त्रिषष्टि-शलाका-पुरुषचरित, जिसे आचार्य ने स्वय महाकाव्य कहा है। इस अश की वहुत-सी

कहानियाँ यूरोपियनो के मत से विश्व-साहित्य मे स्थान पाने योग्य है। वीरनन्दी का चन्दप्रभचरित, बादिराज का पार्श्वनाथचरित, हरिचन्द का धर्मशर्माभ्युदय, धनजय का द्विसधान, वाग्भट का नेमिनिर्वाण, अभयदेव का जयतविजय, मुनिचन्द का शान्तिनाथ-चरित आदि उच्च कोटि के महाकाव्य है। ऐसे भी चरित है जो ६३ पुराण-पुरुषो के अतिरिक्त अन्य प्रद्युम्न, नागकुमार, वराग, यशोधर, जीवधर, जम्बूस्वामी, जिनदत्त, श्रीपाल आदि महात्माओ के है और इनकी संख्या काफी अधिक है। पार्श्वनाथचरित को अवलम्बन करके लिखे गये काव्यो की भी सख्या कम नही है। वादिराज, असग, वादिचन्द्र, सकलकीर्ति, माणिक्यचन्द्र, भावदेव और उदयवीर गणि आदि अनेक दिगम्बर-श्वेताम्बर कवियो ने इस विषय पर खूब लेखनी चलाई है।

जैनो के साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अग प्रबध है, जिन्हे ऐतिहासिक विवृत्तियाँ कह सकते है। चन्दप्रभसूरि का प्रभावकचरित, मेरुतुङ्ग का प्रबधचिन्तामणि (१३०६ ई०), राजशेखर का प्रबधकोष (१३०८ ई०), जिनप्रभसूरि का तीर्थकल्प (१३२६-३१ ई०) आदि रचनाएँ नाना दृष्टियो से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इन प्रबन्धो ने इस बात को असिद्ध कर दिया है कि भारतीयो मे ऐतिहासिक दृष्टि का अभाव था। इसी प्रकार जैन मुनियो की लिखी कहानियो की पुस्तके भी काफी मनोरजक है। पालित्त (पादलिप्त) सूर की तरङ्गवती कथा काफी प्राचीन पुस्तक है। हरिभद्र का प्राकृत गद्यकाव्य समारइच्च-कहा एक धार्मिक कथा-ग्रथ है। इसी तरह की 'कुवलय-माला' कथा भी है जिसके रचयिता दाक्षिण्यचिह्न उद्योतन सूरि है (आठवी शताब्दी)। इसी के अनुकरण पर सिद्धर्षि ने सस्कृत मे उपमितिभवप्रपञ्चा कथा लिखी थी (९०६ ई०)। धनपाल का अपभ्रश काव्य 'भविसयत्त-कहा' काफी प्रसिद्ध है। ऐसी और भी अनेक कथाएँ लिखी गई है। यद्यपि ये धर्म-कथाएँ कही जाती है, पर अधि-काश मे काल्पनिक कहानियाँ है। चम्पू जाति के काव्य भी जैन-साहित्य मे बहुत अधिक है। सोमदेव का यशस्तिलक (९५९ ई०) काफी प्रसिद्धि पा चुका है। हरिचन्द का जीवन्धरचम्पू, अर्हद्दास का पुरुदेवचम्पू (१३वी सदी आदि इसी जाति की रचनाएँ है। धनपाल की तिलकमजरी (९७० ई०), ओडयदेव (वादीभसिह) की गद्यचिता-मणि, कादम्बरी के ढङ्ग के गद्य-काव्य है (११वी सदी)। इनके अतिरिक्त कहानियो की और भी दर्जनों पुस्तके है जिनका मूल उद्देश्य जैन धर्म की महिमा वर्णन करना है। कथाओ के कई सग्रह भी है जो कथाकोश कहलाते है। इनमे पुन्नाटसघ के आचार्य हरिषेण का कथाकोष सबसे पुराना है (ई० स० ९३२)। प्रभाचन्द्र, नेमिदत्त ब्रह्मचारी, रामचन्द्र मुमुक्षु आदि के कथाकोश अपेक्षाकृत नवीन है।

श्रीचन्द्र का एक कथाकोश अपभ्रश भाषा मे भी है। ऐसे ही जिनेश्वर, देव-भद्र, राजशेखर, हेमहस आदि के कथा-ग्रन्थ है। यह साहित्य इतना विशाल है कि इस क्षुद्रकाय परिचय मे सबका नाम देना भी मुश्किल है। नाना दृष्टियो से, विशेषकर जनसाधारण के जीवन के सम्बन्ध मे जानने के लिए इन ग्रन्थो का बहुत महत्त्व है।

जैन आचार्यों ने नाटक भी लिखे है जिनमे के अधिकाश असाम्प्रदायिक है।

हेमचन्द्राचार्य के शिष्य रामचन्द्रसूरि के कई नाटक है। नलविलास सत्यहरिश्चन्द्र, कौमुदीमित्रानन्द, राघवाभ्युदय, निर्भय-भीम-व्यायोग आदि नाटक प्रसिद्ध है। कहते है, इन्होने १०० प्रकरण-ग्रन्थ लिखे थे। विजयपाल के द्रौपदी-स्वयवर, हस्तिमल्ल के विक्रात कौरव और सुभद्रा मे भी महाभारतीय कथाओं को नाटक का रूप दिया गया है। हस्तिमल्ल ने रामायण की कथा का आश्रय लेकर मैथिली-कल्याण और अजनापवनजय नामक दो और नाटक लिखे है। यशश्चन्द्र का मुद्रित कुमुदचन्द्र एक साम्प्रदायिक नाटक है जिसमे कुमुदचन्द्र नामक दिगम्बर पडित का श्वेताबर पडित से पराजित होना वर्णन किया गया है (११२४ ई०)। वादिचन्द्रसूरि का ज्ञानसूर्योदय श्रीकृष्ण मिश्र के सुप्रसिद्ध 'प्रबोध-चन्द्रोदय' नाटक के ढग का, एक तरह से उसके उत्तर रूप मे लिखा हुआ नाटक है। जयसिंह का हम्मीर-मद-मर्दन ऐतिहासिक नाटक है। सन् १२०३ ई० के आस-पास यश पाल ने मोहराज-पराजय नामक रूपक लिखा था। मेघप्रभाचार्य का धर्माभ्युदय काफी मशहूर है।

काव्य-नाटको के सिवा जैन कवियो ने हिन्दू और बौद्ध आचार्यों की भाँति एक बहुत बडे स्तोत्र-साहित्य की भी रचना की है। नीति-ग्रन्थो की भी जैन-साहित्य मे कमी नही है। राष्ट्रकूट अमोघवर्ष की प्रश्नोत्तररत्नमाला को ब्राह्मण-बौद्ध और जैन सभी अपनी सम्पत्ति मानते है। इसके सिवाय प्राकृत और सस्कृत मे जैन पडितो के लिखे हुए विविध नीति-ग्रन्थ बहुत अधिक है। दिगम्बर आचार्य अमितगति के सुभाषित रत्नसन्दोह, योगसार और धर्मपरीक्षा (१०१३) महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इन ग्रन्थो मे सभी जैन-प्रिय विषय है वैराग्य, स्त्री-निन्दा, ब्राह्मण-निन्दा, त्याग इत्यादि। हेमचन्द्र का योगशास्त्र और शुभचन्द्र का ज्ञानार्णव बहुत लोकप्रिय ग्रथ है। और भी अनेक नीतिग्रथ है जिनमे सोमप्रभ के कुमारपाल प्रतिबोध, सूक्तिमुक्तावली और शृगार-वैराग्य तरगिणी, चारित्रसुन्दर का शीलदूत (१४२० ई०), समयसुन्दर की गाथासहस्री (१६३० ई०) प्रसिद्ध है।

लेकिन जैन आचार्यो का सबसे महत्त्वपूर्ण अग है उनकी दार्शनिक सैद्धातिक उक्तियाँ। यह जानी हुई बात है कि इन पण्डितो ने न्यायशास्त्र को पूर्ण ताकत पहुँचाने मे बहुत काम किया है। इनमे सबसे प्राचीन आचार्य जो दोनो सम्प्रदायो मे आदृत होते है, समन्तभद्र और सिद्धसेन हैं। कुन्द-कुन्द, अमृतचद्र, कार्तिकेय स्वामी, उमास्वाति, देवनदि, अकलक, प्रभाचन्द्र, वादिराज, सोमदेव, आशाधर आदि दिगबर आचार्यो ने भारतीय चिताधारा को बहुत अधिक समृद्ध किया है। इसी प्रकार श्वेताम्बर आचार्य मे हरिभद्र, मल्लवादी, वादिदेवसूरि, मल्लिषेण, अभयदेव, हेमचन्द्र, यशोविजय आदि ने जैन-दर्शन पर महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं जो निश्चित रूप से भारतीय पाण्डित्य का भूषण है। इन दार्शनिक ग्रथो के सिवाय जैन सम्प्रदाय के बाहर नाना क्षेत्रो मे, जैसे काव्य, नाटक, ज्योतिष, आयुर्वेद, व्याकरण, कोष, अलकार, गणित और राजनीति आदि विषयो पर भी जैन आचार्यो ने लिखा है। बौद्धो की अपेक्षा वे इस क्षेत्र मे अधिक असाम्प्रदायिक हैं। फिर गुजराती, हिंदी, राजस्थानी, तेलुगु, तामिल और

विशेष रूप से कन्नडी साहित्य में भी उनका दान अत्यधिक है। कन्नडी साहित्य पर तो ईसा की तेरहवी शताब्दी तक जैनों का एकाधिपत्य रहा है। कन्नडी के उपलब्ध साहित्य के लगभग दो-तिहाई ग्रंथ जैन विद्वानो के रचे हुए है। इस प्रकार भारतीय चिंता की समृद्धि मे यह सम्प्रदाय बहुत महत्त्वपूर्ण है।

: ७ :

कवि-प्रसिद्धियाँ

१. कवि-समय और काव्य-समय

'कवि-समय' शब्द का अर्थ है कवियो का आचार या सम्प्रदाय। इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले राजशेखर ने किया था। उनका मतलब यह था कि यद्यपि देश काल आदि के विरुद्ध विषयो का वर्णन करना कवित्व का दोष है, तथापि कुछ ऐसी बातें कविजन परम्परा से वर्णन करते आये है जिन्हे निर्दोष मान लेना उचित है। 'कवि समय' शब्द से मिलता-जुलता एक और शब्द अलकार-शास्त्र मे प्रयुक्त हुआ है, वह है 'काव्य-समय'। इस शब्द का प्रथम और शायद अतिम भी, प्रयोग वामन के 'अलकार-सूत्र' मे पाया जाता है (काव्यालकार-सूत्र, ५-१)। किंतु इन दोनो शब्दो के प्रयोग अलग-अलग अर्थो मे हुए हैं। वामन के मत से लोक-शास्त्र के विरुद्ध अर्थों का प्रयोग ही काव्य-समय है। इसका अंतर्भाव वाद के किये हुए आलकारिको के दोष-प्रकरण मे हो जाता है। भामह और दण्डी ने 'काव्य-समय' शब्द का प्रयोग नही किया है, परतु 'दोष' शब्द से उनका भी अभिप्राय, देश, काल, कला, न्याय और आगम का विरोधी और प्रतिज्ञा, हेतु और दृष्टात से हीन होना है (भामह, ४-२)। राजशेखर यह तो मानते हैं कि अशास्त्रीय और अलौकिक अर्थों का निबधन दोष है, पर उनका कहना यह है कि प्राचीन काल के कवि परम्परा से जिन बातो का वर्णन करते आ रहे है, आज इस काल और इस देश मे वे बातें नही मिलती तो भी उन्हे हम दोष नही कह सकते, जब कि शास्त्र अनत है, काल अनत है और देश भी अनत हैं। इसलिए लोक और शास्त्र-विरोधी वे ही बातें कवि-समय के अतर्गत आती है जिन्हे प्राचीन काल के पडित सहस्र-शाख वेदो का अवगाहन करके, शास्त्रो का अवबोध करके, देशातर और द्वीपातर का परिभ्रमण करके निश्चित कर गये है। देश-कालवश उनका यदि व्यतिक्रम हो भी गया हो तो उन्हे अस्वीकार नही करना चाहिए।

काव्यमीमासा के देखने से इस बात मे कोई सदेह नही रह जाता कि राजशेखर स्वय प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षक थे और उनके मत से प्राकृतिक निरीक्षण का अभाव कवि का महान् दोष था। उन्होने स्पष्ट ही कहा है कि जो कवि अनुसधान नही करता, उसके गुण भी दोष हो जाते हैं और जो सावधान रहता है, उसके दोष भी गुण हो जाते है (काव्यमीमासा, अ० १८)। काव्य मे इसी निरीक्षण को प्रवृत्त करने के लिए उन्होने काव्य-मीर्मासा मे देश-काल-विभाग की सुन्दर अवतारणा की है। कवि-समय वाला अध्याय उनके अनुसधान का ही फल है। कवियो के काव्य मे जो कवि-समय सुप्त की

तरह पडा हुआ था, उसे उन्होने यथाबुद्धि जगा दिया (काव्यमीमासा अ० १६ पृ० ८६)। बाद के आलकारिको मे से कितनो ही ने आँख मूँदकर उनका अनुकरण किया है। इनमे अजितसेन का अलकार-चिन्तामणि (पृ० ७-८), अमर की काव्य-कल्पलता-वृत्ति (द्वितीय प्रतान, पृ० ३०-३१) और देवेश्वर की कवि-कल्पलता (पृ० ४०-४२) उल्लेख योग्य हैं। केशव मिश्र का अलकार-शेखर इस दिशा मे यद्यपि राजशेखर के प्रदर्शित मार्ग पर ही चलता है, पर उसमे अनेक अन्य विषयो का भी समावेश है। राम तर्कवागीश ने साहित्य-दर्पण की टीका मे हू-ब-हू अलकार-शेखर की बातें ही उद्धृत कर दी है।

साहित्यदर्पण के दोषप्रकरण मे विश्वनाथ ने भी कवि-समय (आख्यात) का उल्लेख किया है (साहित्यदर्पण ७-२३, २४, २५)। इसकी और काव्य-मीमासा की प्रायः सभी बाते मिलती है। पर कुछ विशेष बाते भी है। विश्वनाथ ने शायद सर्व-प्रथम कवि-समय के प्रसग मे वृक्षदोहद का उल्लेख किया है। इसके बाद अलकार-शेखर मे केशव मिश्र ने भी अशोक और वकुल के दोहदो को कवि-समय के अन्तर्गत स्वीकार किया है।

२. वृक्ष-दोहद

'दोहद' शब्द का अर्थ गर्भवती की इच्छा है। कहा गया है कि यह शब्द 'दौहृद' शब्द का, जिसका अर्थ इसी से मिलता है, प्राकृत रूप है। कालक्रम से यह प्राकृत शब्द ही सस्कृत भाषा मे गृहीत हो गया। वृक्ष के साथ 'दोहद' शब्द पुष्पोद्गम के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। शब्दार्णव के अनुसार कुशल व्यक्तियो द्वारा तरुगुल्म-लता प्रभृति मे जिन द्रव्यो और क्रियाओ से अकाल मे ही पुष्पोद्गम कराया जाता है, उसे दोहद कहते है। (मेघदूत २-१७ पर मल्लि-टीका), नैषधीय चरित (३-२१), रघुवश (८-६२) और मेघदूत मे इसी अर्थ मे इन शब्दो का प्रयोग हुआ है। सस्कृत-काव्य और मूर्ति तथा चित्र-शिल्प मे स्त्रियो के पदाघात से अशोक वृक्ष के पुष्पित होने की वहुत चर्चा है। इसके बाद बकुल वृक्ष के दोहद का उल्लेख है। बकुल स्त्रियो की मुख-मदिरा से सिंचकर पुष्पित हो जाता है। कालिदास के ग्रन्थो मे अशोक और बकुल इन दो वृक्षो के दोहद का ही उल्लेख है। मल्लिनाथ ने मेघदूत २-१७ की टीका मे अशोक और बकुल के अतिरिक्त अन्य कई वृक्षो के दोहद का भी उल्लेख किया है। इस श्लोक मे स्त्री के विभिन्न अगो और क्रियाओ के सस्पर्श से प्रियगु, बकुल, अशोक, तिलक, कुरबक, मन्दार, चम्पक, आम, नमेरु और कर्णिकार के पुष्पित होने की बात है (तत् तत् प्रकरण देखिए)। इस वृक्षदोहद को मल्लिनाथ 'कवि-प्रसिद्धि' कहते है, पर काव्य-मीमासा या उसके अनुयायी ग्रथो मे वृक्षदोहद-सम्बन्धी 'कवि-समय' की बिलकुल चर्चा नही है। केवल साहित्य-दर्पण और अलकार-शेखर अशोक और बकुल-सम्बन्धी कवि-प्रसिद्धियो का उल्लेख करते है। काव्य-मीमासा मे 'कवि-समय' के प्रकरण मे वृक्षदोहद का उल्लेख न होने पर भी उसी ग्रथ से अशोक, बकुल, तिलक और कुरबक-सम्बन्धी

प्रसिद्धियों का समर्थन होता है।[1] जान पडता है कि राजशेखर इस बात को देश-काल-विरुद्ध नही मानते थे। मल्लिनाथ ने कुमारसम्भव (३, २६) की टीका मे अन्यत्र वृक्षदोहद-सम्बन्धी कवि-प्रसिद्धियो के प्रसग मे उपर्युक्त चार वृक्षो का चर्चापरक एक सग्रह-श्लोक उद्धृत किया है। ऐसा जान पडता है कि राजशेखर को इसी सग्रह-श्लोक से परिचय था। जो हो, सस्कृत-साहित्य मे वृक्षदोहद-सम्बन्धी प्रसिद्धियो मे इ नचार वक्षो की ही विशेष रूप मे चर्चा है। मूर्तियो और भित्तिचित्रो आदि मे केवल अशोक का पुष्पोद्गम ही चित्रित मिलता है (दे० शीर्षक ३) अन्य वृक्षो के दोहद हमे देखने को नही मिले। केवल एक चित्र देखकर तिलक का सन्देह होता है। उपर्युक्त स्थल पर इसकी चर्चा की जायगी।

३. वृक्ष-दहद का मूल

वृक्ष दोहद भारतीय साहित्य और शिल्प मे एक विचित्र चीज है। इसका रहस्य अतीत के धुँधले प्रकाश मे आच्छन्न है। आगे इसे समझने की चेष्टा की जा रही है।

इस रहस्य को समझने के लिए एक विस्मृत इतिहास पर धैर्य के साथ दृष्टिपात करना होगा। विक्रम के सैकडो वर्ष पहले भारतवर्ष मे एक समृद्ध आर्येतर सभ्यता वर्तमान थी। आर्यो की राजनीतिक और भाषा-सम्बन्धी विजय के बाद यह जाति भी धीरे-धीरे उनकी छत्रच्छाया के अदर आ गई। पर इसके पहले आर्यो के साथ इसका पर्याप्त सघर्ष हुआ होगा। राजनीतिक दृष्टि से इसकी विजय हुई हो या पराजय, परतु भारतीय साहित्य और शिल्प पर इस जाति ने अपनी ऐसी अमिट छाप लगा दी है कि हजारो वर्ष की निरतर उपेक्षा के बाद भी वह अपने सम्पूर्ण रस-सौन्दर्य के साथ जीवित है। हमारा मतलब यक्षो और नागो से है।

शायद यूरोपियन पण्डितो मे से फर्गुसन ने ही पहले-पहल विद्वत्ता के साथ यक्षो और नागो के ऐतिहासिक और सास्कृतिक महत्त्व की ओर पडित-मडली का ध्यान आकृष्ट किया। अपनी पुस्तक 'ट्री ऐण्ड सर्पेण्ट वरशिप' (वृक्ष और साँपो की पूजा) मे उन्होने कहा कि यक्ष और नाग, जो क्रमश उर्वरता और वृष्टि के देवता माने गये थे

---

1 काव्य-मीमासा के तेरहवें अध्याय मे ये दो श्लोक उद्धृत है—

> कुरवक कुचाघात-क्रीडारसेन वियुज्यसे।
> वकुलविटपिन् स्मर्तव्य ते मुखासवसेचनम् ॥
> चरणघटनाशून्यो यास्यस्यशोक सशोकता-
> मिति निजपुरत्यागे यस्य द्विषा जगदु स्त्रिय ॥
> सुखमदिरया पादन्यासैर्विलास-विलोकितै-
> र्वकुलविटपी रक्ताशोकस्तथा तिलकद्रुम ॥
> जलनिधितटीकान्ताराणा क्रमात् ककुभा जये।
> झटिति गमिता यद्वर्ग्याभिर्विकासमहोत्सवम् ॥

अठारहवें अध्याय के वसन्त-वर्णन मे वह श्लोक है—

> नालिंगित कुरवकस्तिलको न दृष्टो नो ताडितश्च सुदृशा चरणैरशोक।
> सिक्तो न वक्त्रमधुना वकुलश्च चैत्रे चित्र तथापि भवति प्रसवावकीर्ण ॥

एक जातिवर्ण-हीन दस्यु या असुर जाति के उपास्य थे। क्रमशः ज्यों-ज्यो फर्गुसन के मत की आलोचना होने लगी त्यों-त्यों नये-नये रहस्य प्रकट होते गये। इस सिलसिले मे दो अत्यत महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हुई है; वोगेल (Vogel) की 'इण्डियन सर्पेण्ट लोर' और ए० के० कुमारस्वामी का 'यक्ष' (दो भाग)। दूसरी पुस्तक में प्राचीन साहित्य और मूर्ति-शिल्प के विस्तृत अध्ययन से इस विषय को प्रकाश मे लाया गया है।

अध्ययनो से इस बात का पर्याप्त खुलासा हुआ है कि वरुण नामक वैदिक देवता का सम्बध गन्धर्वों, यक्षो, असुरों और नागों से रहा है। स्वय ऋग्वेद ने ही (७-६५-२) वरुण को असुर कहा है। वाजसनेयी सहिता (३-१५२) मे भी वरुण असुरो और देवो पर राज्य करते उल्लिखित है। शतपथ ब्राह्मण (४-३, ७-८) मे वरुण को गन्धर्वों का और सोम को अप्सराओ का राजा बताया गया है। उत्तरकालीन हिन्दू-धर्मग्रथो मे वरुण को केवल पश्चिम दिशा का दिग्पाल स्वीकार किया है। कुबेर, जो एक युग मे वरुण के अधीन माने जाते थे, उत्तर दिशा के दिग्पाल माने जाने लगे। पूर्ववर्ती ग्रथों और विशेषकर जैन और बौद्ध आगमो से जाना जाता है कि कुबेर, सोम आदि यक्षपति देवाधिदेव वरुण के अधीन देवता थे। बौद्ध आगमो के अनुसार वेस्सण (वैश्रवण—कुबेर) उत्तर के, धतरट्ठ, (धृतराष्ट्र) पूर्व के, विरूढक दक्षिण के और विरुपक्ख (विरूपाक्ष) पश्चिम के दिग्पाल हैं। इनके अधीनस्थ यज्ञ मे कुम्भाण्ड, गधर्व, अप्सरस् और ये नाग जातियाँ है जो जल और वृक्ष की अधिष्ठात्री देवता है। ऊपर बताये हुए चारो दिग्पालों की मूर्तियाँ भरहुत मे पाई गई है और उनका नाम देकर उन्हे यक्ख अर्थात् यक्ष कहा गया है। किस प्रकार बाद को वरुण का स्थान इन्द्र ने ले लिया और किस प्रकार गन्धर्व और अप्सराएँ वरुण के हाथ से च्युत होकर इन्द्र के दरबार की गायक-गायिकाएं भर बनी रह गईं, यह बात मनोरजक होने पर भी यहाँ अप्रासगिक है। फिर भी, कवि-समय और वृक्षदोहद के अध्ययन मे ये बातें बहुत सहायक है, अतएव उनकी कुछ चर्चा करना यहाँ आवश्यक है।

यद्यपि यक्षो और नागो के देवता कुबेर, सोम, अप्सरस् और अधिदेवता वरुण दिग्पाल के रूप मे ब्राह्मण ग्रथो मे ही स्वीकृत हो चुके थे। पर बाद के साहित्य मे यक्ष और यक्षिणी अपदेवता समझे जाने लगे थे। उनका पुराना पद (जल और वृक्षो का अधिपतित्व) किसी-न-किसी रूप मे रामायण और महाभारत मे स्वीकृत है। महाभारत मे ऐसी अनेक कथाएं आती हैं जिनमे सन्तानार्थिनी स्त्रियाँ वृक्षो के उपदेवता यक्षो के पास सन्तान-कामना से जाती थी। वस्तुत. यक्ष और यक्षिणी मूल रूप मे उर्वरता के ही देवता थे। भरहुत, बोधगया, साँची, मथुरा आदि मे सन्तानार्थिनी स्त्रियो के इस प्रकार वृक्ष के पास जाकर यक्षो से वर प्राप्त करने की मूर्तियाँ बहुत अधिक पाई गई है। इन वृक्षो के पास अकित स्त्रियाँ प्रायः नग्न उत्कीर्ण है, केवल कटि-देश मे एक चौडी मेखला पहने हुए है। वृक्षो मे अधिकतर न्यग्रोध, प्लक्ष, अश्वत्थ, उदुम्बर आदि वृक्ष ही उत्कीर्ण है।

इन वृक्षो मे सर्वाधिक रहस्यमय वृक्ष अशोक है। जिस प्रकार वृक्ष-देवता स्त्रियो

मे दोहद-सचार करते थे, उसी प्रकार सुन्दरी स्त्रियो की अधिष्ठात्री यक्षिणियाँ स्त्री-अग के सस्पर्श से वृक्षो मे भी दोहद-सचार करती थी। अशोक-षष्ठी और अशोकाष्टमी व्रत मे अशोक वृक्ष की पूजा सन्तान-कामिनी होकर करने का विधान है। चैत्र शुक्ला अष्टमी को अशोक की आठ कोमल पत्तियाँ भक्षण करने से दोहद-सचार होना धर्म-ग्रथो से स्पष्ट है (निर्णयसिधु, तिथितत्त्व आदि)। अशोक वृक्षो मे दोहद-सचार करती हुई स्त्रियो की मूर्तियाँ भारतीय शिल्पकला की अतिपरिचित बात है। मथुरा म्यूजियम मे एक ऐसी उत्कीर्ण मूर्ति सुरक्षित है जिसमे एक यक्षिणी अशोक वृक्ष की शाखा पकडे खडी है और पादाघात से अशोक को कुसुमित कर रही है। तजोर के सुब्रह्मण्यम् मन्दिर के द्वार पर एक यक्षिणी-मूर्ति अशोक मे दोहद उत्पन्न करती हुई उत्कीर्ण है। इसका वाहन मकर है और हाथ मे लीलाशुक है। मथुरा की एक मकरवाहना यक्षिणी-मूर्ति आजकल लखनऊ म्यूजियम मे सुरक्षित है। यह भी अशोक वृक्ष मे दोहद उत्पन्न करती हुई उत्कीर्ण है। एक इस प्रकार की मूर्ति बोस्टन की ललित-कला-प्रदर्शनी (म्यूजियम ऑफ फाइन आर्ट्स) मे रखी हुई है। यह भी मथुरा मे पाई गई थी और समय के हिसाब से ईसा से लगभग दो सौ वर्ष पुरानी है। सम्भवतः पुन्नाग (तिलक ?) वृक्ष मे दोहदोत्पादिनी एक मूर्ति कलकत्ता म्यूजियम मे है जो भरहुत के एक रेलिंग पिलर पर उत्कीर्ण थी। इसका समय भी सन् ईसवी के लगभग दो सौ वर्ष पूर्व है। ऐसी और भी अनेक मूर्तियाँ नाना प्रदर्शनियो मे सुरक्षित है।

भरहुत, साँची, मथुरा आदि मे प्राप्त यक्षिणी-मूर्तियो का शरीर-गठन और बनावट देखकर इस बात मे सन्देह नही रह जाता कि ये स्त्रियाँ पहाडी जाति की हैं। असल मे यक्ष और नाग-पूजक जातियाँ उत्तर की रहने वाली थी। सारे उत्तर भारत मे प्राचीन शिल्प-कार्य इन्ही जातियो की कृतियाँ है। गुप्तकाल मे जबकि भारतीय सभ्यता आर्य और आर्येतर सभ्यताओ के मेल से नये रूप मे समृद्ध हो उठी, काव्य और शिल्प मे यक्षो और नागो का सम्पूर्ण ग्रहण हुआ।

४. गन्धर्व, अप्सराएँ और कवि-प्रसिद्धियाँ

पूर्व-वैदिक युग मे गन्धर्व और अप्सराएँ एकदम अपरिचित थी। धीरे-धीरे उत्तर वैदिक काल मे आर्य लोग इन्हे लक्ष्य करने लगे। सोम इन्ही गन्धर्वों के हाथ मे था (शत० ३-३-३-११)। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार यज्ञ मे इन्द्र का प्रतिनिधि गन्धर्वों से सोम क्रय करता है। कुमारस्वामी ने प्रमाण-पुरस्सर सिद्ध किया है कि गन्धर्व वृक्षो के अधिष्ठाता और अप्सराएँ उर्वरता की अधिष्ठात्री देवियाँ मानी जाती थी (यक्ष, प्रथम भाग—पृ० ३२-३३)।[1] हम यक्ष और यक्षियो के वृक्ष और उर्वरता की अधिष्ठात्री होने की चर्चा कर चुके है। असल मे यक्ष और यक्षिणी और गधर्व और अप्सरा एकार्थ-वाचक देवता है। शुरू मे ये कुवेर के अनुचर माने जाते थे। पर जब हिन्दू धर्म मे इस

1 ए० के० कुमारस्वामी निम्नलिखित प्लेटें देखने को कहते है Banerji, R D Bas Reliefs of Badami Men A S I 25, Plates XI, XXIc, XXXIII a और e इत्यादि।

प्रकार की प्रवृत्ति आई कि आर्येतर देवताओं मे जो उत्तम है वह इन्द्र के पास होना चाहिए (और भी बाद मे ये वस्तुएँ उपेन्द्र या विष्णु की होने लगी) तो गधर्व और अप्सरस् तो इन्द्र के अनुचर हो गये और साधारण अर्थवाचक यक्ष और यक्षिणी कुबेर के अनुचर माने जाते रहे। यहाँ एक बात कह रखना आवश्यक है कि शतपथ ब्राह्मण (९-४-१-२ और ४) के अनुसार गधर्व और अप्सराएँ मिथुन रूप मे प्रजापति से उत्पन्न हुई थी। उर्वशी की कहानी के प्रसग मे शतपथ में (११-५-१-४) अप्सराओ को हसिनी के रूप मे पानी मे तैरते वर्णन किया गया है।

प्राचीन विश्वास के अनुसार वरुण समुद्र के देवता है और सारी सृष्टि इसी देवाधिदेव से उत्पन्न हुई है। समुद्र और जल के देवता होने के कारण वरुण का वाहन मकर है। उनकी स्त्री गौरी का वाहन भी मकर है। अग्निपुराण (५१ अध्याय) मे वरुण को मकरवाहन कहा गया है और विष्णु-धर्मोत्तर (२-५२) मे मकर-केतना वरुण का मकर-वाहन होना अनेक प्राचीन मूर्तियो और चित्रो मे अकित है। बादामी, मैसूर और भुवनेश्वर के लिंगराज मन्दिर की अनेक मूर्तियाँ इस बात का प्रमाण है।

हरिवश और भागवत के अनुसार श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न कामदेव के अवतार है। विष्णुधर्मोत्तर (३-५८) के अनुसार कामदेव और उनकी स्त्री रति क्रमश वरुण और उनकी पत्नी गौरी के अवतार है। यहाँ वरुण को मकर-वाहन न कहकर मकर-केतन कहा गया है। जैन आगमो से स्पष्ट है कि कामदेव एक यक्षाधिप (उत्तराध्ययन टीका, जैकोबी, पृ० ३९) थे। वेस नगर मे शुग का (तृतीय शताब्दी ईसवी-पूर्व) का एक मकरध्वज स्तभ तीन फुट ऊँचा पाया गया है जो ग्वालियर म्यूजियम मे सुरक्षित है[1]। बदामी मे[2] रति के साथ मकर-वाहन और मकर-केतन काम-मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। पण्डितो का, इसीलिए अनुमान है कि कामदेव और यक्षाधिपति वरुण मूलतः एक ही देवता हैं, और नही तो कम-से-कम एक ही देवता के दो भिन्न रूप तो है ही (बुद्ध-चरित १०-२)। बौद्ध मार यक्ष कामदेव का रूप है ही। पौराणिक आख्यानो से यह प्रकट ही है कि कामदेव के प्रधान सहायक गधर्व और अप्सराएँ हैं। कामदेव स्वय उर्वरता और प्रजनन के देवता हैं। यक्षो और यक्षियो का सबध सदा वृक्षो और जलाशयो से रहा है। इसीलिए कामदेव भी स्वभावतः वृक्षो के देवता सिद्ध होते है। वसन्त उनका मित्र है जो वृक्षो मे नवजीवन सचार किया करता है। धनुष और बाण उनके पुष्पमय है।

मकर का भारतीय सस्कृति और काव्यकला मे एक विशिष्ट स्थान है, क्योकि वरुण समुद्र के अधिपति हैं और मकर समुद्र का प्रतीक है। जल का एक और प्रतीक है कमल। शतपथ ब्राह्मण (८-४-१-७) मे जल को कमल कहा गया है और यह पृथ्वी उस कमल का एक दल कही गई है। प्राचीन रजन-शिल्प मे कमल का इसीलिए इतना प्राचुर्य है कि वह जल का और फलत जीवन का प्रतीक होने से अत्यन्त मगल-

---

१ Cunningham · A S Reports, p 42-43 और plate XIV

२ Banerji, R D.. Bas Reliefs of Badami, Men A S. I 25. 1928, p 34

मय समझा जाता था। कमल मे ही वरुण और उनकी स्त्री गौरी वास करती है। समुद्र रत्नालय है और वरुण समुद्राधिपति। इसीलिए उन्हे लक्ष्मीनिधि माना जाता था। बाद मे यह शब्द कुबेर का वाचक हो गया। मगर यह एक लक्ष्य करने की बात है कि समुद्रोत्पन्न लक्ष्मी का, जो बाद मे विष्णु की पत्नी हुई, एक नाम वरुणानी भी है। कवि-प्रसिद्धि के अनुसार लक्ष्मी और सपद् एकार्थक है (दे० शीर्षक ३१) और कमल मे लक्ष्मी का वास है। इस प्रसग मे वरुणानी शब्द का भी सकेतपूर्ण है[1]।

अब यक्ष-पूजा और अनेक कवि-प्रसिद्धियो का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। वृक्षदोहद का तो यक्षपूजा से प्रत्यक्ष सम्बध है ही, अन्यान्य बातो का भी यथेष्ट सबध है। इससे यह बात काफी स्पष्ट हो जाती है कि सर्वत्र जलाशयो मे कमल का वर्णन इसलिए किया जाता है (दे० शीर्षक १९) कि कमल जल और जीवन का प्रतीक है। इसी प्रकार सर्वत्र जलाशयो मे हसो का वर्णन करना भी कवियो का सम्प्रदाय है, क्योकि हस-मिथुन यक्ष और यक्षिणियो के प्रतीक है जो जल और वृक्षो के तथा रस और उर्वरता के देवता है। प्राचीन काल मे नव-वधू के परिधान-दुकूल पर हस-मिथुन अकित हुआ करते थे।[2] यह मगलमय समझा जाता था, क्योकि हस-मिथुन उर्वरता और रस के प्रतीक माने जाते थे। केवल काव्य मे ही नही, मन्दिरो, स्तम्भो आदि पर भी हिन्दू कलाकारो ने सर्वत्र नदी, तालाब और समुद्र मे हस-मिथुन और कमल प्रचुर मात्रा मे अकित किये है। इसी प्रकार मकर का वर्णन केवल समुद्र मे ही होना भी इस तरह स्पष्ट हो जाता है (दे० शीर्षक ३२-१) कि मकर समुद्र का ही प्रतीक और वरुण का वाहन है। इसी तरह कामदेव के पुष्पमय बाणो की प्रसिद्धि का मूल कारण (दे० शीर्षक ७-१), लक्ष्मी और सम्पद् की एकता (शीर्षक ३१) तथा लक्ष्मी का कमलवास (शीर्षक १९-४) इत्यादि अनेक बातें स्पष्ट हो जाती है।

५. अशोक

१

कवि-प्रसिद्धि है कि अशोक मे फल नही होते।[3] इस वृक्ष के विषय मे वैद्यो मे मत-भेद है। पूर्वी उत्तरप्रदेश और बिहार मे एक तरह के प्रलब और तरगायित पत्रो वाले वृक्ष को 'अशोक' कहते है। इसके फल काले-काले और गोल-गोल होते है। वैद्य लोग भी इसका व्यवहार करते है। पर अन्यान्य प्रदेश के वैद्य इसे अशोक नही मानते। यह असल मे अशोक है भी नही। सुश्रुत की टीका मे कल्हण ने लिखा है[4] कि अशोक के पुष्प लोहित या लाल होते है। निघण्टुकारो ने इसका नाम रक्तपल्लव, मधु-पुष्प बताया है[5]।

१ विशेष विस्तार के लिए देखिए, A K. Coomaraswami Yaksa, Vol II

२ कुमारसभव, ५-६७

३ काव्यमीमासा अध्याय १४, साहित्यदर्पण ७-२५, अलकारशेखर मरीचि १५।

४ सुश्रुत, सूत्रस्थान, अध्याय ३८।

५. भावप्रकाश, पुष्पवर्ग ४१-१२।

इन नामो से अनुमान होता है कि यह वसन्त मे खिलता है, फूल सुनहरे और पल्लव लाल होते है। अर्थात् वैद्यक-शास्त्रकारो ने दो तरहके अशोक-पुष्प लक्ष्य किये है, लाल और सुनहरा। रामायण मे अशोक-पुष्प के अगारसमान स्तवको (गुच्छो) का वर्णन पाया जाता है[१]। राजशेखर ने अपनी काव्यमीमासा मे अशोक के तीन प्रकार के पुष्पो का वर्णन किया है—लाल, पीत और नील।[२] रामायण (वाल्मीकीय) मे भी नील अशोक-पुष्पो का वर्णन पाया जाता है।[3] कालिदास ने सुन्दरियो के नील अलक मे पिरोये अशोक-पुष्पो का उल्लेख किया है।[४] वसन्त काल मे कवि ने बताया है कि केवल अशोक के पुष्प ही उत्तेजक नही हैं, उसके किसलय भी प्रिया के श्रवणमूल मे विराजमान होकर मादक हो गये है।[५] उन दिनो अशोक, अरिष्ट, पुन्नाग, शिरीष और प्रियगु के वृक्ष मागल्य समझे जाते थे। उपवनो और प्रासादो के अग्र भाग मे लगाये जाते थे इसीलिए उस युग के कवियो की दृष्टि सबसे पहले इन वृक्षो पर पडती थी।[६] कालिदास को यह वृक्ष अत्यन्त प्रिय था। कुमारसम्भव मे अशोक पुष्पाभरण-धारिणी उमा के सौन्दर्य का बडा सुन्दर वर्णन है[७]। मल्लिनाथ ने अशोककल्प से[८] एक श्लोक उद्धृत करके बताया है कि अशोक-पुष्प दो प्रकार के होते है, श्वेत और रक्त। पहला सर्वसिद्धिदायक है और दूसरा (लाल) स्मरवर्द्धक है। इसीलिए कालिदास ने लाल फूल का ही वर्णन किया है।

यद्यपि यह-वृक्ष कवियो को इतना प्रिय रहा है तथापि यह आश्चर्य की बात है कि इसके किसलय और पुष्प के सिवा और किसी अग का वर्णन नही किया गया। बहुत से कवियो ने तो साफ लिखा है कि इसके फल नही होते[९] जबकि असल मे अशोक वृक्ष के फल होते है। फूल इसके गुच्छाकार होते है। कालिदास ने इन गुच्छो का वर्णन किया है।[१०] पहले इनका रग पके नीबू के फल के रग का होता है और बाद मे लाल हो जाता है। इसके पत्र-शान्त ईषत् तरङ्गायित होते है। तरुणावस्था मे पत्ते लम्बे-लम्बे लाल रहते है। बाद मे हरे हो जाते है। इसके फल छीमियो के रूप होते है[११]। ब्राण्डिस ने दो तरह के अशोको का उल्लेख किया है[१२]।

२

एक दूसरी कवि-प्रसिद्धि है कि सुन्दरियो के पदाघात से अशोक मे पुष्प खिल आते है? राजशेखरने कवि-समय के प्रसग मे इसका कोई उल्लेख नही किया तथापि उनकी काव्य-मीमासा मे ही इस विश्वासके पोषक उदाहरण मिल जाते है।[१३] महाकवि

---

१ वाल्मीकि रामायण ४-१-२९।

२ काव्यमीमासा। १८ - ३ वा० रा० ४-१-७९। ४ ऋतुसहार ६-५। ५ रघुवश ५। ६ बृहत्सहिता ५२-३। ७ कुमारसम्भव ३-५३। ८ मेघदूत २-१७ पर मल्लिनाथ की टीका। ९ काव्यमीमासा १४। १०. रघुवश १३। ११ विरजाचरण गुप्त वनौषधिदर्पण, पृ० ४६। १२ Brandis, Indian trees, p 15 and 25. १३ साहित्यदर्पण ७—२४, मेघदूत २-१७ मल्लिनाथ टीका, कुमारसभव ३-२६ मल्लिनाथ की टीका, अलकारशेखर १५।

कालिदास को इस विश्वास की जानकारी थी।[1] मालविकाग्निमित्र के तृतीय अक की मारी कथा मालविका के पदाघात से अशोक-वृक्ष को पुष्पित कर देने की क्रिया को केन्द्र करके रचित हुई है।[2] कुमारसभव मे वसन्त का माहात्म्य वर्णन करते हुए महाकवि ने बताया है कि अशोक स्कन्ध पर पल्लवित और कुसुमित हो गया, उसने सुन्दरियो के आसिञ्जित-नूपुर-चरणो की अपेक्षा न की।[3] रत्नावली नाटिका मे भी इस विश्वास का समर्थन पाया जाता है।[4] वाद के कवियो ने तो इसका भूरि-भूरि वर्णन किया है।[5] आलकारियो ने यह नही बताया है कि अशोक पर पदाघात करते समय स्त्री के पैर मे नूपुर रहना आवश्यक है या नही और न यही बताया है कि स्त्री के किस पैर की चोट से अशोक वृक्ष मे पुष्पोद्गम होता है। कुमारसभव (३-२६) की व्याख्या मे मल्लिनाथ ने एक श्लोक उद्धृत किया है जिसमे बताया गया है कि नूपुर के शब्द सहित चरणों के आघात से ही अशोक कुसुमित होता है। मेघदूत के यक्ष ने मेघ से अपने उद्यान के अशोक-वृक्ष के वर्णन के सिलसिले मे कहा है कि वह तुम्हारी सखी (यक्षिणी) के वामपाद का अभिलाषी है।[6] उत्कीर्ण मूर्तियो मे अशोक-दोहद-समुत्पादिनी यक्षिणियो के वाम पैर ही वृक्ष मे आघात देने के लिए उठे हुए अकित हैं।[7] राजनिघण्टु के अनुसार अशोक का एक नाम वामाघ्रिघातन भी है।[8] इसमे का 'वामाघ्रि' पद 'बायाँ चरण' और 'स्त्री का चरण' दोनो का वाचक हो सकता है।

६. कर्णिकार

कर्णिकार वृक्ष के आगे स्त्रियाँ अगर नृत्य करे तो वह पुष्पित हो जाता है।[9] भावप्रकाश के मत से इस वृक्ष के दो नाम और है, परिव्याध और पद्मोत्पल।[10] लेकिन इन नामो से इस पुष्प के सम्बन्ध मे विशेष कुछ जाना नही जाता। राज-निघटुकार के मत से क्षुद्र आरग्वध को ही कर्णिकार कहते है। आरग्वध को हिन्दी मे अमलताश कहते है। वगाल मे यह 'सोनालु गाछ' या सुनहरा वृक्ष कहलाता है।[11] शान्तिनिकेतन मे आरग्वध के वृक्ष है। इसके फूल पीले और फल लबी-लबी कडी छीमियो के रूप मे होते है जिनमे पक्तिवद्ध बीज होते है। वनौपधि-दर्पणकार के मत से कर्णिकार के ये ही लक्षण है। अमलताश का वृक्ष वैशाख-जेठ के महीने मे फूलता है, किन्तु छोटा अमलताश या लघु आरग्वध कुछ पहले ही फूलता है। रामायण मे वसन्त-वर्णन के अवसर पर कर्णिकार के सुनहरे पुष्पों का वर्णन मिलता है।[12] इससे वृक्ष की यष्टि-समान आकृति का भी आभास मिलता है।[13] असल मे कर्णिकार वृक्ष नातिस्थूल होता है। महाकवि कालिदास ने वसन्त मे कर्णिकार पुष्पो को खिलते देखा था।[14]

---

१ दे० श० २। २ मालविकाग्निमित्र ३-१२। ३ कुमारसभव ३-२६। ४ रत्नावली १-१५। ५ सुभापितरत्नभाडागार पृ० ३७९। ६ मेघदूत २-१७। ७ A K Coomarswami Yaksa pl, 6 fig 1 & 3। ८ शव्दकल्पद्रुम, प्रथम खण्ड, पृ० १३७। ९ मेघदूत २-१७ पर मल्लिनाथ की टीका १० भावप्रकाश, पुष्पवर्ग ४०। ११ वनौपधि दर्पण (१८३९ शक) पृ० ७६। १२ रा०—१-२१। १३ रा०—४-१-७३। १४ ऋतुसहार ६-५।

उनके मत से भी कर्णिकार के फूल सुनहरे होते है।[1] इसी प्रकार राजशेखर[2] ने वसन्त मे ही कर्णिकार-वृक्ष का प्रस्फुटित होना बताया है। कवियो ने कर्णिकार-पुष्प को निर्गंध कहा है। इन सब बातो को ध्यान मे रखकर विचारने से कोई सदेह नही रह जाता कि क्षुद्र आरग्वध या छोटे फूलो वाला अमलताश ही कर्णिकार है। ब्राडिस ने इसे केसिया (Cassia) जाति का वृक्ष माना है। उनके वर्गीकरण के अनुसार यह और अशोक एक ही श्रेणी के वृक्ष है। कालिदास ने प्राय. ही कर्णिकार और अशोक की एक साथ चर्चा की है।[3] उस युग मे सुन्दरियाँ कभी कान मे और कभी केश मे कर्णि-कार और अशोक-पुष्पो को धारण करती थी। ऋतुसहार मे कान मे नवकर्णिकार-पुष्प और चचल नील अलको मे अशोक-पुष्प सुशोभित दिखता है तो कुमारसभव मे पार्वती नील अलकों मे नवकर्णिकार-पुष्पो को धारण किये दिखती है।[4] महाकवि ने शायद इसके रग के कारण ही इसमे अग्नित्व का आभास पाया था।[5]

कर्णिकार वृक्ष अयत्नसम्भूत होता है और सारे भारतवर्ष तथा ब्रह्म देश मे पाया जाता है, सिन्ध की घाटियों और पेशावर की ओर बहुतायत से मिलता है। उत्तरी हिमालय के प्रदेशो मे इसे चार हज़ार फुट की ऊँचाई पर फूलते देखा गया है। यात्रियो ने हिमालय प्रदेश के कर्णिकार-वृक्षो के सौन्दर्य की उच्छ्वसित प्रशसा की है।[6]

हिन्दी मे जिस पुष्प को कनेर कहते है उससे कर्णिकार का शायद रग-साम्य के सिवा और कोई सम्बन्ध नही।

७. कामदेव

कामदेव के सम्बन्ध मे कई कवि-प्रसिद्धियाँ है। इनको दो श्रेणियो मे विभाजित कर सकते है। पहली मे उनके शस्त्रों-सम्बन्धी प्रसिद्धियाँ है और दूसरी मे स्वय काम-सम्बन्धी। इस प्रकार (१) कामदेव के धनुप और वाण पुष्पमय है, धनुप की मौर्वी रोलम्ब-माला या भ्रमर-श्रेणी की है और इनके बाणो से युवको का हृदय फट जाया करता है।[7] (२) वे मूर्त भी है और अमूर्त भी, उनके ध्वज मे मत्स्य और मकर एकार्थवाचक है।[8]

(१) पौराणिक कथा है कि कामदेव को शिव ने जब भस्म किया तो उनका मणिखचित धनुष पाँच टुकडो मे विभक्त होकर पृथ्वी पर गिर पडा। रुक्मविभूषित पृष्ठ वाला मुष्टिबध (मूठ) चम्पा का फूल हुआ, वज्र (हीरा) का बना हुआ वह नाह स्थान बकुल पुष्प हुआ, इन्द्रनील-शोभित कोटि-देश पाटल पुष्प मे परिवर्तित हो गया था, नाह और मुष्टिबध का मध्यवर्ती स्थान, जो चन्द्रकान्त मणि की प्रभा से प्रदीप्त था, जाती-पुष्प हुआ और मूठ के ऊपर और कोटि के नीचे का

---

१ कुमारसभव ३-५३। २ काव्यमीमासा, अध्याय १८। ३ कुमारसभव ३-२८। ४ ऋतुसंहार ५-५, कुमारसभव ३-६२। ५ ऋतुसहार ६। ६ Indian Trees p 253
७. साहित्यदर्पण ७-२४। ८ काव्यमीमासा, अध्याय १६, अलकारशेखर १५।

हिस्सा, जिसमे विद्रुम मणि जडी थी, मल्ली के रूप मे पृथ्वी पर पैदा हुआ।[1] तब से काम का धनुष पुष्पमय होकर ही पृथ्वी पर विराजमान है। कामदेव के पुष्पमय पाँच बाणो मे अरविंद (कमल), अशोक, आम, नवमल्लिका और नीलोत्पल है। किसी-किसी के मत से द्रावण, शोषण, तापन, मोहन और उन्मादन, या सम्मोहन, समुद्वेग-बीज, स्तम्भन-कारण, उन्मादन, ज्वलन और चेतना-हरण ये काम-बाण है, या सम्मोहन, उन्मादन, शोषण, तापन और स्तम्भन ये ही काम-बाण है। एक और मत यह है कि पाँच इन्द्रियो के विषय अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गध ये ही पाँच कामदेव के बाण है।[2]

एक पौराणिक आख्यान इस प्रकार है · ब्रह्मा ने सन्ध्या नामक एक कन्या को उत्पन्न किया। लडकी ज्योही पैदा हुई कि ब्रह्मा और उस लडकी दोनो के मन को काम ने अपने बाणो से विक्षुब्ध किया। इससे प्रजापति और सन्ध्या दोनो बहुत लज्जित हुए। सन्ध्या ने बाद को घोर तप करके विष्णु से यह वर माँग लिया कि अब से पैदा होते ही किसी आदमी को काम विक्षुब्ध न कर सके। तब से विष्णु ने नियम कर दिया कि काम केवल युवको का ही मन या हृदय विद्ध कर सकता है और क्वचित् कदाचित् किशोर-किशोरियो का।[3] कवियो ने काम के बाणों से युवक-युवतियो के हृदय का फटना अनेक प्रकार से वर्णन किया है।

(२) ऊपर जो प्रजापति और सन्ध्या की कहानी दी हुई है उसी के अनुसार प्रजापति ने काम को यह शाप दिया कि वह शिव के नेत्राग्नि-सम्भूत अग्नि मे जले। कामदेव जब इस शाप-वश भस्म हुआ तो उसकी स्त्री रति ने कठिन तपश्चरण से शिव को सन्तुष्ट किया और यह वर पाया कि काम अमूर्त भाव से ही प्राणियो मे सञ्चरित होगा और द्वापर मे श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के रूप मे मूर्त रूप ग्रहण करेगा। तब से काम के मूर्त और अमूर्त दोनो रूपो का कविजन वर्णन करते आये है। यह लक्ष्य करने की बात है कि मूर्तियो मे काम और रति की मूर्तियाँ सर्वत्र साथ ही उत्कीर्ण पाई गई हैं।

कामदेव के और वरुण के तथा अन्यान्य यक्षो और यक्षिणियो के रूप मे मकर का इतना अधिक और इतने प्रकार से भारती शिल्प मे चित्रण है कि उसके विषय मे कुछ विशेष कहना व्यर्थ है। बदामी, कैलासनाथ, एलोरा आदि मे मकरध्वज के साथ काम और रति की मूर्तियाँ पाई गई है।[4] मकरकेतन और झषकेतन एकार्थवाचक हैं, इस पर से आनन्दस्वामी का अनुमान है कि शतपथ ब्राह्मण (१-८-१) का सीगवाला झष और मकर एक ही वस्तु है।[5] वास्तव मे इस प्रकार के मकर उत्कीर्ण भी है। सन् ईसवी से पूर्व के मकरध्वज बेसनगर मे प्राप्त हुए है।

---

१ वामनपुराण, अध्याय ६। २ काव्यमीमासा, अध्याय १६। ३ कालिकापुराण, अध्याय १९-२२।
४ Yaksa 11, p 25 और भी दे० शीर्षक ४। ५ वही, पृ० ५२।

८. कुन्द

कुन्द का पुष्प सफेद रग का होता है। यह सारे भारतवर्ष मे पाया जाता है। रामायण मे वसन्त के समय इसके खिलने का उल्लेख है।[1] इसके कुड्मल ठीक सफेद नही होते। मूल के पास से पखडियो का ऊपरी भाग ईषत् रक्ताभ होता है, पर फूल विकसित होने पर एकदम सफेद दिखाई देता है। कवि-प्रसिद्धि है कि इसके कुड्मल भी सफेद होते है।[2] इस सम्बन्ध मे उल्लेख-योग्य वात इतनी ही है काव्य-मीमासा, कवि-कल्पलता-वृत्ति, अलकारशेखर आदि के मत से कुन्द के कुड्मल वास्तव मे लाल होते है। किन्तु अजितसेन के अलकार-चिन्तामणि के अनुसार वे असल मे हरित होते है। कविगण इसके कुड्मल को श्वेत ही वर्णन करते हैं।[3]

९. कुमुद

धन्वन्तरि-निघटु के मत से पद्म के सात भेद है (पद्म-प्रकरण देखिए)। कुमुद उनमे से एक है।[4] उक्त निघटु के मत से कुमुद का ही दूसरा नाम कल्हार है। किन्तु अमरकोष के अनुसार सौगन्धिक ही (श्वेत पद्म) कल्हार कहलाता है, कुमुद नही।[5] भावप्रकाश मे भी कुमुद और कल्हार को अलग-अलग माना है।[6] भावप्रकाश और अमरकोष[7] दोनो के मत से कुमुद केवल सफेद ही होता है लेकिन कई वैद्य एक लाल कुमुद का भी वर्णन करते है।[8] डल्हण ने इसका लोकनाम 'कुइया' कहा है।[9] कालिदास ने कुमुद का वर्णन शरत्काल मे किया है।[10]

जिस प्रकार पद्म का वर्णन सर्वत्र जलाशय मे करना कवि-समय है, उसी प्रकार कुमुद का भी।[11] केवल दिन मे इसका विकसित होना नही माना जाता।[12] भावप्रकाश के मत से नाल-पत्र आदि सर्वावयव-सम्पन्न कुमुद को कुमुदिनी कहते है।[13]

१० कुरबक

कुरबक स्त्रियो के आलिंगन से पुष्पित हो जाता है। अमरसिंह के मत से यह झिण्टी का एक भेद है। झिण्टी चार प्रकार की होती है, रक्त, श्वेत, पीत और नील पुष्पो वाली। धन्वतरि-निघटु के मत से पीत सौरेयक (या झिण्टी) को कुरण्टक और रक्त को कुरबक कहते है। झिण्टी को हिन्दी मे कटसरैया या पियावासा कहते हैं। लाल फूलो की कटसरैया ही कुरबक कहलाती है। अमरकोप के अनुसार भी कुरवक के फूल लाल होते है। रामायण के वसन्त-वर्णन मे रक्त कुरबको का उल्लेख मिलता

---

१ रामायण ४-१-७७। २ काव्यमीमासा अध्याय १५, अलकारशेखर मरीचि १५, अलकार चिन्तामणि पृ० ७-८, कविकल्पलतावृत्ति २, पृ० ३०-३१, कविकल्पलता पृ० ४१। ३ माघ ११-७। ४. वनौपधिदर्पण पृ० ४०१। ५ अमरकोष १०-३५। ६ भावप्रकाश १-१ पुष्पवर्ग। ७ अमर १०-३६। ८. वनौषधिदर्पण, पृ० ५०१। ९ सुश्रुत सूत्रस्थान १३-१३ टीका। १० ऋतुसहार ३-२। ११ काव्यमीमासा, अध्याय १३, अलकारशेखर मरीचि १५, कविकल्पलता द्वितीय प्रतान इत्यादि। १२ काव्यमीमासा। १३ भावप्रकाश पुष्पवर्ग १-२।

है ।[1] कालिदास ने श्यामावदातारुण अर्थात् कालिमा-सफेदी लिये हुए लाल कुरवक पुष्पो का वर्णन किया है ।

मेरे मित्र प्रो० हरिदास मित्र ने, जिनको वृक्ष-विज्ञान के सम्वन्ध मे अच्छी जानकारी है, शान्तिनिकेतन मे लगे हुए एक वृक्ष को कुरवक वतलाया है। यह वृक्ष कचनार की जाति का है। कद मे कुछ छोटा और जरा झाडीदार होता है। देखने से पहले जान पडता है कि कचनार ही है। वसन्त के आरम्भ मे ही फूलता है, फूल सादे होते है, वृन्त के पास पपडियो के किनारे पर ईषत् लालिमा होती है। इस पुष्प को देखकर कोविदार का स्मरण हो आता है। निघटुकारो ने कोविदार और काचनार को एक ही पुष्प माना है। पर भावमिश्र ने दोनो का अलग-अलग पाठ किया है ।[2] भावमिश्र के मत से काचनार शोण पुष्प या लाल फूलो का होता है और कोविदार श्वेत पुष्प का। राजशेखर ने वसन्त-वर्णन के प्रसग मे काचनार और कोविदार का अलग-अलग वर्णन किया है ।[3] लेकिन रामायण[4] और ऋतुसहार[5] मे कोविदार पुष्प का वर्णन शरद ऋतु मे किया गया है। हमे ठीक नही मालूम कि कोई काचनार शरद् ऋतु मे खिलता है या नही, पर ऊपर के उद्धरणो से इतना तो स्पष्ट ही है कि राजशेखर और भावमिश्र एक तरह का कोविदार जानते थे और वाल्मीकि और कालिदास दूसरी तरह का। हरिदास वाबू का वृक्ष भावमिश्र-सम्मत कोविदार तो नही है ? अन्तत वह कुरबक तो नही ही है ।

कालिदास ने कुरवक-पुष्प वसन्त ऋतु मे खिलते देखा था। रघुवश मे इसका वर्णन वसन्त मे आया है ।[6] मालविकाग्निमित्र के वसन्त-वर्णन का ऊपर उल्लेख हो चुका है। ऊपर की प्रसिद्धि का उल्लेख काव्य-मीमासा मे नही है। पर काव्य-मीमासा के उद्धृत श्लोको से इस प्रसिद्धि का समर्थन होता है (दे० २ टि०)। मेघदूत मे कालिदास के यक्ष के उद्यान के प्रसग मे उससे कहलाया है कि उस उद्यान के माधवी-मण्डप का वेडा कुरवक का था। मालविकाग्निमित्र के अतिम अक से जान पडता है कि वसन्त की प्रौढावस्था मे कुरवक के फल गिरने लग जाते है ।[7] इन दो वातो से भी कुरवक-पुष्प का कटसरैया होना ही ठीक जान पडता है ।

११. कोकिल

कविसमय है कि कोकिल केवल वसन्त मे ही वोलते है। यह सच है कि ग्रीष्म और वर्षा मे भी कोकिल वोला करता है, पर उसके स्वर में जो मिठास वसन्त मे होती है, वह अन्यान्य ऋतुओ मे नही ।[8] शरत्काल से लेकर शिशिर तक कोकिल ऐसा मौन रहता है कि कई वैज्ञानिको तक को भ्रम हो गया है कि यह पक्षी शीतकाल मे यह देश छोडकर अन्यत्र चला जाता है ।[9] किन्तु व्हिस्लर ने लक्ष्य किया है कि कोकिल

---

१ रा०४-१-२१। २ भावप्रकाश, पुष्पवर्ग। ३ काव्यमीमासा, १६ अध्याय। ४ रा० ४-३०-६२। ५ ऋतुसहार ३-६। ६ रघुवश० ६-२६। ७. माल० ५-४। ८ काव्यमीमासा १४, अलकारशेखर १५, कविकल्पलता द्वि० प्रतान, अलकारचिन्तामणि। ९ कालिदासेर पाखी, पृ०११०।

भारतवर्ष मे ही एक स्थान से दूसरे को ऋतुओ की सुविधा के अनुसार जाता-आता रहता है।[1] कुछ अत्यधिक शीतल स्थानो को छोड दिया जाय तो प्राय सारे भारत मे प्राय साल-भर यह पक्षी पाया जाता है और चुपचाप पत्रान्तराल मे लुक-छिपकर काल-यापन करता है। आश्चर्य की बात यह है कि अन्य ऋतुओ मे इसका मौन शायद ही कभी भग होता हो।[2] वसन्तकाल मे यह पक्षी, जब तक गर्भाधान नही हो जाता, तब तक मत्तभाव से कूजन करता रहता है—

पुस्कोकिलश्चूतरसासवेन मत्त प्रियां चुम्बति रागहृष्ट ।[3]

कोकिल को कवियो ने वसन्त और मदन दोनो का साधन वर्णन किया है।[4] यद्यपि आलकारिको का यह कहना सही है कि कोकिल वसन्त के अतिरिक्त अन्य ऋतु मे भी बोलता है, पर यह और भी सही है कि वसन्त का कूजन ही अद्वितीय और अपूर्व होता है। शरत् से हेमन्त तक तो यह शायद ही कभी बोलता हो।

१२. चकोर

चकोर-चन्द्रिका का पान करते है।[5] अमरकोष के टीकाकार क्षीरस्वामी ने लिखा है कि चकोर चन्द्रिका से तृप्त होते है।[6] चकोर और मयूर एक ही जाति के पक्षी हैं। काव्यो मे जिस प्रकार मयूर के शुक्लापाग का वर्णन पाया जाता है, उसी प्रकार चकोर के चन्द्रिका-पान का वास्तविक आधार है।[7] पक्षितत्त्वज्ञो ने लक्ष्य किया है कि यद्यपि चकोर रह-रहकर दिन मे भी बोल उठता है पर सन्ध्या समय यह अत्यत मुखर हो उठता है। इस मुखरता मे भावुक पक्षी-मर्मज्ञो को उत्सुकता का मिश्रण अनुभूत हुआ है।[8]

१३. चक्रवाक-मिथुन (चकवा-चकई)

यह हस-जाति का पक्षी है। दिन मे सदा चक्रवाक जोडो मे ही पाये जाते है। भारतीय भाषाओ के काव्यग्रथ इस पक्षी के प्रणयाख्यान से भरे पडे है। कवि-सम्प्रदाय यह है कि चक्रवाक और चक्रवाकी दिन मे नदी या जलाशय के एक ही किनारे रहते है पर रात मे अलग-अलग हो जाते है, पुरुष इस किनारे पडा रह जाता है तो स्त्री उस किनारे। सारी रात वियोग मे कटती है।[9] अग्निवेश रामायण की कथा है कि स्त्री-वियोग मे कातर राम को देखकर चक्रवाको ने हँसी उडाई थी। परिणाम-वश उन्हे इस प्रकार वियुक्त होने का अभिशाप-भागी होना पड़ा।[10] राजशेखर ने इसे कवि-

---

१ A Popular Handbook of Indian Birds, p २५२। २ कालिदासेर पाखी, पृ० ११०। ३ ऋतुसहार ६। ४ ऋतुसहार ६ ५ काव्यमीमासा १४, साहित्यदर्पण ७-२३। ६ अमर०, ५-३५ टी०। ७ कालिदासेर पाखी, पृ० १४८। ८ Hume and Marshall The Game Birds of India, Burmah and Ceylon Vol II (1879) p 38 Quoted in कालिदासेर पाखी। ९ काव्यमीमासा १४, अलकारशेखर १५, अलकारचिन्तामणि ७-८ आदि। १० कादम्बरी की टीका मे इस कथा का उल्लेख है।

समय के अन्तर्गत मानकर इस विश्वास की सचाई पर सन्देह किया है। सुश्रुत के टीकाकार डल्हण भट्ट ने चक्रवाक के परिचय में इसका निशा-वियोगी होना बताया है।[1] कालिदास के ग्रथो से इस विश्वास का समर्थन होता है। पौष मास मे नदी मे तपश्चरण करती हुई पार्वती वियोग से कातर चक्रवाक-मिथुनो की कातर पुकार सुनती हुई काल काटा करती थी। पक्षि-विद्या के प्रसिद्ध पण्डित श्री सत्यचरण लाहा ने लिखा है कि यह पक्षी भारतवर्ष का स्थायी अधिवासी नही है। चैत्र, वैशाख मे यह हिमालय की ओर यात्रा करता है। देखा गया है कि १०-१५ हजार फुट ऊँचे पर्वतो के गर्तो मे यह अपना नीड निर्माण करता है। उक्त विद्वान् ने स्वयं सिक्किम और हिमालय के पर्यटन-काल मे छागू ह्रद (१२६०० फुट) मे इनको वास करते जून मास मे देखा था। शरत्काल मे ये फिर भारतवर्ष को लौट आते है।

वाल्मीकीय[2] और तुलसीदास[3] के रामायणो से जान पडता है कि यह पक्षी वर्षाकाल मे अन्यत्र चला जाता है। एक अन्य जाति का चक्रवाक शरत्काल मे भारत-वर्ष मे आता है और साल-भर अन्यत्र रहता है।[4]

कालिदास के रघुवश आदि ग्रथो से जान पडता है कि उन्होने इस पक्षी को सारे भारतवर्ष मे देखा था। असल मे यह सारे भारतवर्ष मे पाया भी जाता है। चकवा-चकई की वियोग-कथा की सचाई की अच्छी जाँच अभी नही हुई है। स्टुआर्ट बेकर ने रात मे पक्षि-मिथुन को वियुक्त भाव से विचरण करते देखा था। ये एक-दूसरे को उत्कण्ठा-भरी आवाज से पुकारते से जान पडते थे।[5] कालिदास ने परस्पराक्रन्दी चक्र-वाको का उल्लेख किया है।[6] व्हिस्लर[7] ने लिखा है कि ये पक्षी दिन मे अपने जोडे के साथ बैठकर या खडे रहकर आराम करते है। दिन मे ये बहुत कम ही विचरण करते है। अगर कही चले भी तो साथ ही साथ। किन्तु रात मे अलग होकर आहार-चयन करते है। रामायण मे इनके सहचारी होकर विचरण करने का उल्लेख है।[8] रात को शायद आहार-चयनार्थ इनका वियुक्त होना ही कवि-प्रसिद्धि का मूल है।[9]

यह पक्षी प्रधानतः उद्भिज्जाशी है। कालिदास ने इन्हे उत्पल-केसर भक्षण करते वर्णन किया है। ऋतुसहार मे कमल-केसर भक्षण करते हुए और परस्पर क्रन्दन करते हुए चक्रवाको का वर्णन मिलता है।

१४. चन्दन

(१)

कवि-समय के अनुसार चन्दन मे फूल और फल का वर्णन नही होना चाहिए।[10]

---

१ सूत्रस्थान ४६,—१०५। २ वाल्मीकीय रामायण ४-२८-१६। ३ किष्किन्धाकाण्ड। ४ जलचारी, पृ० ११०। ५ Ducks and Their Allies, 1921, p 146 कालिदासेर पाखी मे उद्धृत। ६ कुमार० ५-२६। ७ A Popular Handbook of Indian Birds (1928) p 407 ८ रामा० ४-३०-१०। ९ सत्यचरण लाहा—कालिदासेर पाखी, पृ० १२७। १० काव्यमीमासा, अध्याय १३, साहित्यदर्पण ७-२५, अलकारशेखर १५, इत्यादि।

भावप्रकाश में श्वेत, पीत और रक्त इन तीन प्रकार के चन्दनों का उल्लेख है। पीत चन्दन को ही कालीयक और हरिचदन कहा गया है। धन्वंतरि के मत से चदन और श्वेतचदन एक ही चीज हैं। मलय पर्वत पर जो चंदन होता है उसे भद्रश्री कहते है। तैलपर्ण और गोशीर्ष पर्वत पर भी इन्ही पर्वतो के नाम वाले चदन होते है।[1] वनौषधिदर्पणकार अनेक शास्त्रीय चर्चा के बाद स्थिर करते है कि श्वेत और पीत चदन दो चीज़ें नही हैं।[2] चदन वृक्ष मे बहुसख्यक, छोटे, प्रथमावस्था में फीके और बाद को बैंगनी फूल होते है। फल गोल और मसृण होते हैं जो पकने पर काले हो जाते हैं।[3] तथापि कविजन इसके फल और पुष्प का वर्णन नही करते[4]।

यद्यपि कवि-समय के अनुसार चदन में फल-पुष्प का वर्णन नही होता, पर रामायण में इसका पुष्पित होना वर्णित है।[5] परवर्ती कवियों में भी किसी-किसी ने इसके फल-फूल का वर्णन किया है।[6]

(२)

चदन के बारे में एक दूसरी प्रसिद्धि यह है कि वह केवल मलय पर्वत पर ही होता है।[7] आयुर्वेदिक ग्रंथों के अनुसार स्थान-भेद से पाँच प्रकार के चदन बताये गये है। भद्रश्री मलय पर्वत पर होता है; गोशीर्ष, बर्कर और तैलपर्ण इन्ही नामो के पर्वतो पर होते है। वेट्ट और सुक्कड एक ही चीज़ है; एक कच्चे कटे वृक्ष से आता है, दूसरा स्वयं पके वृक्ष से। किसी-किसी के मत से मलयज चन्दन तथा वेट्ट और सुक्कड एक ही चीज़ है।[8] ब्राण्डिस ने लिखा है कि यह वेस्टर्न पेनिनसुला मे नासिक से लेकर उत्तरी अर्काट के ज़िलों तक प्रचुर परिमाण मे उत्पन्न होता है। बगीचों मे लगाने से उत्तर भारत मे सहारनपुर तक उपजते देखा गया है। इसके फूल फरवरी से जुलाई तक खिलते रहते हैं।[9]

इस कवि-प्रसिद्धि का मूल शायद यह हो कि मलय पर्वत पर ही यह बहुतायत से होता है। राजशेखर ने मलय पर्वत की चार विशेषताओ मे से एक यह बताई है कि इस पर्वत पर सर्पवेष्टित चन्दन के वृक्ष होते हैं।[10] इस पर्वत पर के नीम, कुटज आदि वृक्ष भी चन्दन के समान सुरभित हो जाते हैं, ऐसा कविगण वर्णन करते है।[11]

१५ चम्पक (चम्पा)

कवि-ससिद्धि है कि रमणियों के पटु-मृदुहास्य से चम्पा पुष्पित हो जाता है।[12] यह भारतवर्ष का परिचित पुष्प है और इसके फूल पीले नारंगी रग के होते हैं। कवियो

---

१ कर्पूरादि-वर्ग १४-१६। २ वनौषधिदर्पण, पृ० २५-२६। ३-४ वही। ५ रामायण ४-१, ८२-८३। ६. सुभाषितरत्नभाडागार, पृ० ३७७। ७ काव्यमीमासा १४, अलकारशेखर १५, अलकार चिन्तामणि ७-८। ८. वनौषधिदर्पण। ९. Brandis : Indian Trees, p. 553। १०. काव्यमीमासा, १७ अध्याय। ११ सुभाषित-रत्नभांडागार, पृ० ३९९। १२ मेघदूत २-१७, मल्लिनाथ की टीका।

ने इसे कनक-वर्ण कहकर वर्णन किया है। कहते हैं कि इसके उत्कट गन्ध के कारण भौंरे इसके पास नही जाते।[१] पश्चिमी घाट और मलय प्रायद्वीप मे यह बहुतायत से होता है और यत्न करने से सारे भारतवर्ष, वर्मा, सीलोन और इण्डोचाइना मे हो सकता है।[२] वसन्त-वर्णन के प्रसग मे रामायण मे इसका उल्लेख है।[३] कालिदास ने इसे वसन्त-वर्णन के अन्त मे याद किया है।[४] असल मे यह वसन्त और ग्रीष्म की सन्धि मे ही खिलता भी है। राजशेखर ने ग्रीष्म मे इसका वर्णन किया है।[५]

१६. तिलक

सुन्दरियो के वीक्षण-मात्र से तिलक पुष्प कुसुमित हो जाता है।[६] मुझे ठीक मालूम नही कि तिलक वृक्ष कैसा होता है। भावप्रकाश मे पुष्पवर्ग मे इसका उल्लेख है सही, पर उससे इसका आकार-प्रकार जानने मे कुछ सहायता नही मिलती। ब्राण्डिस ने एक 'तिलकी' वृक्ष की चर्चा की है। यह चिनाब से लेकर सिक्किम तक पार्वत्य प्रदेशो मे पाया जाता है। मध्यप्रदेश, कोकण, दक्षिणी प्रदेश और उडीसा मे ये वृक्ष पाये जाते है। ब्राण्डिस का अनुमान है कि ऊपर जमीन को शस्य-श्यामल बनाने के लिए इस वृक्ष का उपयोग किया जा सकता है। यह वृक्ष वसन्तकाल मे खिलता है। फूल नीलाभ श्वेत होते है।[७] रामायण मे वसन्त-काल मे तिलक-पुष्प की मञ्जरी का वर्णन मिलता है।[८] कालिदास के मालविकाग्निमित्र मे तिलक-पुष्प का वर्णन है।[९] टीकाकार का अनुमान है कि वहाँ तिलक पुष्प के लाल रग की ओर कवि इशारा करना चाहता है। उस श्लोक मे कहा गया है कि तरुणियो की तिलक-क्रिया तिलक-पुष्पो से आक्रान्त हो गई है। शब्दकल्पद्रुम के मत से तिलक और पुन्नाग एक ही वृक्ष है।[१०] पर राजशेखर ने तिलक को वसन्त मे खिलते देखा था और पुन्नाग को हेमन्त मे।[११] राजशेखर ने वसन्त मे तिलक-पुष्प का जो वर्णन किया है उससे सिद्ध होता है कि उन्हे इस कवि-प्रसिद्धि की जानकारी थी, फिर भी उन्होने इसे कवि-समय के अन्तर्गत नही माना है। कालिदास ने वसन्त-वर्णन के प्रसग मे इसका स्मरण किया है।

१७. नमेरु

सुन्दरियो के गान से नमेरु-वृक्ष विकसित हो जाता है। विश्वकोष के अनुसार नमेरु का ही दूसरा नाम सुरपुन्नाग है। कालिदास के काव्यो मे हिमालय पर्वत पर इसका वर्णन पाया जाता है।[१२] कैलास पर जब शिव ध्यानावस्थ होकर बैठ गये तो उनका

---

१ सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृ० ३७६। २. Brandis Indian Trees, p 8। ३ रा० ४-१-७८। ४. ऋतुसहार। ५ काव्यमीमासा १८, वामनपुराण, अध्याय ६। ६. मेघदूत २-१७ टीका और कुमार० ३-२६ टीका। ७ Brandis Indian Trees, p. 253। ८ रा० ४-१-५८ और भी, देखिए रा० ४-१-७८। ९ मा० ३-५। १० शब्दकल्पद्रुम—'तिलक' शब्द देखिए। ११ काव्यमीमासा १८। १२ कुमारसभव १-५५ पर मल्लिनाथ की टीका।

गण नमेरु-पुष्पों के आभूषण और भूर्जत्वक् पहनकर मनःशिला से अनुलिप्त होकर पार्वत्य औषधो से व्याप्त शिलातलो पर जा विराजे ।[१] कालिदास के ग्रन्थो से इस वृक्ष का घनच्छाय होना भी प्रकट होता है । शिव जिस स्थान पर ध्यानावस्थ होकर बैठे थे उसके प्रान्त-भाग मे नमेरु-वृक्ष की शाखाएँ झुकी हुई थी ।[२]

१८. नीलोत्पल

(१)

नीलोत्पल का भी कवि-समय के अनुसार पद्‌म की ही भाँति नदी-समुद्र आदि मे वर्णन होना चाहिए ।[३] डल्हण के मत से उत्पल और नीलोत्पल एक ही वस्तु है, क्योकि उत्पल उस कमल को कहते है जो ईषत् नील हो ।[४] धन्वन्तरि-निघटु के मत से भी यह कमल का ही एक भेद है ।[५] नीलकमल का वैष्णव-साहित्य मे भूरि-भूरि उल्लेख है पर असल मे यह कही भारतवर्ष मे होता है या नही, इस विषय मे सन्देह है। सुना है, वृन्दावन मे किसी वैष्णव महात्मा को रासोत्सव के लिए नीलकमल की आवश्यकता पड़ी । उन्होने सारे भारतवर्ष मे इसकी खोज की । न मिल सकने पर आस्ट्रेलिया से नीलकमल मँगाने पडे । पर वैद्यक-ग्रथो से पता चलता है कि नीलकमल इस देश मे कोई कवि-कल्पित वस्तु नही है । बहुत प्राचीन युग से इसका औषधार्थ प्रयोग पाया जाता है । राजशेखर भी इसे कवि-कल्पना नही समझते । कवियो ने नदी मे इसका वर्णन किया है ।[६] पडित रामनरेशजी त्रिपाठी ने मुझे बताया है कि काश्मीर मे नीलोत्पल होता है और उसे स्थानीय लोग 'नीलोफर' कहते है ।

(२)

दूसरी प्रसिद्धि यह है कि नीलोत्पल दिन मे नही खिलता, रात मे विकसित होता है ।[७] डल्हण ने सौगन्धिक कमल को चद्रविकासी कहा है ।[८] सौगन्धिक नीलकमल को ही कहते है ('पद्‌म' देखिये) । काव्यमीमासा मे इस प्रसिद्धि का समर्थक श्लोक उदाहृत है ।[९]

१९. पद्म (कमल)

कवि-समय के अनुसार (१) पद्‌म दिन में खिलते है[१०] (नदी, समुद्र आदि मे भी होते हैं[११]), (२) उनके मुकुल हरे नही होते है[१२],(३) उनके पुष्प मे लक्ष्मी का

---

१. कुमारसभव १-५५ । २ कुमारसभव ३-४३ । ३. काव्यमीमासा १४, अलकारशेखर १५, कविकल्पलतावृत्ति २, अलकारचिन्तामणि ७-८ । ४ सुश्रुत, सूत्रस्थान १३-१३ टीका । ५ वनौषधिदर्पण, पृ० ४०१-३ । ६ काव्यमीमासा १४ । ७ काव्यमीमासा १४, अलकारशेखर १५, अलकारचिन्तामणि ७-८ । ८ सुश्रुत, सूत्र० १३-१३ टीका । ९. काव्यमीमासा, अध्याय १४ । १० साहित्यदर्पण ७-२५ । ११-१२ काव्यमीमासा १४, अलकारशेखर १५ इत्यादि ।

वास होता है और (४) हेमन्त तथा शिशिर के सिवा अन्य सभी ऋतुओ मे उनका वर्णन होता है।[1]

पद्म के कई भेद होते है। धन्वन्तरीय निघटु के मत से ये सात प्रकार के होते है—पुण्डरीक (अत्यन्त श्वेत), सौगन्धिक (नील पद्म), रक्त पद्म, कुमुद और तीन प्रकार के क्षुद्र उत्पल।[2] डल्हण के मत से सौगन्धिक कमल चन्द्रिका पाकर विकसित होता है और इसका एक नाम गर्दभ पुष्प है। किन्तु चक्रपाणि ने इसका भाषा नाम शुन्धी लिखा है।[3] चक्रपाणि बगाली थे किन्तु वगाल मे शुन्धी नाम से आजकल जो कमल प्रसिद्ध है वह अत्यन्त सुरभित नही होता, जैसा कि डल्हण के कथनानुसार उसे होना चाहिए।[4] वह नील भी नही होता। दीर्घ काल तक साफ न किये हुए कर्दम-वहुल जलाशय मे ही कमल खिला करता है। लक्ष्य करने की वात है कि यद्यपि धन्वन्तरीय निघण्टु के मत से सौगन्धिक नील होता है और डल्हण इसे चन्द्रिका-विकासी मानते है, पर वाल्मीकीय रामायण के समय नीलपद्म और सौगन्धिक एक ही चीज नही समझे जाते थे। वसन्त-वर्णन के प्रसग मे आदिकवि ने एक ही जगह पद्म, सौगन्धिक और नीलपद्म का खिलना वर्णन किया है।[5] कोकनद या रक्त-पद्म ग्रीष्म मे खिलता है और इसके फल वर्षा मे पक जाते है। इसके फूल कुछ गुलाबी रग के और दलो के अग्रभाग क्रमशः लाल होते है। कमल के मूल वडी दूर तक पानी मे धँसे होते है। मूल अँगूठे की तरह मोटा और मसृण होता है। शतदल पद्म के दल २० से लेकर ७० तक पाये जाते है। फूल जिस नाल पर खिला होता है उसे मृणाल कहते है। इसमे अनतिसूक्ष्म काँटे होते है। श्वेत-पद्म का रग कुन्द के फूल के समान होता है।[6]

भारतीय साहित्य, कला और सस्कृति मे पद्म का वहुत वडा स्थान है। ऐसा भारतीय कलाकार या कवि, मनीषी या साधक नही पाया जाएगा जिसने इस पुष्प को किसी-न-किसी रूप मे अपना आदर्श न माना हो। जहाँ वह अपने सौन्दर्य के कारण कवियो का परम प्रिय रहा है वहाँ वह सहज नि शक होने के कारण साधको का आदर्श भी रहा है। यद्यपि यह बहते पानी मे प्रायः नही पाया जाता पर कवियो ने नदी मे इसका वर्णन किया है। महाकवि कालिदास ने वर्षाकाल मे शिप्रानदी मे कमल-पुष्पो का उल्लेख किया है।[7] वे वसन्त[8] तथा ग्रीष्म[9] मे भी इस पुष्प को न भूल सके थे।

राजशेखर ने कवि-समय के प्रसग मे पद्म के दिवा-विकास का उल्लेख नही किया पर साहित्यदर्पण मे इस वात की चर्चा है। कहना न होगा कि कवियो ने कमल का दिन मे विकसित होना वर्णन किया है।[10] राजशेखर के उदाहृत एक श्लोक से जान पडता है कि कवि ने आदिवराह के श्वेत दाँतो से पुण्डरीक-मुकुल की उपमा

---

१ अलकारशेखर मरीचि १५। २ वनौपधिदर्पण, पृ० ४०१। ३ चरक-सहिता, सू० ४ अध्याय टीका। ४ सुश्रुत, सूत्रस्थान १३-१३ टीका। ५ रामायण ४-१। ६ वनौपधिदर्पण, पृ०४०१-२। ७ मेघदूत १-३०। ८ कुमारसम्भव ३-३७। ९ ऋतुसहार १-२८। १० सुभाषितरत्नभा० ३८९।

दी है ।[१] असल मे पुण्डरीक के मुकुल सफेद नही होते । राजशेखर ने यह बात लक्ष्य भी की थी । पद्म मे लक्ष्मी का निवास तो भारतीय कवियों का अतिपरिचित विषय है ।[२]

२०. प्रियंगु

(१)

कवि-समय के अनुसार प्रियगु स्त्रियों के स्पर्श से विकसित हो उठता है ।[३] प्राचीन युग मे महलो और बागीचो के अग्रभाग मे प्रियंगु के वृक्ष लगाये जाते थे ।[४] लेकिन आजकल इस पुष्प के बारे मे पर्याप्त मतभेद है । बगाल और बिहार के पंसारी एक तरह का प्रियगु फूल बेचते हैं जो सुगन्धित नही होता, पर अमरकोष,[५] धन्वन्तरि निघण्टु[६] और चक्रदत्त[७] के अनुसार प्रियंगु मे सुगन्ध होनी चाहिए । कवि ने ऋतुसहार मे सुगन्धित द्रव्यो के साथ ही प्रियगु का वर्णन किया है ।[८] बृहत्सहिता के गन्ध-युक्ति प्रकरण मे प्रियंगु का उल्लेख सुगन्धित द्रव्यो में है ।[९] चरक ने प्रियगु और चन्दन चर्चित रमणियो के कोमल स्पर्श को दाह की महौषध बताया है ।[१०] पर हमे स्त्रियो के स्पर्श से प्रियगु-पुष्प के विकसित होने का उदाहरण काव्य में नही मिला ।

(२)

प्रियगु के विषय मे दूसरा कवि-समय है कि यद्यपि इसके पुष्प पीत वर्ण के होते है तथापि उसे पीत नही वर्णन करना चाहिए ।[११] राजशेखर ने उदाहरण देने के लिए जो श्लोक उद्धृत किया है उसमे प्रियगु-पुष्प को श्याम रंग का बताया गया है ।[१२] प्रियगु का एक नाम श्यामालता भी है ।[१३] कविराज विरजादास गुप्त ने बृहन्नि-घण्टु-रत्नाकर से उद्धृत करके बताया है कि इस वृक्ष का एक नाम 'कृष्णपुष्पी' भी है ।[१४] इस पर से वे अनुमान करते हैं कि यह फूल काला होता होगा । डिमक साहबने[१५] अपनी पुस्तक के प्रथम खण्ड, पृष्ठ ३४३ पर प्रियगु के पुष्पो का पीला होना लिखा है किन्तु एक दूसरे वनस्पतिशास्त्री नाइट ने 'फिगर्स ऑफ् इंडियन प्लांट्स' नामक ग्रन्थ के प्रथम खण्ड, पृष्ठ १६६ पर इसका जो चित्र दिया है उससे डिमक के मत का ऐक्य नही सिद्ध होता ।

नवग्रह-स्तोत्र में बुध के प्रणाम-मन्त्र मे प्रियंगु-कलिका का श्याम होना उल्लि-खित है । किन्तु यह लक्ष्य करने की बात है कि बुध के ध्यान मे सर्वत्र बुध का वर्ण पीत बताया गया है । यहाँ अचानक प्रियंगु-कलिका के समान बुध का श्याम वर्ण होना आश्चर्य का विषय ही है । क्या यह अनुमान असगत होगा कि पहले पाठ 'प्रियगु-

---

१ काव्यमीमासा २४ । २ सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृ० ३६० । ३ दे० शी० २ टि० ४ बृहत् सहिता ५५-३ । ५ अमर० ४-५५ । ६ वनौषधिदर्पण, पृ० ४४६ । ७ चरक-सहिता टीका ८ ऋतुसहार ६-१२ । ९ बृहत्-सहिता ७७-२९ । १० दाह-चिकित्सा । ११. काव्य-मीमासा १५, अलकारशेखर १५, अलकारचिन्तामणि, पृ० ७-८ इत्यादि । १२ काव्यमीमासा १५ । १३. ऋतुसहार ६-१२ टीका । १४. वनौषधिदर्पण, पृ० ४४५ । १५ वनौषधिदर्पण मे उद्धृत ।

कलिका-पीत' था, बाद मे किसी कवि-समय के जानकार ने 'पीत' को काटकर 'श्याम' कर दिया ? यह जरूर है कि ज्योतिष-ग्रन्थो के अनुसार बुध का वर्ण दूर्वाश्याम है।[1]

२१. भूर्जपत्र

कवि-समय के अनुसार केवल हिमालय मे ही भूर्जत्वक् का वर्णन होना चाहिए[2]। हिमालय मे ये बहुतायत से पाये भी जाते है। इनकी ऊँचाई कभी-कभी ६० फुट तक होती है। सिरे पर बहुत-सी शाखा-प्रशाखाएँ होती है। कुरम उपत्यका मे यह वृक्ष १०-१५ हजार फुट की ऊँचाई पर पाया गया है। हिमालय मे १४००० फुट और उत्तरी पजाब मे ७००० फुट की ऊँचाई पर इसके वृक्ष होते है। भारतवर्ष मे सतलज की घाटी से लेकर नेपाल-गढवाल तक ५००० से १०००० फुट की ऊँचाई पर ये वृक्ष पाये गये हैं। चीन और जापान मे भी ये वृक्ष मिलते हैं। एक दूसरी जाति के भोजपत्र दार्जिलिग की तराई, आसाम की पहाडियो और लोअर ब्रह्मा की पहाडियो पर पाये जाते है।[3] पर सब बातो का ध्यान रखते हुए इतना निःसन्देह कहा जा सकता है कि भूर्जपत्र मुख्यत हिमालय पर्वतमाला का ही वृक्ष है। कालिदास ने हिमालय और कैलास के वर्णन मे इसका नाम लिया है।[4] राजशेखर ने पश्चिमी वायु के वर्णन मे हिमालय पर्वत के भूर्जद्रुमो का वर्णन किया है[5]।

२२. मन्दार

मन्दार रमणियो के नर्म-वाक्य से पुष्पित होता है।[6] यह इन्द्र के नन्दन-कानन के पाँच पुष्पो मे से एक है।[7] इस नाम का एक पुष्प पजाब और मारवाड की ओर प्रचलित है पर ब्राण्डिसन ने अपने ग्रन्थ मे इस जाति के मन्दार का जो चित्र दिया है उसमे पुष्पो के स्तवक है।[8] कालिदास के परिचित मन्दार के वृक्ष मे पुष्प-स्तवक हुआ करते थे। मन्दार अर्क और धत्तूर के वृक्ष को भी कहते है पर असल मे कवि-वर्णित मन्दार वनस्पति-शास्त्रियो का परिचित 'कोरल ट्री' है। इसका वृक्ष कुछ पीलापन लिये भूरे रग का होता है। पुष्प-स्तवक मे बैंगनी रग से मिलते रग के गोल-गोल छोटे-छोटे पुष्प होते हैं। वृक्ष बहुत बडा नही होता।[9] अलकापुरी वाला बालमन्दार वृक्ष इतना ऊँचा था कि उसके पुष्प हाथ से ही छुए जा सकते थे।[10] इन्द्राणी के अलक मे मन्दार-पुष्प सुशोभित रहा करते थे।[11] शकुन्तला नाटक मे इन्द्र ने दुष्यन्त को मन्दार-माला दी थी।[12] कुमारसम्भव, रघुवश और विक्रमोर्वशी मे महाकवि ने कई जगह इस मोहक पुष्प का वर्णन किया है[13]।

---

१ बृहज्जातक ३—२। २ काव्यमीमासा १४ साहित्यदर्पण ७-२५, अलकारशेखर-मरीचि १५ इत्यादि। ३ Brandis Indian Trees, p 622 ४ कुमारसम्भव १-७ और १-५५। ५ काव्यमीमासा १८। ६ मेघदूत २—१७ मल्लिनाथ की टीका। ७ अमरकोष १-५०। ८ Indian Trees ९. Indian Trees, p 220. १० मेघदूत १—७५। ११ रघुवश ६—२३। १२ अभिज्ञानशाकुन्तल ७—२। १३ कुमारसम्भव ५—८०, विक्रमोर्वशी ४—३५।

२३. मयूर

कवि-समय के अनुसार मयूर केवल वर्षा-ऋतु मे नृत्य करते हैं।[१] भारतवर्ष मे दो जाति के मयूर पाये जाते है, एक का कठ नीला होता है और उपाग (दृष्टि) शुक्ल होता है; दूसरे का कठ नील नही होता। पहली जाति का मोर ही भारतवर्ष मे सर्वत्र पाया जाता है। कवि-समय के अनुसार मयूर का कठ नील ही वर्णन करना चाहिए। कालिदास ने इसी जाति के मयूर का वर्णन किया है।[२] जून से लेकर सितम्बर तक मयूरो के गर्भाधान और सहवास का समय है। मयूरी को प्रलुब्ध करने के लिए इस समय पुरुष-मयूर प्रमत्त भाव से नृत्य करता है।[3] मेघ देखकर पर्वतों पर इसका मनो-मोहक नृत्य और समुत्सुक केका-ध्वनि करना एक निरतिशय नैसर्गिक व्यापार है। वर्षा ऋतु के अन्त मे जब गर्भाधान हो जाता है, तब इसका पुच्छ (वर्ह) स्खलित हो जाता है। फिर इसका नृत्य या तो होता ही नही, या क्वचित् कदाचित् दिख भी गया तो मनोहर नही होता। रामायण मे इन गलित वर्ह पक्षियो का उल्लेख है।[४] कालिदास ने भी इस वर्हस्खलन व्यापार को लक्ष्य किया था। मेघदूत से जान पडता है कि भवानी इस *स्वय-स्खलित वर्ह को कानो मे धारण करती थी। गोप-वेशधारी विष्णु भी स्खलित* वर्ह का आभरण धारण करते थे।

पक्षि-तत्त्वज्ञो ने इस बात पर जोर जरूर दिया है कि मयूर वर्षा-काल मे प्रमत्त भाव से नृत्य करता है, पर इसका अन्य ऋतुओ मे नृत्य भी विरल-दर्शन नही है। रामायण मे वसन्त-वर्णन के अवसर पर आदि-कवि ने मयूरियो से घिरे हुए मद-मूर्च्छित और प्रनृत्यमान मयूरो का वर्णन किया है।[५]

२४. मालती

मालती-लता साल मे दो वार फूलती है, वसन्त मे और वर्षा तथा शरद मे। लेकिन कवि-समय के अनुसार इसका वर्णन वसन्त मे नही होना चाहिए[६]। मालती के इस दो बार पुष्पोद्गम को देखकर ही कवि रवीन्द्रनाथ ने एक गान मे कहा है—हे मालती, तुम मे यह दुविधा क्यो है? कालिदास ने वर्षा[७] और शरत्[८] दोनों ऋतुओ मे मालती पुष्प का विकसित होना वर्णन किया है। रामायण मे आदिकवि ने वर्षा ऋतु के मेघाच्छन्न आकाश के वर्णन के सिलसिले मे कहा है कि मालती के विकसित होने से ही सूर्य के अस्त हो जाने का अनुमान होता है।[९] सुप्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य ने ऋतु-चिह्नो का वर्णन करते समय मालती का वर्षा मे खिलना ही वर्णन किया है। फिर भी सस्कृत-साहित्य मे मालती का वसन्त-विकास-वर्णन कम नही है। वाल्मीकि-

---

१ काव्यमीमासा १४, साहित्यदर्पण ७-२५। २ मेघदूत। ३ Hume and Marshall, The Game Birds of India, Burmah and Ceylon. Vol. III p, 427 ४ रा० ४-३०-४० और ४-३०-३३। ५ रा० ४, १, ३६-३७ और भी देखिए ४, १, ३८-३९-४०। ६ काव्यमीमासा १४, साहित्य-दर्पण ७-२५, अलकारशेखर १५। ७ ऋतुसहार २-२४। ८, वही ३-२। ९ वाल्मीकि रा० ४-२८-५२।

रामायण[1] मे तो इसका वसन्त-विकास वर्णित है ही, प्राचीन कवि व्यासदास[2] और विज्जका[3] का भी वर्णन इस बात का समर्थक है। मालती का एक नाम जाती भी है। वैद्यक केसभी निघटुकार इस बात को मानते है, लेकिन भावप्रकाश मे जाती और मालती ये जुदी लताए मान ली गई है और ग्रन्थकार ने जाती का भापा-नाम चमेली बताया है। वनौपधिदर्पणकार इस सिद्धान्त से वडे चक्कर मे पड गये है और इस निर्णय पर पहुँचे है कि भावप्रकाश के पहले के ग्रन्थो मे जाती और मालती एक है और बाद के ग्रथो मे जाती का अर्थ चमेली है और मालती का मालती।[4] हम इस विचित्र सिद्धान्त की कोई जरूरत नही समझते।

२५. मुक्ता (मोती)

कवि-प्रसिद्धि है कि केवल ताम्रपर्णी नदी मे ही मोती पैदा होते है।[5] शास्त्रोके अनुसार हाथी, मेघ, सूअर, मछली, शुक्ति (सीपी), बाँस, साँप और मेढक,—इन आठ चीजो से मोती पैदा होते हैं। गरुडपुराण मेढक वाले मोती की चर्चा नही करता और उसके मत से इन सबमे शुक्त्युद्भव मोती ही श्रेष्ठ है। यही एकमात्र प्रकाशमान और वेध्य होता है। शख और हाथी से पैदा हुआ मोती सर्वाधम है।[6] गरुडपुराण के अनुसार मोती आठ आकरो से आते है, सिंहल, परलोक (मेघो से मतलव है), सौराष्ट्र, ताम्रपर्ण, पारसु, कौवेर, पाण्ड्य, विराट और मुक्ता। जिन चीजो से मोती पैदा होते हैं उनमे स्वाति का जल पडने से ही मोती हो सकते है, यह पौराणिक विश्वास है। यह सब होते हुए भी कविजन केवल ताम्रपर्णी नदी मे ही मोतियो का वर्णन करते है।[7]

२६. रंग[8]

कवि-समय के अनुसार यश, हास आदि का रग सफेद, अपयश और पाप आदि का काला, क्रोध और अनुराग आदि का लाल होता है।[9]

फूलो मे कुन्द-कुड्मल का रग लाल नही वर्णन किया जाता, कमल-मुकुल का हरा और प्रियगु-पुष्पो का रग पीत नही वर्णित होता।

सामान्यत मणि-माणिक्य का रग लाल[10], पुष्पो का सफेद[11] और मेघ का काला

---

१ रा० ४-१-७६। २ सुभापितावली १६५८। ३ काव्यप्रकाश १ मे उदधृत। ४ वनौपधि-दर्पण, पृ० ५५१-२। ५ काव्यमीमासा १४, अलकारशेखर १५ आदि। ६ गरुडपुराण, अध्याय ६९-४, शब्दकल्पद्रुम। ७ काव्यमीमासा १४। ८ काव्यमीमासा, अध्याय १४-१६, अलकारशेखर १५ इत्यादि। ९ अलकारशेखर लाल वर्णन के लिए इन वस्तुओं का और निर्देश करता है—जपा, रत्न, सूर्य, पद्म, पल्लव, बन्धूक, दाडिम और करज (अँगुली)। १० सामान्यतया श्वेत रग के लिए अलकारशेखर और योग करता है—पुष्प, जल, छत्र, वस्त्र। ११ काले के लिए अलकारशेखर और कहता है—शैल, मेघ, वृक्ष, समुद्र, लता, भिल्ल, असुर, पक और केश। पीले के लिए अलकारशेखर निर्देश करता है—शालिमण्डूक, वल्कल और पराग।

माना जाता है ।[1]

कृष्ण, नील, हरित, श्याम आदि रंगो का प्रयोग एक-दूसरे के स्थान पर किया जा सकता है । यह मान लिया जाता है कि ये रग एकार्थवाचक है । इसी प्रकार पीत और रक्त को तथा श्वेत और गौर को एक ही रग मान लिया जाता है ।

आँखो का वर्णन अनेक रग का किया जाता है—कभी श्याम, कभी कृष्ण, कभी श्वेत, कभी लाल और कभी मिश्र रग ।

२७. राजहंस

(१)

कवि-समय के अनुसार वर्षाकाल मे हस उड़कर मानसरोवर को चले जाते है ।[2] कालिदास ने भी वर्षाकाल मे मानस-सर के लिए उत्कण्ठित हसो को कैलास की ओर उडते जाते देखा था ।[3] हस अनेक जातियो के होते है। अमरकोष के मत से लाल चरण और चोच वाले सित (श्वेत) वर्ण के हस को राजहस कहते हैं ।[4] भारतवर्ष मे इस जाति के हस विरल नही। व्हिस्लर का कहना है कि उत्तर और मध्य एशिया मे जब कडाके की सर्दी पडने लगती है तो हस जाति के अनेक पक्षी दल बाँधकर दक्षिण की ओर अक्लान्त भाव से दिवा-रात्रि उडते हुए हिमालय पर्वत को लाँघते दिखाई देते है । ये प्रजनन और आहार की सुविधाओ के लिए जुलाई के आरम्भ मे ही फिर हिमालय को लाँघना शुरू कर देते है । सितम्बर के महीने मे इन प्रव्राजको की सख्या बहुत अधिक हो जाती है । हिमालय को पूर्वी और पश्चिमी दोनो सिरो से ये पार करते है ।[5] मेघों के साथ इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

कई जातियो के हस तिब्बत की लडाक झील मे और कैलास के पाददेश में अवस्थित मानसरोवर मे अण्डा देते है । हिमालय के नाना स्थानो मे और मानसरोवर मे भी, पक्षि-तत्त्वज्ञो ने राजहसों तथा अन्यान्य हसो को वर्षाकाल मे अवस्थान करते

---

१ अन्यत्र (१७ अध्याय) अलकारशेखर निम्नलिखित भाव से रग का निर्देश करता है—

श्वेत—चन्द्र, इन्द्र के घोडे, शिव, नारद, भार्गव, हली, शेष, सर्प, इन्द्र का हाथी, सिह, सौध, शरत काल के मेघ, सूर्यकात, चन्द्रकातमणि, कैंचुर, मदार, हिमालय, हिम, हास, मृणाल, स्वर्गगा, हस्तिदत, अभ्रक, सिकता, अमृत, लोध्र, गुण, कैरव, शर्करा ।

नील—कृष्ण, चन्द्रचिह्न, व्यास, राम, अर्जुन, शनि, द्रोपदी, काली, राजपट्ट, विदूरज, विष, आकाश, कुहू, शस्त्र, अगरु, पाप, तम, रात्रि, अद्भुत और शृगार-रस, मद, ताप, वाण, बुद्ध, बलराम के वस्त्र, यम, राक्षस, मोर का कण्ठ, कृत्या, छाया, गज, अगार और दुष्ट का अन्त करण ।

लाल—क्षात्र-धर्म, त्रेता, रौद्ररस, चकोर, कोकिल-पारावत के नेत्र, कपिमुख, तेज सार, मगल कुकुम, तक्षक, जिह्वा, इन्द्रगोप, खद्योत, विद्युत, कुञ्जरबिंदु ।

पीत—दीप, जीव, इन्द्र, गरुड़, शिव के नेत्र और जटा, ब्रह्मा, वीररस, स्वर्ण, वानर, द्वापर, गोरोचन, किञ्जल्क, चक्रवाकी, हरिताल, मन शिल ।

धूसर—रज, लूता, करभ, गृहगोधा, कपोत, मूषक, दुर्गा, काककण्ठ, गर्दभ ।

हरित—सूर्याश्व, वुर्ण, मरकत आदि ।

२. साहित्य दर्पण ७-२३ । २. मेघ० । ३ अमरकोष ४-२४ ।

५. A Popular Handbook of Indian Birds (1928) p XXI

देखा है ।[1] इससे जान पडता है कि उक्त कवि-प्रसिद्ध नितान्त अमूलक नही है । इतना जरूर है कि सभी हस मानसरोवर मे ही नही जाते । हिमालय के यात्रियो ने यह भी लक्ष्य किया है कि कभी-कभी हिमालय की ही झीलो मे अनुकूल वास मिलने पर ये पक्षी अन्यत्र नही जाते । यक्ष के उद्यान की वापी मे वास करने वाले हस मेघो को देखकर भी मानसरोवर के लिए उत्कठित नही हुए थे ।[2] कारण्डव और कादम्ब आदि पक्षी भी हस की जाति के है । अति धूसर पक्ष का कलहस कादम्ब कहलाता है और कारण्डव एक जाति का शुक्ल हस है ।[3] कालिदास ने वर्षाकाल मे इनका भी प्रव्रजन वर्णन किया है ।

एक दूसरा कवि-समय है कि जलाशय मात्र मे हस का वर्णन होना चाहिए ।[4] वराहमिहिर ने उन वापियों को शुभ-फलप्रद बताया है जिनमे सदैव हसादि पक्षियो का वास रहे ।[5] पक्षि-तत्वज्ञो ने लक्ष्य किया है कि अक्तूबर से जुलाई तक हस जाति के अनेक पक्षी सारे भारत की स्वच्छतोया नदियों और जलाशयो मे वास करते है । कई जाति के जलचारी पक्षी तो साल-भर जलाशयो मे रहते हैं । रामायण मे वसन्तकाल मे हस पक्षियो का वर्णन मिलता है । महाकवि कालिदास ने ऋतु सहार मे शरत्काल मे और शिशिर ऋतु मे इन पक्षियो का वर्णन किया है । राजशेखर ने भी शरत्काल मे इन पक्षियो का वर्णन किया है ।[6]

२८. वकुल (बकुल)

सुन्दरियो की मुख-मदिरा से सिंचकर वकुल-पुष्प कुसुमित हो जाता है ।[7] वकुल का हिन्दी नाम मौलसिरी है । अपने विशाल आकार, घनी छाया और आमोदमय पुष्पो के कारण यह वृक्ष साधारण जनता और कवि दोनो का परम प्रिय है । राजशेखर-कृत काव्य मीमासा मे ऊपर की कवि प्रसिद्ध का उल्लेख नही है, पर इस ग्रन्थ से बकुल के इस गुण का समर्थन होता है । कालिदास के मेघदूत[8] और रघुवश[9] आदि ग्रथो से इस वृक्ष के इस गुण का समर्थन होता है ।

रामायण मे वसन्त ऋतु मे इसका खिलना वर्णित हैं ।[10] कालिदास ने इस पुष्प का वर्षा और वसन्त दोनों ऋतुओ मे वर्णन किया है ।[11] जयदेव के गीतगोविन्द मे वसन्त-वर्णन मे इस पुष्प की चर्चा है ।[12] असल मे यह वसन्त के अन्त मे खिलने लगता है और शरत्काल तक खिलता रहता है । राजशेखर ने इसके वसन्त-विकास का वर्णन किया है ।[13] शरत्काल मे इसके फूल वड़े मादक-गन्धी हो जाते है । इसीलिए निघण्टुकारो ने इसका एक नाम 'शीधुगन्ध' रखा है । वकुल का ही नाम केशर भी है । पौराणिक कथा के अनुसार काम के धनुप का ही यह पार्थिव रूप है ।[14]

---

१. रामायण ४-१-७८ । २. ऋतुसहार । ३ गीतागोविन्द, प्रथम मर्ग । ४ काव्य मीमासा १८ अध्याय । ५ देखिये शीर्पक ७ (१) । ६. काव्यमीमाँसा १४, अलकारशेखर १५ इत्यादि । ७. काव्यमीमासा १४ । ८. ऋतुमहार ३-१५ । ६. विद्धशालभजिका २-१९ । १०. कालिदासेर पाखी, पृ० १० । ११. मेघदूत । १२. सुश्रुत सूत्र० ४६-१०५ टीका । १३. काव्य मीमासा १४, साहित्य दर्पण ७-२३, अलकार शेखर-मरीचि १५ । १४. बृहत्सहिता ५६-४-५ ।

शेफालिका के पुष्प कवि-समय के अनुसार केवल रात में झड़ते है ।[१] शेफाली या शेफालिका नाम के दो वृक्ष वैद्यकशास्त्र मे प्रसिद्ध है, एक निर्गुण्डी और दूसरा हरसिंगार[२] । पुष्पो के प्रसग मे कविगण दूसरे का ही वर्णन करते है । निर्गुण्डी को वैद्यो ने पुष्पवर्ग मे नही माना है । शेफाली सारे भारतवर्ष मे पाई जाती है । कोकण मे यह वर्षा मे खिलती है और अन्यान्य प्रदेशो मे वर्षा के अन्त मे खिलने लगती है और सारे शरत्काल तक खिलती रहती है ।[3] इसके पुष्प श्वेत रग के बडे ही कोमल होते है । पुष्पनाल ईषत् पिंगलाभ लाल रग के होते है । रात को ही शेफाली विकसित होकर वनभूमि को सुरभिसिक्त कर देती है । उष काल होते ही इसके पुष्प झडने लगते है और सूर्योदय होते-होते वनभूमि श्वेत पुष्पो से आवृत हो जाती है । सूर्योदय के बाद तक भी पुष्प झडते रहते है, पर कविजन इसका वर्णन सूर्योदय के पहले ही करते है ।[४] कालिदास ने शरद्-ऋतु मे इस पुष्प का वर्णन किया है ।[५] राजशेखर ने अपनी विद्धशाल भजिका मे चन्द्र के बिना शेफाली के न खिलने का उल्लेख किया है । राजशेखर ने अन्यत्र शरद्-ऋतु मे इस पुष्प का विकसित होना लक्ष्य किया है । उनकी काव्यमीमासा मे उदाहृत एक चन्द्रोदय-वर्णनपरक श्लोक से मालूम होता है कि उस समय शेफालिका के पुष्प झड चुके होते है ।

२९. सहकार (आम)

कहते है, सुन्दरियों की मुँह की हवा पाकर सहकार-तरु या आम का वृक्ष कुसुमित हो जाता है ।[६] आम स्वनामधन्य वृक्ष है । अपने पल्लव, पुष्प और फल के रूप मे किसी अन्य वृक्ष ने सहृदयो और कलाकारो को उसका आधा भी प्रभावित नही किया जितना इस वृक्ष ने । कवियो ने सहकार-लता का भी वर्णन किया है । आम की एक लता होती भी है । सुना है, लता-रूप मे आम नई उपज है, पर कालिदास ने सहकार-लता का वर्णन किया है ।[७] वह क्या कोरी कवि-कल्पना है ? शायद उसी युग मे लताएँ होने लगी थी । कवि ने ठीक ही कहा है कि उपवन मे तो वैसे कितने ही पुष्प खिले है, पर पुष्पकेतु के विश्व-विजय मे अकेला सहकार ही सहकारी है ।

३०. समानार्थक

निम्नलिखित बाते भिन्नार्थक होते हुए भी एकार्थक की तरह प्रयुक्त की जाती है ।[८] (१) चन्द्रमा में शश और हरिण की एकार्थता प्रसिद्ध है, (२) काम की ध्वजा के प्रसग मे मत्स्य और मकर समानार्थक मान लिये जाते हैं, (३) अत्रिनेत्र और समुद्रोत्पन्न चन्द्रमा एकार्थक मान लिये जाते है, (४) नारायण और माधव एक ही देवता है, (५) दामोदर, शेष, कूर्म आदि एकार्थक अवतार मान लिये गये है;

१. रामायण ४-१३-६-६४। २. ऋतु-सहार ३ । ३. काव्य-मीमासा १८, शरद्वर्णन। ४ मेघदूत १-१७ और कुमारसम्भव ३-२६ पर मल्लिनाथ की टीका । ५ मेघदूत २-१७ । ६. मेघदूत २-१७ पर मल्लिनाथ की टीका ७ । . रघुवश ८ । ८. काव्यमीमासा ।

(६) लक्ष्मी के अर्थ मे कमला और सम्पद् शब्द की एकता स्वीकार कर ली गई है, (७) द्वादश आदित्य एक ही माने जाते है, (८) स्वर्ण, पराग और अग्नि के प्रसग मे पीत और लोहित की एकता मान ली गई है ।[1]

३१. संकीर्ण कवि-प्रसिद्धियॉ

(१) पर्वत मात्र मे सुवर्ण, रत्न आदि का वर्णन, अन्धकार का मुष्टि-ग्राह्य और सूची-भेद्य होना, ज्योत्स्ना का घडे मे भरा जाना, कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष मे ज्योत्स्ना और अन्धकार की समानता होते हुए भी पहले को तमोमय और दूसरे को चन्द्रिकामय वर्णन करना, शिव और चन्द्रमा का बहुकाल से जन्म होते हुए भी उन्हे वालरूप मे वर्णन करना; समुदो की सख्या चार और सात दोनो वर्णन करना,[2] भुवनो की सख्या तीन, सात और चौदह कहकर वर्णन करना,[3] विद्याएँ अठारह भी है, चार भी है और चौदह भी, यह स्वीकार करना[4] और मकर का वर्णन केवल समुद्र मे करना ।

(२) आकाश मे मालिन्य का वर्णन करना, काम-बाणो की तरह स्त्री के कटाक्ष से युवकजन का हृदय फटना ।

(३) सर्वत्र जल मे शैवाल का वर्णन करना, स्त्रियो के वर्णन मे रोमावली और त्रिवली का वर्णन करना फिर वे चाहे हो या न हो, स्त्रियो को साधारणत: श्याम वर्ण न करना और उनके स्तनपान का सामान्यतया उल्लेख न करना, देवताओ के प्रसग मे पहले देवता और तब देवी का वर्णन, पर मनुष्यो के प्रसग मे पहले नायिका तब नायक का वर्णन; मनुष्यो का सिर से और देवताओ का पैर से आरम्भ करना, स्थलचारी जीवो का जल मे भी वर्णन करना, रण मे मरे हुए पुरुष का सूर्य-मण्डल को भेद करते हुए जाते वर्णन करना, लोको को सृष्ट्यादि मे महत् रूप और सृष्ट्यान्त मे सूक्ष्मरूप वर्णन करना; शब्द से पहाड का फटना, आकाश का सौ धनु ऊपर वर्णन करना, उपाधि और नाम की एकता, जैसे शकर और वृषवाहन, चिह्न, वाहन और ध्वज को एक ही वस्तु न मानना, शिव को शूली (शूलवाला) तो कहना पर सर्पी (सर्पवाला) न कहना, चन्द्रमा को शशी (शशवाला) कहना; पर हरिणी

---

१ अलकार शेखर १५ । २ शब्दकल्पद्रुम तृतीय खण्ड ५२० पृष्ठ पर उद्धृत वह्निपुराण का वचन । ३ तीन भुवन ये है—भू, भुव, स्व । सात भुवन (लोक) इस प्रकार है—भू, भुव, स्व, मह, जन, तप, सत्य, इन्ही मे सप्तद्वीप अर्थात् जम्बू, शाक, कुश, क्रौंच, शाल्मक, भेद, पुष्कर का योग करने से भुवन चौदह होते है—अग्निपुराण, गणमानाध्याय । ४. प्रायश्चित्त तत्वो मे विष्णुपुराण से ये श्लोक उद्धृत हैं जिनसे विद्या की चौदह और अठारह सख्याएँ प्रकट होती हैं —

अगानि वेदाश्चत्वारो मीमासान्यायविस्तर ।
धर्मशास्त्र पुराण च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ॥
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रय ।
अर्थशास्त्र चतुर्थश्च विद्या ह्यष्टादशव ता ॥

(हरिणवाला) न कहना, महादेव को इन्दुमौलि (जिसके सिर पर चन्द्रमा है) तो कहना पर गगामौलि (जिसके सिर पर गगा है) कभी न कहना; र और ल, ड और ल, ब और व, श और स का भेद न मानना; चित्र-काव्य मे अनुस्वार-विसर्ग की गणना न करना, इव, वत, वा, हि, ही, ह, स्म, बत, वै, नु, किल, एव और च इन अव्ययो को पद के आदि मे व्यवहृत न करना, भूत, इन्द्र, भारत और ईश इन शब्दों के पूर्व में महत् शब्द को निरर्थक ही प्रयोग करना (अर्थात् महेन्द्र और इन्द्र, महाभारत और भारत इत्यादि मे कोई अर्थ-भेद नही होता) और ब्राह्मण, वृष्टि, भोज्य, औषध, पथ्य आदि के पूर्ववर्ती महत् शब्द का दुष्ट अर्थ मे प्रयोग करना।

●●●

: ८ :

स्त्री-रूप

स्त्री का रूप—स्त्री के रूप के सम्बन्ध मे अधिकाश रूढियाँ सामुद्रिक लक्षणो, देवियो के रूप तथा काम-शास्त्रीय विश्वासों आदि से गृहीत हुई है। समग्र स्त्री-शरीर की उपमा चन्द्रकला, कमल-रज्जु, शिरीषमाला, विद्युल्लता, तारा, सोने की लता या सोने की छडी, दमनक-यष्टि और दीप-शिखा आदि से दी जाती है।[1] लक्ष्य करने की बात है कि कविगण स्त्री-शरीर का वर्णन साधारणत श्यामल रूप मे नही करते[2] बल्कि श्वेत या गौर रूप मे करते है। वस्तुत श्वेत और गौर भी कवियो के लिए एकार्थक शब्द है।[3] गोवर्धन के मत से स्त्री-शरीर मे निम्नलिखित कई गुण होने चाहिए . सौन्दर्य, मृदुता, कृशता, अतिकोमलता, कान्ति-उज्ज्वलता और आबल्य या सुकुमारता।[4] स्त्री-शरीर के उपमेय इन गुणो को ध्यान मे रखकर ही ढूँढे गये थे। इन गुणो का नाना देवियो के रूप से सगृहीत होना अनुमान का विषय है। लक्ष्मी और गौरी के ध्यान मे स्वर्ण-प्रभा, अन्नपूर्णा और सरस्वती के ध्यान मे सौकुमार्य या आवल्य, तुलसी के ध्यान मे अग का यष्टित्व और आवल्य, सावित्री और सरस्वती के ध्यान मे औज्ज्वल्य तथा राधिका और सरस्वती के ध्यान मे कान्ति का उल्लेख पाया जाता है।[5] इन देवियो के रूप मे सौन्दर्य को प्रधान उपादान माना गया है। समस्त

१. अलकारशेखर १३-१। २-३. कवि-प्रसिद्धियाँ देखिये। ४. अलकार-शेखर मे उद्धृत।

५. लक्ष्मी का ध्यान—

कान्त्या काञ्च नसन्निभा हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजै-
र्हस्तोत्क्षिप्तहिरण्मयामृतघटैरासिच्यमाना श्रियम्।
बिभ्राणा वरमब्जयुग्ममभय हस्तै किरीटोज्ज्वलाम्
क्षौमाबद्धनितम्बभागललिता वन्देऽरविन्दस्मिताम्॥—पुरोहितदर्पण, पृ० १६६
नवयौवनसम्पन्ना तप्तकाञ्चनसन्निभाम्।
त्रिनेत्रा द्विभुजा रम्या दिव्यकुण्डलधारिणीम्॥—प्रणतोषिणी, पृ० ५५८

गौरी का ध्यान—

हेमाभा बिभ्रती दोर्भिर्दर्पणाञ्जनसाधने।
पाशाकुशौ सर्वभूषा ता गौरी सर्वदा भजे॥—पुरोहितदर्पण, पृ० ३३२

सरस्वती का ध्यान—

तरुण शकलमिन्दोर्विभ्रती शुभ्रकान्ति
कुचभरनमिताङ्गी सन्निषण्णा सिताब्जे।
निजकरकमलोद्यल्लेखनी पुस्तकश्री
सकलविभवसिद्ध्यै पातु वाग्देवता न.॥—पुरोहितदर्पण, पृ० २२७

देवियो को वस्त्रालकार से युक्त माना गया है और इस प्रकार आभरणो को भारतीय काव्य मे स्त्री-रूप का एक आवश्यक अग मान लिया है। इसीलिए दमनक-यष्टि और सपुष्पा लता के साथ ही स्त्री-शरीर की तुलना करना रूढ हो गया है। काम-शास्त्र मे चार प्रकार की स्त्रियाँ मानी गई हैं, पद्मिनी, चित्रिणी, शखिनी और हस्तिनी। इनमे प्रथम दो श्रेष्ठ है और इसीलिए सौन्दर्य का आदर्श उनके लक्षणों से भी ग्रहण किया गया है। उक्त गुण इन दो जातियो की स्त्रियो मे भी पाये जाते है।[1]

दूसरी लक्ष्य करने की बात यह है कि काव्य मे, यदि विशेष कोई कारण न हो तो स्त्री को या तो सत्त्वगुण-प्रधान वर्णन करते हैं या रजोगुण-प्रधान (विलासिनी)। इसीलिए तम प्रधान कृष्णवर्ण के साथ कोई उपमा नही दी जाती। स्त्री-शरीर के रग के लिए साधारणत रोचना, स्वर्ण, विद्युत्, हरिद्रा (हल्दी), वराटक (कौडी), चम्पा,

तुलसी का ध्यान—

ध्यायेद्देवी नवशशिमुखी पक्वबिम्बाधरोष्ठी
विद्योतन्ती कुचयुगभरान्नम्रकलपाङ्गयष्टिम्।
ईषद्धास्योल्लसितवदना चद्रसूर्याग्निनेत्रा
श्वेतागी तामभयवरदा श्वेतपद्मासनस्थाम्॥—प्राणतोषिणी, पृ० ७१३

अन्नपूर्णा का ध्यान—

रक्ता विचित्रवसना नवचन्द्रचूडामन्नप्रदाननिरता स्तनभारनम्राम्।
नृत्यन्तमिन्दुशकलाभरण विलोक्य हृष्टा भजे भगवती भवदु खहन्त्रीम्॥

सावित्री का ध्यान—

सावित्री द्विभुजा पद्मासनस्था हसवाहनाम्,
शुद्धस्फटिककाशा दिव्याभरणभूषिताम्।
पक्वबिम्बाधरोष्ठी च पूर्णचन्द्रनिभाननाम्,
ललाटतिलकोपेता मध्यक्षीणामह भजे।

राधिका का ध्यान—

अमलकमलकाति नीलवस्त्रा सुकेशा,
शशधरसमवक्त्रा खञ्जनाक्षी मनोज्ञाम्॥
स्तनयुगगतमुक्तादामदीप्ता किशोरीम्।
व्रजपतिसुतकाता राधिकामाश्रयेऽहम्॥—पुरोहितदर्पण

१. पद्मिनी का लक्षण—

भवति कमलनेत्रा नासिकाक्षुद्ररध्रा
अविरलकुचयुग्मा दीर्घकेशी कृशागी
मृदुवचनसुशीला नृत्यगीतानुरक्ता
सकलतनुसुवेशा पद्मिनी पद्मगधा॥

चित्रिणी का लक्षण—

भवति रतिरसज्ञा नातिदीर्घा न खर्वा
तिलकुसुमसुनासा स्निग्धदेहोत्पलाक्षी।
कठिनघनकुचाढ्या सुन्दरी सा सुशीला
सकलगुणाविचित्रा चित्रिणी चित्ररक्ता।—रतिरहस्य

केतकपुष्प (केवडा) आदि की उपमा देते है। ये उपमान ही स्त्री-शरीर के रंग के लिए रूढ हो गये हैं। अ० शे० १३-२।

मुखमण्डल, केश आदि—स्त्री-शरीर के वर्णन में सबसे अधिक ध्यान मुख-मण्डल के ऊपर दिया गया है। सारे मुख की चन्द्रमा, कमल या दर्पण के साथ उपमा देना कवियो मे रूढ हो गया है। साधारणत केश, ललाट, कपोल, मुख, नासिका, नेत्र, अधर, ओष्ठ, दाँत, वाणी और कण्ठ : ये ही मुखमण्डल के वर्णनीय अवयव है।

गोवर्धन के मत से केशो मे दीर्घता, कुटिलता, मृदुता, निविडता और नीलिमा आदि गुण वर्णन किये जाने चाहिए।[1] सामुद्रिक लक्षणो मे केशो का स्निग्ध, नील, मृदु और कुंचित होना सुखकर बताया गया है[2] और इनके विपरीत गुण असौभाग्यलक्षण माने गये है। दैवज्ञ कामधेनु के मत से सूक्ष्म और नील रोम सौभाग्य के लक्षण है।[3] इन गुणों को बताने के लिए कवियो मे साधारणतः निम्नलिखित उपमाएँ रूढ है : अन्धकार, शैवाल, मेघ, बर्ह (मयूरपुच्छ), भ्रमरश्रेणी, चामर, यमुना-तरग, नीलमणि, नीलकमल, आकाश, धूप का धुआँ इत्यादि।[4] केश की वेणी के लिए साधारणत सर्प, तलवार, भ्रमरपंक्ति और धम्मिल्ल या जूडे के लिए राहु की उपमाएँ प्रसिद्ध है। केश के बीचो-बीच की माँग के लिए रास्ता, दण्ड, गगा की धारा आदि उपमाएँ दी जाती है।[5]

ललाट की उपमा के लिए अष्टमी का चाँद या स्वर्ण-पट्टिका प्रसिद्ध उपमाएँ है।[6] सामुद्रिक लक्षणो मे ललाट का समतल होना अर्थात् न बहुत ऊँचा और न बहुत नीचा होना सौभाग्य का लक्षण माना जाता है।[7] कपोलो मे गोवर्धन के मत से वर्ण-नीय गुण स्वच्छता[8] है। इस गुण के लिए कवि ने इसका उपमान चन्द्रमा और दर्पण को चुना है।[9]

नेत्रो का वर्णन कवियो ने अनेक प्रकार से किया है। स्निग्धता विशालता, लोलता, कटाक्षो की दीर्घता, नीलता, प्रान्त भाग की लालिमा, श्वेतता, बरौनियो की निविडता : ये आँखो के गुण हैं।[10] वराह ने उन आँखो को प्रशस्त कहा है जो नील-कमल की द्युति हरण करने वाली हो।[11] इन गुणो का सादृश्य दिखाने के लिए कवियो ने निम्नलिखित उपमेयो का वर्णन भूरिश किया है : मृग, मृग-नेत्र, कमल, कमल-पत्र, मत्स्य, खजन, चकोर,--इन तीनो की आँखे केतक, भ्रमर, कामवाण आदि।[12] ध्यान देने की बात यह हैं कि सभी उपमाएँ नेत्रो के आकार के ऊपर आधारित नही है। कुछ मे उनके आकार, कुछ मे गुण और कुछ मे उनकी क्रियाएँ द्योतित है। गुण ऊपर बताये गये हैं : क्रिया, कटाक्षपात या अपाग-दर्शन और सम्मोहनकारिता है। इसीलिए कटाक्ष की उपमा विषामृत, बाण और मदिरा से दी जाती है।[13] इसके सिवा कटाक्ष की उपमा यमुना की तरगो और भृगावलियो से दी गई है।[14] नेत्रो के रग के प्रसग मे कवियो

१ गोवर्धन (अ० शे० उद्धृत। २ बृहत्संहिता ७०-९। ३ दैवज्ञकामधेनु १६-३१। ४ अलंकारशेखर १३-३। ५ कविकल्पलता। ६ अलकारशेखर १३-३, १४-४। ७ बृहत्संहिता ७०-८। ८. अ० शे० से उद्धृत। ९ अलकारशेखर १३-४। १०. गोवर्धन। ११. बृहत्संहिता ७०-७। १२ अ० शे० १३-६। १३ अ० शे०, पृ० ४७। १४. अ० शे० १३-१५।

ने श्वेत, रक्त और कृष्ण इन तीन रगो में से एक, दो या तीनो का यथारुचि और यथा-समय वर्णन किया है।[१] श्वेत-वर्णन के कारण कभी-कभी कुन्द-पुष्पो से भी इनकी उपमा दी गई है। वीक्षण या देखने की क्रिया के सम्बन्ध मे कमल के पुष्पो की वर्षा या उनका उद्गमन आदि भी उपमित हुए है।[२] नेत्रो के आकार के लिए मत्स्य, कमल, कमलदल, मृग-नेत्र, खजन आदि उपमान है। प्राचीन चित्रो और मूर्तियो में इन वस्तुओं के सादृश्यरक्षी नेत्र बहुत पाये जाते है। मत्स्य की उपमा केवल सादृश्य मे ही नही बल्कि सजलता के लिए भी व्यवहृत हुई है। सूरदास ने सजल नयनो की उपमा के लिए मत्स्यो मे ही थोडी-सी योग्यता देखी थी।

दोनो भ्रुवों का टेढा होना, न बहुत मोटा और न बहुत मिला हुआ होना, सौभाग्य का लक्षण माना गया है।[३] इसलिए उनकी उपमा वल्ली, धनुष विशेषकर काम-धनुष, तरग, भृंगावली और पल्लवो से दी जाती है।[४] कभी-कभी सर्प और भ्रुवों के उपमान कहे गये है।[५]

नासा के दोनो पुट समान होने चाहिए।[६] इसके लिए तिल के फूल की उपमा देते है।[७] श्रीहर्ष ने सुझाया है कि इसका वर्णन काम के तरकश के रूप मे भी किया जाना चाहिए।[८] इसके सिवा सुग्गे की चोंच से भी इसकी उपमा देने की रीति[९] है। अलकारशेखर मे अन्यत्र (पृ० ४८)पाटली पुष्प को भी नासिका का उपमान माना गया है। नि श्वास का सुगन्धित वर्णन करना भी कवियो मे रूढ है।

गोवर्धन ने अधरो के लिए अत्यन्त माधुर्य, उच्छूनता (स्फीति) और लालिमा ये तीन गुण वर्णनीय बताये है[१०]। वराहमिहिर ने बन्धुजीव के समान लाल और अमासल (पतले) अधर को प्रशस्त बताया है।[११] इन गुणो को ध्यान मे रखकर अधरो के लिए प्रबाल (मूँगे), बिंबाफल, बन्धूकपुष्प, पल्लव तथा मीठे पदार्थों से उपमा देने की प्रथा है।[१२] मुख के भीतरी अवयवो मे दाँतो मे श्वेतता, अधोभाग की लालिमा और अत्यन्त दीप्ति वर्णनीय गुण माने गये है।[१३] इसके सिवा दाँतो का बत्तीस होना भी सौभाग्य का लक्षण माना जाता है। इन गुणो के लिए मुक्ता, माणिक्य, नारगी, दाडिम, कुन्दकली और ताराओ से उपमा देते है।[१४] सामुद्रिक लक्षणो के अनुसार कुन्दकली के समान दाँत स्त्रियो को पति-सुख के दाता माने गये है।[१५] दातों का सम्बन्ध हँसी से है। शायद इसीलिए हास्य में भी इन गुणो का होना आवश्यक समझा गया है। इसके लिए ज्योत्स्ना, चन्द्रमा, फूल, अमृत के फेन और कैरव की उपमाएँ प्रसिद्ध हैं। जीभ की उपमा अञ्चल, दोला आदि से देते है।[१६] जीभ की अपेक्षा वाणी का वर्णन करना ही कवियों मे अधिक प्रसिद्ध है। गोवर्धन

---

१. कवि-प्रसिद्धियाँ देखिए। २. अ० शे० पृ० ४८। ३. बृ० स० ७०-८। ४. अलकारशेखर १३-४। ५. वही पृ० ४८। ६. बृ० स० ७०-७, गरुडपुराण ६४ अध्याय। ७. अ० शे० १३-५। ८. क० शे० टीका कामतूणीकृत्य नासा वर्ण्यते इति श्रीहर्ष। ९. अ० शे० पृ० ४८। १०. गोवर्धन। ११ बृ० स० ७०-६। १२ अ० शे० १३-७। १३. गोवर्धन। १४. अलकारशेखर १३-८। १५, बृ० स० ७०-६। १६ अलकारशेखर १३-१५।

ने वाणी मे दो गुण वर्णनीय बताये हैं — माधुर्य और स्पष्टता (अ० शे०, पृ० ४९)। इसके लिए उपमान हैं—हंसावली, शुक, किन्नर, वेणु, वीणा, कोकिल और मीठी चीजे।[1] कण्ठ के लिए गोवर्धन ने दीर्घता और त्रिरेखता ये दो गुण बताये है (अ० शे०, पृ० ४९)। इसका उपमान कम्बु (शंख) और कपोत है। ग्रीवा और कण्ठ के उपमान एक ही है। वराह ने कम्बु के समान ग्रीवा को सुख का कारण माना है। वराह ने कोकिल और हंस के समान वाणी को अनल्प सुख का कारण कहा है (७०-७) और ग्रीवा के लिए भी 'ग्रीवा च कंबुनिचितार्थ-सुखानि धत्ते'[2] (७०-७) कहा है।

यह आश्चर्य की बात है कि कवि लोग जहाँ मुखमण्डल पर तिल का भी वर्णन करना नही छोडते वहाँ वे कान को एकदम भूल गये है। कान का वर्णन कवियो ने जहाँ किया है वहाँ स्वतन्त्र बुद्धि से, रूढि के पालनार्थ नही।

कण्ठ और कटि का मध्यवर्ती भाग – इस प्रदेश के निम्नलिखित अग विशेष रूप से वर्णनीय समझे गये है —बाहु, हाथ, अगुलियाँ, नख, वक्षस्थल, नाभि, त्रिवली, रोमाली, पृष्ठ और कटि। उदर का कोई स्वतन्त्र वर्णन नही मिलता, जहाँ मिलता है वहाँ कटि या मध्य भाग के अर्थ मे उसका प्रयोग रूढ हो गया है। गोवर्धन के मत से भुज मे मृदुता और ममता, हाथ मे मृदुता, शीतलता और ललाई; स्तनो मे अग्रभाग की श्यामता और नाभिगामिता, ये वर्णनीय गुण है। इन गुणो के अनुरूप कवियो में इन अगो के लिए कई उपमान परम्परा से प्रचलित हैं। भुजाओ के लिए विस (कमल) लता, मृणाल-नाल और विद्युद्वल्ली, तथा हाथो के लिए पद्म, पल्लव और विद्रुम की उपमाएँ प्रसिद्ध है। सामुद्रिक लक्षणो मे हाथ की अँगुलियो की कृशता को सौभाग्य का लक्षण बताया गया है।[3] इसलिए इनकी उपमा कभी-कभी मूँगो की टहनियो से दी है।[4] हथेली का न बहुत ऊँचा और न बहुत नीचा होना अखण्ड सौभाग्य का कारण है।[5] नखो के लिए कभी चन्द्रकला, कभी कुन्द की कली और कभी-कभी (जैसा कि कविकल्पलताकार ने सग्रह किया है) पल्लव भी उपमान के रूप मे प्रयुक्त हुए हैं।[6] वराह ने इन अगो मे इन गुणो का होना अखण्ड सौभाग्य का लक्षण माना है।

स्त्री का वक्षोदेश प्राचीन और मध्ययुग के कवियो का एक विशेष रुचिकर अग रहा है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, इस अग का औन्नत्य, श्यामाग्रता, विस्तृति, दृढता, पाण्डुता आदि गुण काव्य-शास्त्रियो के वर्णनीय माने गये है। वराह ने भी वर्तुलाकृत, घन, अविषम और कठिन उरस्यो को प्रशस्त कहा है (बृ० स० ७०-६,। इन गुणो के लिए कवियो मे ये उपमान रूढ हैं, पुगीफल (सुपारी), कमल, कमलकोरक, विल्व (बेल), ताल, गुच्छ, हाथी का कुम्भ, पहाड, घडा, शिव, चक्रवाक, सौवीर, जम्बीर, बीजपूर, समुद्र, छोलग आदि।[7] सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार स्त्रियो की दक्षिणावर्त नाभि प्रशस्त मानी गई है। इस गुण को अभिव्यक्त करने के लिए कवियो मे निम्नलिखित उपमान प्रसिद्ध है, रसातल, आवर्त, ह्रद,

---

१—२ अलकारशेखर १३-८। ३ अलकारशेखर १३-९ और बृहत्सहिता स्त्रीलक्षणाध्याय।
४. कविकल्पलता। ५ बृहत् सहिता ७० अध्याय। ६.—७. अलकारशेखर पृ० ४९।

कूप, नद आदि।[१] कभी-कभी रक्तपुष्प और विवर या पुष्करिणी के कमल के साथ भी उसकी उपमा दी गई है।[२] नाभि के ऊपर से जो हल्की रोमराजि ऊपर उठी होती है वह भी कवियो का बहुत प्रिय विषय रहा है। गोवर्धन ने उसमे मृदुता, श्यामता, सूक्ष्मता और नाभिगामिता : इन गुणो को वर्णनीय कहा है। नाभि के निचले भाग को वलि कहते है। तीन वलियो का होना सौभाग्य का लक्षण माना गया है।[3] इसीलिए इसकी उपमा के लिए नदी, उसकी तरगें, सोपान, नि श्रेणी आदि उपमाएँ कवियो मे प्रसिद्ध हैं। पीठ का वर्णन प्राय कवियो मे प्रसिद्ध नही है, साधारणत स्त्री के अग्रभाग के सौन्दर्य का वर्णन ही प्रसिद्ध है, पर अवस्थाविशेष मे (जैसे मान के समय मुँह फिराकर बैठी हुई अवस्था मे) पीठ की उपमा कञ्चन-पट्टिका से दी जाती है, कटि का क्षीण वर्णन ही प्रशस्त माना गया है, इसकी पराकाष्ठा दिखाने के लिए कभी-कभी कविगण उसका वर्णन शून्य-रूप मे करते है। साधारणत. निम्नलिखित उपमाएँ कटि के लिए प्रसिद्ध है। सुई की नोक, शून्य, अणु, वेदी, सिंह की कटि और मुष्टिग्राह्यता।[४]

कटि का अधोभाग—इस प्रदेश मे जघन, नितव, उरु, चरण, अँगूठा, नख, नूपुर-ध्वनि, गमन आदि वर्णनीय विषय है। गोवर्धन ने जघा मे कान्ति, वृत्तानुपूर्वता, नातिदीर्घता, अत्यन्त मन्दता और शीतलता ये वर्णनीय गुण बताये हैं। वराह ने कहा है कि जिस कुमारी के चरण स्निग्ध, उन्नत, आगे को पतले और लाल नाखून वाले हो, सम, उपचित, सुन्दर और गुप्त गुल्फ-समन्वित हो; उँगलियाँ सटी हुई तथा चरणतल कमल की कान्ति वाला हो, उसके साथ विवाह करने वाले पुरुष को राज्य-प्राप्ति होती है। फिर भी जिस कन्या की जाँघे रोमरहित और शिराहीन हो; दोनो जानु सम हो, घुटनो की सधियाँ ऊवड-खावड न हो; उरुदेश घन और हाथी के सूँड के समान हो, गुह्य देश विपुल और अश्वत्थ-पत्र के समान हो, श्रोणी, ललाट और उरु कछुए की पीठ की भाँति बीच मे ऊँचे और दोनो ओर ढालू हो, मणिबध गूढ तथा नितव विस्तीर्ण और मासल हों, तो कन्या श्रीयुक्त होती है।[५] इन गुणो का लक्ष्य करके कवि जघन की उपमा पुलिन से, नितव की उपमा पीढा, प्रस्तर, पृथ्वी, पहाड, चक्र आदि से ; उसकी उपमा हाथी की सूँड, कदली-स्तम्भ और करभ से, चरणो की उपमा पल्लव, कमल, स्थल-पद्म और प्रबाल से और अँगूठे के नख की उपमा प्रबाल से देते हैं। गति का सम्बन्ध इन्ही अगो से है, अत इनके ऐसा रहते गति का मन्द होना स्वाभाविक है। अतएव इसकी उपमा भी हाथी और हस के गमन से दी गई है। नूपुर-ध्वनि की उपमा सारस, हस आदि के शब्दो के साथ देना प्रसिद्ध है।[६]

इस प्रकार कवियो मे स्त्रीरूप का वर्णन प्रसिद्ध है। स्त्रीरूप के सम्बन्ध मे सामुद्रिक लक्षणों के लिए गरुड पुराण ६४ अध्याय द्रष्टव्य है।

---

१. अलकारशेखर १३, १०-११, बृहत्सहिता १०-४। २. कवि कल्पलता १३।
३. बृहत्सहिता १०। ४ अलकारशेखर १३, ११-१२। ५. बृहत्सहिता ७०-१-३। ३६ अलकारशेखर १३-१३-१४।

अनुक्रमणिका

[जिनके आगे (आ०) छपा हुआ है उनकी चर्चा आगे आने वाले पृष्ठों में भी है और जिनके आगे (टि०) छपा हुआ है वे टिप्पणी मे आये हैं।]

फ

ब

ह

निर्गुणियों पर भी वे उसी तरह झुँझलाये हुए थे, पर यह पथ भी श्रुति-सम्मत था, इसलिए इसके विरुद्ध बोलने मे भी उनका मुँह बन्द था और इसलिए वे इसे मानकर भी नही मानना चाहते थे। प्रसंग आते ही वे राम के सगुण रूप पर जोर देते है। कथा मे कही किसी भक्त से भगवान् की भेंट हो गई तो चट उसने वरदान में माँगा कि हे राम, तुम्हारा वह सगुण रूप ही मेरे मन मे बसे, निर्गुण नही। इसी तरह उच्च वर्ण के होने के कारण स्वभावत. ही उस युग के तथाकथित 'वर्णधर्मों' की बढ-बढ़कर की हुई बाते उन्हें बुरी लगती थी, पर कथा-प्रसग मे सर्वत्र उनकी महिमा गाई है। हाँ, अवश्य ही इस बात के लिए उनमें भक्ति का होना आवश्यक माना गया है। इस समस्या का उन्होने यही समन्वय किया है कि अगर छोटी जाति का आदमी भक्त हो तो वह मुहूर्त-भर मे ऊँची जाति के भक्तो से ऊपर उठ जाता है, 'भरत-सम-भाई' हो जाता है। उनके राम अधम-उधारन हैं जो हठपूर्वक अधमों का उद्धार करते है। यह ध्यान देने की बात है कि तुलसीदास ने रूप की अपेक्षा नाम को श्रेष्ठ बताया है, यहाँ तक कि 'ब्रह्म-राम ते नाम बड' है। अर्थात् निर्गुण भाव से भजन किया गया हो, या सगुण भाव से, नाम की महिमा मे कोई सन्देह नही। इस सिद्धान्त के द्वारा उन्होंने सहज ही अपने विरुद्ध-वादियो को भी अपनी श्रेणी मे ले लिया है।

समन्वय का मतलब है कुछ झुकना, कुछ दूसरो को झुकने के लिए बाध्य करना। तुलसीदास को ऐसा करना पड़ा है। यह करने के लिए जिस असामान्य दक्षता की ज़रूरत थी वह उनमे थी। फिर भी झुकना झुकना ही है। यही कारण है कि रामचरितमानस के कथा-काव्य की दृष्टि से अनुपमेय होने पर भी उसके प्रवाह मे बाधा पड़ी है। अगर वह विशुद्ध कविता की दृष्टि से लिखा जाता तो कुछ और ही हुआ होता। यहाँ दार्शनिक मत की विवेचना है तो वहाँ भक्ति-तत्त्व की व्याख्या। फिर भी अपनी असामान्य दक्षता के कारण तुलसीदास ने इस बाधा को यथा-सभव कम किया है। अपने प्रयत्न मे वे इतने अधिक सफल हुए हैं कि भावुक समालोचक को उसमे कोई दोष ही नही दिखाई देता। कथा का झुकाव इतनी मार्मिकता के साथ पहचाना गया है कि यह बात आदमी प्राय भूल जाता है कि रामचरितमानस का लक्ष्य केवल कथा ही नही, और कुछ भी है। शुष्क तत्त्वज्ञान तुलसीदास को कभी प्रिय नही हुआ, जब कभी उसकी चर्चा वे करते है तो कवि की भाषा मे। उपमाओ और रूपको के प्रयोग से विषय अत्यन्त साफ हो जाता है और जहाँ कविता करने के लिए तुलसीदास कवि की भाषा का प्रयोग करते है, वहाँ वे अद्वितीय नज़र आते है।

चरित्र-चित्रण मे तुलसीदास अतुलनीय है। उनके सभी पात्र हाड-मांस के बने हमारे ही जैसे जीव है। उनमें जो अलौकिकता है वह भी मधुर और समझ में आने लायक है। उनके पात्रो के प्रत्येक आचरण में कोई-न कोई विशेष लक्ष्य होता है। मानव-जीवन के किसी-न-किसी अंग पर उससे प्रकाश पड़ता है, या किसी-न-किसी सामाजिक या वैयक्तिक कुरीति की तीव्र आलोचना व्यक्त होती है या मानव-मानव मे सद्भावना की पुष्टि और इशारा रहता है। लीला के लिए लीला-गान उन्होने कही

नही किया। वे आदर्शवादी और अपने काव्य से भावी समाज की सृष्टि कर रहे थे। वे उस देश मे पैदा हुए थे जहाँ कल्पना की जा सकती है कि राम के जन्म के साठ हजार वर्ष पहले रामायण काव्य लिखा गया, अर्थात् जहाँ कवि भविष्य का द्रष्टा और स्रष्टा समझा जाता है। तुलसीदास ऐसे ही भविष्य-स्रष्टा थे। आज तीन-सौ वर्ष वाद इस विषय मे कोई सदेह नही रह सकता कि उन्होने भावी समाज की सृष्टि सचमुच की थी। आज का उत्तर-भारत तुलसीदास का रचा हुआ है। वही इसके मेरुदण्ड है।

भापा की दृष्टि से भी तुलसीदास की तुलना हिन्दी के किसी अन्य कवि से नही हो सकती। जैसा कि पहले ही वताया गया है, उनकी भाषा मे भी एक समन्वय की चेष्टा है। तुलसीदास की भापा जितनी ही लौकिक है उतनी ही शास्त्रीय। उनमे सस्कृत का मिश्रण वडी चतुरता के साथ किया गया है। जहाँ जैसा विषय होता है, भापा अपने-आप उसके अनुकूल हो जाती है। तुलसीदास के पहले किसी ने इतनी मार्जित भापा का उपयोग नही किया था। काव्योपयोगी भापा लिखने मे तो तुलसीदास कमाल करते हैं। उनकी विनयपत्रिका मे भाषा का जैसा जोरदार प्रवाह है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। जहाँ भापा साधारण और लौकिक होती है वहाँ तुलसीदास की उक्तियाँ तीर की तरह चुभ जाती है और जहाँ शास्त्रीय और गम्भीर होती है वहाँ पाठक का मन चील की तरह मँडराकर प्रतिपाद्य सिद्धान्त को ग्रहण कर उड जाता है।

मानव-प्रकृति का ज्ञान तुलसीदास से अधिक उस युग मे किसी को नही था। पर यह एक आश्चर्य की बात है कि उन्होने विश्व-प्रकृति को अपने काव्य मे कोई स्थान नही दिया। इसमे सन्देह नही कि जहाँ कही उन्होने थोडी-सी चर्चा की है वही उसमे कमाल किया है, पर असल मे वे इससे उदासीन ही रहे। जो भावुक सहृदय पद-पद पर फूल-पत्तियो को देखकर मुग्ध हो जाता है, नदी-पहाड को देखकर तन-मन बिसार देता है, वह तुलसीदास के काव्य का लक्ष्यीभूत श्रोता नही है। तुलसीदास प्रकृत्या भावुकता को पसन्द नही करते थे। एक ही जगह उनकी भावुकता 'पुलक-गात' और 'लोचन-सजल' के रूप मे प्रकट होती है और वह भगवान् के 'करुणायतन' या 'मोहन-मयन' रूप को देखकर। इससे भी अधिक अजीव वात यह है कि उनकी उपमाओ, रूपको और उत्प्रेक्षाओ मे कही-कही काव्यगत रूढियो का बुरी तरह पालन किया गया है। उनके जैसे प्रतिभाशाली कवि के लिए जो इच्छा करते ही नई-नई उपमाओ और उत्प्रेक्षाओ का ठाठ लगा सकता था, जो इस गुण मे अतुलनीय था, यह वात एक अजीव-सी लगती है। शायद इस वात का भी समाधान उनकी समन्वयात्मिका प्रतिभा के द्वारा ही किया जा सकता है जो नवीनता के साथ सदा प्राचीनता का सामजस्य-विधान करती थी।

तुलसीदास कवि थे, भक्त थे, पण्डित सुधारक थे, लोकनायक थे और भविष्य-के स्रष्टा थे। इन रूपो मे उनका कोई भी रूप किसी से घटकर नही था। यही कारण था कि उन्होने सब ओर से समता (Balance) की रक्षा करते हुए एक अद्वितीय

काव्य की सृष्टि की जो अब तक उत्तर भारत का मार्ग-दर्शक रहा है और उस दिन भी रहेगा जिस दिन नवीन भारत का जन्म हो गया होगा।

दादूदयाल

दादू तुलसीदास के समकालीन थे। वे कबीरदास के मार्ग के अनुगामी थे। उनकी उक्तियों में बहुत-कुछ कबीरदास की छाया है, फिर भी वे वही नही थे जो कबीरदास थे। समाज के निचले स्तर से उनका भी आविर्भाव हुआ था, जन्मगत अवहेलना को लेकर इनका भी विकास हुआ था, पर उस युग तक कबीर का प्रवर्तित निर्गुणमतवाद काफी लोक-प्रिय हो गया था। नीच कही जाने वाली जातियो मे उत्पन्न महापुरुषो ने अपनी प्रतिभा और भगवन्निष्ठा के बल पर समाज के विरोध का भाव कम कर दिया था। दादू ने शायद इसलिए परम्परासमागत उच्च-नीच विधान के लिए उत्तरदायी समझी जाने वाली जातियों पर उस तीव्रता के साथ आक्रमण नही किया जिसके साथ कबीर ने किया था। इसके सिवा उनके स्वभाव मे भी कबीर के मस्तानेपन के बदले विनय-मिश्रिता मधुरता अधिक थी। सामाजिक कुरीतियो, धार्मिक रूढ़ियो और साधना-सम्बन्धी मिथ्याचारो पर आघात करते समय दादू कभी उग्र नही होते। अपनी बात कहते समय वे बहुत नम्र और प्रीत दिखाते है। अपने जीवन-काल मे ही वे इतने प्रख्यात हुए थे कि सम्राट् अकबर ने उन्हे सीकरी मे बुलाकर चालीस दिन तक निरन्तर सत्संग किया था, फिर भी दादू के पदो मे अभिमान का भाव बिलकुल नही है। उन्होने बराबर इस बात पर जोर दिया है कि भक्त होने के लिए नम्र, शीलवान्, अफलाकांक्षी और वीर होना चाहिए। कायरता उनके निकट साधन की सबसे बडी शत्रु है। वही साधक हो सकता है जो वीर हो, सिर उतारकर रख सके। कबीर (क-वीर) अपना सिर काटकर (क अक्षर छोडकर) ही बीर हो सके थे। जो साहस के साथ मिथ्याचार का विरोध नही कर सकता वह वीर भी नही, वह वीर साधक भी नही। दादू के इस कथन का बेढगा अर्थ करके बाद के उनके शिष्यो का एक दल (नागा) केवल लडाकू ही रह गया।

कबीर की भाँति दादू ने भी रूपको का कही-कही आश्रय लिया है, पर अधिक नही, अधिकाश में उनकी उक्तियाँ सीधी और सहज ही समझ मे आ जाने लायक होती हैं। इनके पदो मे जहाँ निर्गुण निराकार निरजन को व्यक्तिगत भगवान् के रूप मे उपलब्ध किया गया है वहाँ वे कवित्व के उत्तम उदाहरण हो गये हैं। ऐसी अवस्था मे प्रेम का इतना सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है कि बरबस सूफी भावापन्न कवियो की याद आ जाती है। सूफियो की भाँति इन्होने भी प्रेम को ही भगवान् का रूप, नाम और जाति बताया है। विरह के पदो मे सीमा का असीम से मिलने के लिए तड़पना सहृदय को मर्माहत किये बिना नही रह सकता।

भाषा इनकी यद्यपि पश्चिमी राजस्थान से मिली हुई परिमार्जित हिन्दी है

तथापि उसमे गजब का जोर है। स्थान-स्थान पर प्रकृति का जो वर्णन उन्होने किया है वह देखने ही योग्य है। भाषा मे किसी प्रकार का काव्य-गुण आरोप नही किया गया, छन्दो का नियम प्राय भग होता रहता है, फिर भी अपने स्वाभाविक वेग के कारण वह अत्यन्त प्रभावजनक हुई है।

कबीर की भाँति दादूदयाल भी जिन पाठको को उद्देश्य करके लिखते है वे साधारण कोटि के अशिक्षित आदमी है। उनके योग्य भाषा लिखने मे दादू को स्वभावत ही सफलता मिली है। क्योकि वे स्वय भी कोई पडित नही थे और जो कुछ कहते थे, अनुभव के बल पर कहते थे। इनके पदो मे मुसलमानी साधना के शब्द भी अधिक प्रयुक्त हुए है। वे स्वय जन्म से मुसलमान थे और मुसलिम उपासना पद्धति के ससर्ग मे आ चुके थे, फिर भी उनका मत अधिकतर हिन्दू-भावापन्न था। कबीर के समान मस्तमौला न होने के कारण वे प्रेम के वियोग और सयोग के रूपको मे वैसी मस्ती तो नही ला सके है, पर स्वभावत: सरल और निरीह होने के कारण ज्यादा सहज और पुर-असर बना सके है। कबीर का स्वभाव एक तरह के तेज से दृढ था, पर दादू का स्वभाव नम्रता से मुलायम। कबीर के लिए उनका स्वभाव बडा उपयोगी सिद्ध हुआ, क्योकि उन्हे अपने रास्ते के बहुत से झाड-झखाड साफ करने थे। दादू को मैदान बहुत-कुछ साफ मिला था और इसमे उनके मीठे स्वभाव ने आश्चर्यजनक असर पैदा किया। यही कारण है कि दादू को कबीर की अपेक्षा अधिक शिष्य और सम्मान-दाता मिले, पर जीवन मे कही भी दादू कबीर के महत्त्व को न भूल सके और पद-पद पर कबीर का उदाहरण देकर साधना-पद्धति का निर्देश करते रहे।

सुन्दरदास

दादू के शिष्यो मे सुन्दरदास सर्वाधिक शास्त्रीय ज्ञान-सम्पन्न महात्मा थे। बहुत छोटी उमर मे उन्होने दादू का शिष्यत्व ग्रहण किया था। बाद मे काशी मे आकर बहुत दीर्घ काल तक शास्त्राभ्यास किया था। इसका परिणाम यह हुआ था कि उनकी कविता के बाह्य उपकरण तो शास्त्रीय दृष्टि से कथचित् निर्दोष हो सके थे पर वक्तव्य-विषय का स्वाभाविक वेग, जो इस जाति के सन्तो की सबसे बडी विशेषता है, कम हो गया। विषय अधिकाश मे सस्कृत ग्रथो से सग्रहीत तत्त्ववाद है जो हिन्दी-कविता मे नयी चीज होने पर भी शास्त्रीय ज्ञान रखने वाले सहृदयो के लिए विशेष आकर्षक नही है। छत्रबध आदि प्रहेलिकाओ से भी उन्होने अपने काव्य को सजाने का प्रयास किया है। असल मे सुन्दरदास सतो मे अपने बाह्य उपकरणो के कारण विशेष स्थान के अधिकारी हो सके हैं। फिर भी इस विषय मे कोई सदेह नही कि शास्त्रीय ढग के वे एक मात्र निर्गुणिया कवि है।

सुन्दरदास का अनुभव विस्तृत था। देश-देशान्तर घूमा हुआ था। जब कभी वेदान्त का तत्त्व ज्ञान छोडकर ये अन्य विषयो पर लिखते थे तब नि सन्देह रचना

उत्तम कोटि की होती थी। कुछ लोगों का अनुमान है कि सुन्दरदास एक मात्र ऐसे निर्गुणिया साधक थे, जिन्होने सुशिक्षित होने के कारण, लोक-धर्म की उपेक्षा नही की है। लेकिन यह भ्रम है। कबीर, दादू आदि सन्तो ने पतिव्रता के अगो मे पतिव्रत धर्म का खूब बखान किया है। साधना मे भक्त को भी इस व्रत का पालन करने का विधान किया है और वीरों का सम्मान तो दादू से अधिक अन्यत्र दुर्लभ ही है।

रज्जब

रज्जबदास निश्चय ही दादू के शिष्यो में सबसे अधिक कवित्व लेकर उत्पन्न हुए थे। उनकी भाषा मे भी राजस्थानीपन और मुसलमानीपन अधिक है, तथाकथित शास्त्रीय काव्य-गुण का उसमें अभाव है, फिर भी एक आश्चर्यजनक विचार-प्रौढता, वेगवत्ता और स्वाभाविकता है। और लोग जिसको कई पद मे कहते है रज्जब उस तत्त्व को सहज ही छोटे दोहे मे कह जाते है। इनके वक्तव्य-विषय भी वही है जो साधारणत निर्गुणभावापन्न साधको के होते है पर साफ और सहज अधिक।

दादूदयाल की शिष्य-परम्परा में और भी अनेक सन्त हुए जो कविता करते थे पर उनकी 'कविता' कविता का स्थान नही पा सकी। जगजीवन साहब इसी परम्परा मे हुए थे जिन्होने सतनामी सम्प्रदाय चलाया। इनकी ६३ बानियाँ भी साधारण कोटि की हैं।

: १ :

रीति-काव्य

हमने पहले ही देखा है कि हिन्दी साहित्य मे दो भिन्न प्रकृति के आर्यो ने ग्रथ लिखे है । पूर्वी आर्य अधिक भावप्रवण, आध्यात्मिकतावादी और रूढि-मुक्त थे और पश्चिमी या मध्यदेशीय आर्य अपेक्षाकृत अधिक रूढि-रूढ, परम्परा के पक्षपाती, शास्त्र-प्रवण और स्वर्गवादी थे । पूर्वी आर्यो मे ही उपनिपदो की ज्ञान-चर्चा, वौद्ध और योग-मार्ग का प्रचार और आध्यात्मिका-स्वरसित भावप्रवण गीतिकाव्य का विकास हुआ है। वे अवध से लेकर आसाम तक फैले हुए थे । मध्यदेशीय आर्यो मे पौराणिक भाव-धारा का विकास, धर्मशास्त्र और निवन्ध-ग्रन्थो की प्रतिष्ठा, कर्मकाण्ड का प्रचार तथा स्वर्ग-अपवर्ग की प्राप्ति का विश्वास अधिक था । तूरानियन आक्रमण के पूर्ववर्ती भारतीय साहित्य मे इन दो जातियो की रचनाओ का ही समावेश है अर्थात् या तो उसमे आध्यात्मिकताप्रवण ग्रन्थो (जैसे उपनिपद्, वौद्ध ग्रन्थ, जैन ग्रन्थ, दर्शन आदि) का अस्तित्व है या परम्परापोषक कर्मकाण्डप्रवण शास्त्रो का (जैसे ब्राह्मण ग्रन्थ, श्रौत और गृह्यसूत्र, प्राचीन स्मृति या इतिहास-पुराण आदि का) आधिक्य है । ये दो जाति की रचनाएँ दो प्रदेशो मे हुई थी । पहली अधिकतर अयोध्या, काशी, मगध आदि मे और दूसरी कान्यकुब्ज आदि मध्य देश मे । सन् ईसवी के वाद एक तीसरी वस्तु का अचानक आविर्भाव होता है । यह आध्यात्मवादी या मोक्षकामी रचनाएँ भी नही है और कर्म-काण्डवादी या स्वर्गकामी भी नही है । इनमे ऐहिकतामूलक सरस कवित्व है । ये उस जाति की रचनाएँ है जिसे अँग्रेजी मे 'सेक्यूलर' कविता कहते है । इसके पूर्व जिन दो प्रकार की रचनाओ की चर्चा है उससे इनमे विशेप अन्तर है । ये पहली रचनाओ की भाँति धारावाहिक रूप मे नही लिखी जाती थी और किसी ऐतिहासिक या पौराणिक पुरुप के चरित्र को अवलम्वन करके भी नही गाई जाती थी, वल्कि फुटकल श्लोको के रूप मे, छोटे-छोटे पद्यो मे ही, अपने-आप मे सम्पूर्ण, अन्य-निरपेक्ष भाव से लिखी जाती थी । आरम्भ मे ऐसी रचनाएँ प्राकृत भापा मे लिखी गई और वाद मे चलकर सस्कृत मे भी लिखी जाने लगी । हमारे इस कथन का यह अर्थ नही समझा जाना चाहिए कि इसके पूर्व समूचे भारतीय साहित्य मे ऐसी कोई रचना रही ही नही होगी जिसे ऐहिकता-परक कहा जा सके, वस्तुतः पण्डितो ने ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा वौद्धो की थेर-गाथा और थेरी-गाथाओ से इस प्रकार के प्रमाण ढूंढ निकाले है जिनसे यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि ऐसी रचनाए प्राचीन काल मे भी किसी-न-किसी रूप मे रही ज़रूर होगी, मानव-प्रकृति उन दिनो भी सदा आमुष्मिकता मे उलझी रहना पसन्द नही करती होगी ।

महाभारत मे आई हुई कई प्राचीन कहानियों के सम्बन्ध मे भी पण्डित लोग इसी प्रकार का विचार-पोषण करते हैं। यहाँ हमारे कथन का तात्पर्य यह है कि सन् ईसवी के आरम्भकाल के आसपास ऐसी रचनाएँ बहुत अधिक दिखने लगी और उत्तरोत्तर भारतीय साहित्य मे प्रमुख स्थान ग्रहण करने लगी। इनका आरम्भ प्राकृत से हुआ। इस प्रकार की कविता का सबसे पुराना सग्रह 'हाल' की 'सत्तसई' या सतसई है। इस ग्रन्थ मे जिस जाति की कविता पाई जाती है वैसी कविता इसके पहले सस्कृत के किसी ग्रन्थ मे नही देखी गई। इसकी अपनी विशेषता है। प्रत्येक पद्य अपने-आपमे स्वतन्त्र है और आमुष्मिकता की चिन्ता से एकदम मुक्त है। इस ग्रन्थ के समय को लेकर पण्डितो मे काफी मतभेद है। कुछ लोग हाल को सन् ईसवी के प्रथम शतक का मानते है और कुछ चौथे-पाँचवे शतक का। जो मत ज्यादा प्रचलित है वह यह कि हाल की सत्तसई (सतसई) मे बहुत से प्रक्षिप्त पद्य है जिनके कारण वह रचना अर्वाचीन-सी लगती है। जैसे अगारवार (मगलवार), होरा ओर राधिका शब्द से सम्बद्ध आर्यायें। परन्तु अन्तत साढे चार सौ आर्याये काफी प्राचीन जान पडती है। उनका सन् ईसवी के पूर्व की या पर की प्रथम शताब्दी मे रचित या सकलित होना असम्भव नही है। इस सत्तसई का प्रभाव बाद के सस्कृत-साहित्य पर भी पडा और गोवर्धन की आर्या-सप्तशती वस्तुतः उसी के आधार पर लिखी गई, यद्यपि उसका आधा सौन्दर्य इस सस्कृत सप्तशती मे कम हो गया है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि बिहारीलाल की सतसई भी इस ग्रन्थ से प्रभावित है जो सुकुमारता मे अतुलनीय है। सैकडो वर्ष से वह रसिको का हियहार बनी हुई है और जब तक सुहृदयता जीती रहेगी तब तक बनी रहेगी।

हाल की सत्तसई मे जीवन की छोटी-मोटी घटनाओ के साथ एक ऐसा निकट सबध पाया जाता है जो इसके पूर्ववर्ती सस्कृत-साहित्य मे बहुत कम मिलता है। प्रेम और करुणा के भाव, प्रेमिको की रसमयी क्रीडाएँ और उनका घात-प्रतिघात इस ग्रन्थ मे अतिशय जीवित रूप मे प्रस्फुटित हुआ है। अहीर और अहीरिनो की प्रेम-गाथाएँ, ग्राम-वधूटियो की शृगार चेष्टाएँ, चक्की पीसती हुई या पौधो को सीचती हुई सुन्दरियो के मर्मस्पर्शी चित्र, विभिन्न ऋतुओ का भावोत्तेजन आदि बातें इतनी जीवित, इतनी सरस और इतनी हृदयस्पर्शी है कि पाठक बरबस इस सरस काव्य की ओर आकृष्ट होता है। भारतीय काव्य का आलोचक इस नई भावधारा को भुला नही सकता। यहाँ वह एक अभिनव जगत् मे पदार्पण करता है जहाँ आध्यात्मिकता का झमेला नही है, कुश और वेदिका का नाम नही सुनाई देता, स्वर्ग और अपवर्ग की परवा नही की जाती, इतिहास और पुराण की दुहाई नही दी जाती और उन सब बातो को भुला दिया जाता है जिसे पूर्ववर्ती साहित्य मे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। फिर भी यह समझना भूल है कि हाल की सत्तसई लोक-साहित्य है। उसका स्पिरिट नया है पर भाषागत और भावगत वह सतर्कता इसमे भी है जो सस्कृत कविता की जान है। इस नवीनता का सम्बन्ध ज़रूर किसी लोक-साहित्य से रहा होगा, पर स्वय

यह 'सत्तसई' लोक-साहित्य नही थी। इस नई धारा का पूर्ण विकास हिन्दी साहित्य मे हुआ है, इसीलिए इसके विपय मे कुछ अधिक विस्तारपूर्वक आलोचना करने का यहाँ सकल्प किया गया है।

हूणो के साथ ही आभीरगण भी इस देश मे आये थे। इनका परिचय भारत-वासियो को पहले से ही था। हूणो की तरह ये लूटपाट करके चलते नही बने, वल्कि यही वस गये और आगे चलकर वडे-वडे राज्यस्थापन करने मे समर्थ हो सके। इनकी सरलता, वीरता और सौम्य प्रकृति शीघ्र ही भारतीय साहित्य को प्रभावित करने मे समर्थ हुई। शुरू-शुरू मे इन्हे भी हूणो की तरह अत्याचारी समझा गया था पर बहुत शीघ्र ही भारतवासियो ने इनके प्रति अपनी धारणा वदल ली। इन आभीरो का धर्म-मत भागवत धर्म के साथ मिलकर एक अभिनव वैष्णव-मतवाद के प्रचार का कारण हुआ। अपभ्रश के प्रसग मे वताया गया है कि किस प्रकार इन्होने भापा और साहित्य को प्रभावित किया था। वहुत से पण्डितो का विश्वास है कि प्राकृत और उससे होकर सस्कृत मे जो यह ऐहिकता-परक सरस रचनाएँ आई उसका कारण आभीरो का ससर्ग था। ये फुटकर कविताएँ, अहीरो की प्रेम-कथाएँ और उनके गृहचरित्र लोक-साहित्य मे अत्यधिक लोकप्रिय हो गये थे और उनकी शक्ति और सरसता पण्डितो से छिपी नही रही। उसने प्रत्यक्ष रूप से प्राकृत और सस्कृत के साहित्य को प्रभावित किया। उसी प्रभाव के फलस्वरूप सस्कृत और प्राकृत मे अपने-आपमे स्वतन्त्र ऐहिकतापरक फुटकल पदो का प्रचार हुआ। पर अपभ्रश मे, जो निश्चयपूर्वक पहले आभीरो की और वाद मे उनके द्वारा प्रभावित आर्यभाषा थी, उसकी धारा वरावर जारी रही और उन दिनो अपने पूरे वेग मे प्रकट हुई जिन दिनो सस्कृत और प्राकृत के साहित्य पहले ही वताये हुए नाना कारणो से लोक-रुचि के लिए स्थान खाली करने लगे थे। हमारा मतलव हिन्दी साहित्य के आविर्भाव-काल से है। यह याद रखना चाहिए कि यहाँ तक आते-आते इसमे अनेकानेक अन्य धाराओ का भी प्रभाव पडा होगा और हिन्दी मे यह धारा जिस रूप मे प्रकट हुई वह मूल अपभ्रश-धारा से वहुत-कुछ भिन्न हो गई थी। किन अगो मे भिन्न थी और किन प्रभावो से युक्त थी, यह विचार करने के पहले यह विचार किया जाय कि उस अपभ्रश कविता मे किस प्रकार की रचनाएँ थी।

परवर्ती-काल की अपभ्रश रचनाओ से अनुमान होता है कि दो तरह की रचनाएँ इस भापा मे शुरू-शुरू मे रही होगी—

(१) ऐहिकतापरक फुटकल पद्य और (२) लोकप्रचलित कहानियो के गीतरूप। ससार के समस्त लोक-साहित्य मे ये दो प्रकार की रचनाएँ पाई जाती है। जाति की सस्कृति और धर्ममत के अनुसार इनके ऊपरी आकार-प्रकार मे परिवर्तन होते रहते है। अपभ्रश की कविताओ के आदि स्वरूप के विपय मे विशेप महत्त्वपूर्ण वात यह है कि इसमे आमुष्मिकता की चिन्ता वहुत कम थी।

लोकप्रचलित कहानियो के गीत रूप का प्राचीन सग्रह वहुत कम मिलता है,—

नही मिलता है, कहना ज्यादा ठीक होगा क्योंकि जो कुछ मिलता है उसमे काफी परिवर्तन हो गये है। भारतीय लोक-कथानको की एक विशेषता यह है कि वे सदा किसी ऐतिहासिक व्यक्ति को आश्रय करके रचित होते है, पर ऐतिहासिक घटना-परम्परा का उनमे नितान्त अभाव होता है। कल्पना भारतीय कवि की प्रधान विशेषता है। ऐसा भी तो देखा गया है कि बहुत से कवि अपने आश्रयदाताओ का जीवनचरित लिखते समय भी ऐसी बहुत-सी लोकप्रचलित अद्भुत चमत्कारात्मक-कहानियाँ उनमे जोड देते है जो विशुद्ध कल्पना की उपज होती हैं। बहुत-से इतिहास लेखक इस भारतीय-परम्परा को ठीक-ठीक नही समझ सकने के कारण बहुत-सा व्यर्थ का वाद बढाते हैं और किसी नतीजे पर न पहुँच सकने के कारण अटकल लगाया करते है। चन्द वरदाई के 'पृथवीराजरासो' मे ऐसी बहुत-सी कल्पित घटनाएँ हैं जिनके कारण पृथ्वीराजरासो को केवल जाली ग्रन्थ बताकर ही मौन धारण नही किया है, चन्द को जाली कवि भी कहा गया है। नरपति नाल्ह के 'बीसलदेव-रासो' की घटनाओ ने भी इसी प्रकार पाडित्यगत झमेलो को खडा किया है। जायसी के 'पद्मावत' मे वर्णित अलाउद्दीन और भीमसिंह तथा पद्मावती और सिंहलद्वीप आदि की घटनाओ ने पण्डितो को बहुल दिन तक उलझा रखा था और बडे-बडे विद्वानो को सिर खपा-खपाकर यह सिद्ध करना पडा है कि इतिहास की दृष्टि मे ये बाते निराधार हैं। वस्तुत इन काव्य-ग्रथो मे बहुत-सी लोकप्रचलित गाथाएँ भिन्न-भिन्न ऐतिहासिक व्यक्तियो के नाम से जोड दी गई है। उस युग के कवि-लोग भी इसमे कोई अनौचित्य नही देखते थे और आश्रयदाता लोग भी इसमे कोई दोष नही देखते थे। वस्तुतः गोस्वामी तुलसीदासजी ने जव रामायण मे लिखा था कि 'कीन्हे प्राकृत-जन-गुन-गाना। सिर धुनि-गिरा लागि पछिताना।' तो उनका मतलब केवल राजाओ या आश्रयदाताओ के गुण-गान से ही नही था बल्कि लोक-कथानको से भी था। यह वक्तव्य ही बतलाता है कि उन दिनो लोक-प्रचलित कथानको को आश्रय करके बहुत ग्रथ लिखे जा रहे थे। गोस्वामीजी का शक्तिशाली 'रामचरितमानस' जहाँ हिन्दी साहित्य को अक्षय्य मधु से आप्लावित कर सका वहाँ उसने एक बडा भारी अपकार भी किया। वे सारे 'प्राकृत-जन-गुन-गान' मूलक काव्य सदा के लिए लुप्त हो गये। जिस समाज मे रामायण का प्रभाव नही पड सका उस मुसलमानी समाज की ही कृपा से मुसलमान कवियो की लिखी हुई कुछ प्रेमगाथाएँ उपलब्ध हुई हैं। पदमावत से ही पता चलता है कि उस जमाने मे सपनावती, मुगधावती, मिरगावती, मधुमालती, प्रेमावती आदि की कथाएँ लोक मे प्रचलित थी। इनमे मृगावती और मधुमालती की कहानियो का आश्रय करके लिखे हुए दो ग्रथ (पहला कुतबन का और दूसरा मझन का) मिल भी चुके है। ऐसी और अनेक कहानियाँ भी लोक-भाषा मे प्रचलित रही होंगी और उन पर ग्रथ भी लिखे गये होंगे,—कम-से-कम उनको आश्रय करके बनाई हुई गीतियो से ग्रामीण जनता अवकाश के समय मनोरंजन तो जरूर करती होगी,—परन्तु, उनमे का अधिकाश अब लुप्त हो गया है। हिन्दी साहित्य मे इन कहानियो को

आश्रय करके लिखी हुई दो प्रकार की गाथाओ का प्रचार पाया जाता है—(१) पहली वे है जो पश्चिमी आर्यो मे प्रचलित थी, इनमे ऐतिहासिक, सघर्षमय जीवन की झलक है और (२) दूसरी वे है जो पूर्वी आर्यो मे प्रचलित थी, इनमे आध्यात्मिकता-प्रवण रूपको और भाव-प्रवण घटनाओ का उल्लेख है। ये दोनो ही स्वाभाविक भाव से विकसित हुई हैं। उन्ही को हिन्दी साहित्य के प्रवीण पडितो ने क्रमश वीर गाथा और प्रेम-गाथा नाम दिया है। दूसरी जाति की गाथाओ या कथानको मे जो मुसलमान कवियो की लिखी हुई है यो कहिए कि जो उन हिन्दुओ की लिखी हुई हैं जो किसी कारणवश एकाध पुश्त से ही मुसलमान हो गये थे पर जिनमे हिन्दू-सस्कार पूरी मात्रा मे थे—उनमे सूफी मत का प्रभाव भी पाया जाता है, ये दोनो प्रकार की रचनाये हिन्दी साहित्य मे वर्तमान है और जो लोग अपभ्रश के साहित्य मे प्रतिबिंबित भारतीय समाज को देखना चाहते है उनके लिए ये नितान्त आवश्यक है। बिना किसी प्रकार के प्रतिवाद की आशका के जोर देकर कहा जा सकता है कि मध्य काल के आरम्भ के अन्धकारयुगीन भारतीय जीवन को इतनी सजीवता से अभिव्यक्त कर सकने का कोई दूसरा साधन नही है। नाना प्रकार की लोक-चिन्ताओ के सम्मिश्रण का जो अध्ययन कराना चाहते है उन्हे इस वीर-गाथा और प्रेमगाथा के साहित्य को अध्ययन करने को निमन्त्रित करता हूँ। इससे अधिक सरस, अधिक स्फूर्तिदायक और लोक-जीवन को समझने मे अधिक सहायक साहित्य को मैं नही जानता।

परन्तु इस लोकभाषा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अग, जिसने कि शीघ्र ही शास्त्र-पथी पण्डितो को भी आकृष्ट किया, वह उसका पहला अग था। अलकार-शास्त्र मे उत्तम कविता के उदाहरणो मे प्राकृत और सस्कृत के ऐसे सैकडो सरस श्लोक उद्धृत किये गये हैं। सस्कृत के सुभाषित सग्रहो मे भी ऐसे अनेक रत्न सुरक्षित हैं। इस जाति की रचनाओ ने सस्कृत और विशेष रूप से प्राकृत साहित्य को एक अभिनव समृद्धि से सम्पन्न किया है। यदि अलकार-शास्त्र के आदि ग्रथो की छान-बीन की जाय तो स्पष्ट ही पता चलता है कि आरम्भ मे दो अत्यन्त स्पष्ट धाराएँ इस शास्त्र की मौजूद थी जो आगे चलकर एक मे मिल गई। एक प्रकार की शास्त्रीय चिन्ता नाट्य-शास्त्र के रूप मे प्रकट हुई थी जिसका प्रधान प्रतिपाद्य रस था। दूसरी चिन्ता अलकार-शास्त्र के रूप मे प्रकट हुई जिसका प्रधान विवेच्य विषय अलकार थे। नाट्य-शास्त्र के प्रधान विवेचनीय ग्रथ नाटक थे और अलकार-शास्त्र के फुटकल पद्य। आगे चलकर दोनो धाराएँ एक मे मिल गई और यह माना जाने लगा कि फुटकल पद्यो से भी रस-विवेचन उतना ही आवश्यक है जितना नाटक या प्रबन्ध काव्य मे। इन दो सम्प्रदायो को एकत्र करने का काम आनन्द वर्धन द्वारा प्रतिष्ठित ध्वनि-सम्प्रदाय के पण्डितो ने किया। आनन्द वर्धन के पूर्ववर्ती आलकारिक रस-विवेचना को उतना महत्व नही देना चाहते। यह आलकारिक सम्प्रदाय निश्चय ही नाट्य-सूत्रो के बाद का है। नट-सूत्रो का ज्ञान पाणिनि को भी था। भरत के जिस नाट्य-शास्त्र का परिचय हमे आज प्राप्त है उसका मूलरूप कैसा था, यह कहना कठिन है। पर इसमे कुछ थोडे-से अलकारो

की प्रसगवश चर्चा है। इससे इतना सिद्ध हो जाता है कि भारतीय नाट्य-शास्त्र के वर्तमान रूप को पहुँचने के पूर्व अलकार-शास्त्र कुछ-न-कुछ रूप धारण कर चुका था, परन्तु वह अत्यन्त बचपन की अवस्था मे था। सन् १५०-१५२ ई० का एक शिलालेख गिरिनार मे पाया गया है जिसे महाक्षत्रप रुद्रदामा ने खुदवाया था। इस गद्यकाव्यात्मक शिलालेख मे अलकारशास्त्र का स्पष्ट उल्लेख है और विद्वान लोग इस नतीजे पर पहुँचे है कि अन्तत· उस समय तक अलकार-शास्त्र के कुछ ग्रन्थ जरूर बन गये होगे। यह ध्यान देने की बात है कि उस समय तक हाल की सत्तसई लिखी जा चुकी थी और एक सम्पूर्ण अभिनव भावधारा का सम्मिश्रण भारतीय साहित्य मे हो गया था। अगर यह मत ठीक हो कि पहले काव्य की रचना हो लेती है तब अलकार-शास्त्र की रचना होती है, तो मानना पडेगा कि अपने-आपमे स्वतन्त्र फुटकल पद्यो की रचना की प्रथा इन दिनो तक काफी प्रचारित हो गई थी। पर यह समझना ठीक नही कि इस प्रकार के अलकार-शास्त्री अपनी विवेचना मे नाटको के श्लोको की विवेचना करते ही नही थे, करते थे पर उनको अपने-आपमे स्वतन्त्र मानकर। यह प्रवृत्ति अर्थात् फुटकल पद्यो को दृष्टि मे रखकर काव्य-विचार की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढती गई और इस प्रकार के अलकार-ग्रन्थ भी भूरिश रचित हुए। अन्त मे रस और अलकार को अलग-अलग विवेचनीय समझने वाले दोनों सम्प्रदायो ने मिलकर जव ध्वनि-सम्प्रदाय के रूप में आत्मप्रकाश किया तो एक बहुत ही प्रभावशाली शास्त्र की नीव पडी जो आगे चलकर केवल काव्य का विवेचन ही नही रहा, उसे प्रभावित और अन्त मे अभिभूत भी कर सका। आगे चलकर काव्य-विवेचना के नियमो को दृष्टि मे रखकर कवि लोग कविता लिखने लगे और वे काव्य जिन्हे सस्कृत मे 'बृहत्त्रयी' (माघ, भारवि और श्रीहर्ष के लिखे हुए शिशुपाल-वध, किरातार्जुनीय और नैषधीय चरित) कहते थे, निश्चयपूर्वक इस अभिनवशास्त्र द्वारा प्रभावित थे। हिन्दी के आविर्भाव-काल मे भी यह प्रवृत्ति पाई जाती है। जिन वीरत्वमूलक और आध्यात्मिकता-प्रवण कथानक काव्यो का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, उनमे अलकारो और रसो को दृष्टि मे रखकर कवित्व-कौशल्य दिखाने की प्रवृत्ति है।

परन्तु यह प्रवृत्ति बहुत ही शक्तिशाली (और बहुत बार उपहासास्पद) रूप मे हिन्दी की रीतिकालीन कविता मे प्रकट हुई। इन दिनो तक यह भाषा मँज-घिसकर साफ हो गई थी और कोमल से कोमल भाव को प्रकट करने का सामर्थ्य रखती थी। इन दिनो उक्त प्रवृत्ति का चरम विकास हुआ। अपने-आप मे स्वतन्त्र फुटकल पद्यो की ऐसी भरमार समूचे भारतीय साहित्य मे कही भी देखने को नही मिली है और यद्यपि अधिकाशत ये पहले लक्षणो को देखकर उन्ही की दृष्टि मे रख लिखे गये थे, फिर भी इनमे उत्तम पद्यो की सख्या इतनी अधिक है कि पडित रामचन्द्र शुक्ल जैसे शास्त्रनिष्ठ और दाद देने मे अत्यन्त सतर्क पडित को भी यह कहने मे संकोच नही हुआ है कि "ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण सस्कृत के सारे लक्षण-ग्रन्थो में चुनकर इकट्ठे करे तो भी उनकी इतनी अधिक सख्या न होगी।" दो प्रकार से

इस प्रकार के सरस पद्यो की रचना को उत्तेजना मिली—पहले अलकारो के लक्षणो पर से कवित्व करके और फिर नाट्य-विवेचना के रस-निरूपण के एक अत्यन्त सामान्य पर महत्त्वपूर्ण अग नायक-नायिका के नाना भेद-उपभेदो की सृष्टि करके और उनके लक्षणो पर उदाहरणो की रचना करके। दूसरी बात की ओर कवियो की प्रवृत्ति अधिक रही। इस प्रकार लोक-भाषा के जिन पद्यो ने एक अलग शास्त्र की रचना को जरूरी बना दिया था, काल-क्रम से उसी शास्त्र ने लोक-भाषा को बडी दूर तक प्रभावित किया।

उत्तरकालीन हिन्दी कविता (या रीतिकालीन हिन्दी कविता) को हम लोक-साहित्य नही कह सकते क्योकि उसमे प्रत्यक्ष लोक-जीवन से स्फूर्ति और प्रेरणा पाने की क्रिया गौण है और लोक की चित्तभूमि पर उसका सम्पूर्ण अधिकार भी नही था, फिर उसे शास्त्रीय काव्य भी नही कह सकते क्योकि इसके पहले और इस युग मे भी सस्कृत मे अलकार-शास्त्र को लेकर जैसी सूक्ष्म विवेचना हो रही थी उसकी कुछ भी झलक इसमे नही पाई जाती। शास्त्रीय विवेचना तो बहुत कम कवियो को इष्ट थी। वे तो लक्षणो को कवित्व करने का एक बहाना-भर समझते थे। वे इस बात की परवाह नही करते थे कि उनका निर्दिष्ट कोई अलकार दूसरे किसी मे अन्तर्भुक्त हो जाता है या नही। 'कुवलयानन्द' और 'चन्द्रालोक' को आश्रय करके या किसी पूर्ववर्ती हिन्दी अलकार-ग्रथो को उपजीव्य मानकर ये लोग कविता करने का बहाना ढूंढ निकालते थे। फिर भी इस युग मे ऐसे बहुत से स्वतत्र भाव से लिखने वाले कवि भी थे, परन्तु उन पर रीति-ग्रथो का प्रभाव सुस्पष्ट है।

लेकिन इस युग की कविता को विशिष्ट रूप देने के लिए यही सब-कुछ नही था, अर्थात् केवल लोक-भाषा से प्रभावित और बाद मे सम्पूर्ण भाव से वैज्ञानिक विवेचना का रूप ग्रहण किया हुआ अलकार-शास्त्र ही इस युग के (रीतिकाल के) कवित्व को रूप नही दे रहा था, कुछ और उपादान भी काम कर रहे थे। यह लक्ष्य करने की बात है कि रीतिकाल की समूची रूढियाँ और कवि-प्रसिद्धियाँ वही नही थी जो प्राचीन सस्कृत-काव्यो मे मिलती है। इनमे बहुत-कुछ नई थी और बहुत-सी पुरानी भुला दी गई थी। स्त्री-रूप के उपमानो मे से बहुत-से भुला दिये गये और पुरुष-रूप को अत्यन्त कम महत्त्व दिया गया। एक नई बात जो इस युग की कविता मे दिखाई पडी वह यह है कि प्राय सभी शृगारात्मक उत्तम पद्यो का विषय श्रीकृष्ण और गोपियो का प्रेम है, उन्ही की केलि-कथाएँ, उन्ही की अभिसार-लीलाएँ और उन्ही की वशी-प्रीति आदि। बिहारीलाल की प्रसिद्ध सतसई जो ससार के शृगार-साहित्य का भूषण है, ऐसे गोपी-गोपाल की प्रेम-लीलाओ से ही भरी है। इस काल की कविता मे यह बात इतनी अधिकता से पाई जाती है कि कभी-कभी आधुनिक युग का आलोचक बुरी तरह से इन कवियो पर बिगड खडा होता है। कभी-कभी इन्हे गन्दगी की नाली बहाने वाले, भगवान् के नाम पर कलक-प्रचार करने वाले आदि भी कहा गया है, फिर भी इस विषय मे दो मत नही कि ऐसा लिखने वाले कवि काफी ईमानदार थे। वे सचमुच

विचार करते थे कि—

"राधा मोहनलाल कौ जिन्हें न भावत नेह ।
परियो मुठी हजार दस, तिनकी आँखिन खेह ।।" —मतिराम

इस विषय को ठीक-ठीक समझने के लिए हमे एक और प्राचीन भारतीय परम्परा की जानकारी आवश्यक है। भारतीय साहित्य की यह शाखा अत्यधिक सम्पन्न है और इसमे इतना अधिक कवित्व है कि इसका विषय अलग होने पर भी यह काव्य के विवेचक की दृष्टि से बच नही सकती। यह शाखा स्तोत्रो के साहित्य की है। रामायण और महाभारत मे ही स्तोत्रो की सख्या काफी है। पर सन् ईसवी के बाद के सस्कृत-साहित्य मे इनकी सख्या बहुत बढ गई थी। सबसे पुराना स्तोत्र जो कवित्व की दृष्टि से विवेचनीय माना जा सकता है, बाण का 'चण्डी-शतक' है। फिर मयूर का 'सूर्य-शतक' है, शकराचार्य की विविध देवताओ की स्तुति आदि हैं। ऐसा जान पडता है कि आभीरो के आने और उनके धर्म-विश्वासो के सम्मिश्रण से भागवत धर्म का जो वैष्णव-रूप बाद मे चलकर इतना शक्तिशाली हो उठा वह जब तक भागवत धर्म के सश्रव मे नही आया था तब तक भीतर-ही-भीतर लोक-भाषा को और उसके द्वारा शास्त्रीय कवित्व को प्रभावित कर रहा था। इसके पहले हम देख चुके है कि हाल की सत्तसई मे अहीर और अहीरिनो के प्रेम की लीलाओ का परिचय मिलता है। लोक-भाषा मे इन गोप-गोपियो की प्रेम-लीलाओ का और भी प्रचार रहा होगा। किसी-किसी प्रदेश के ग्राम-गीतो से इस मत की पुष्टि भी हुई है। परन्तु एक बार भागवत धर्म का आश्रय पा लेने के बाद यह अन्तर्निहित लोक-काव्य प्रचुर मात्रा मे शास्त्र-प्रभावित काव्य मे भी आने लगा होगा। राधा और श्रीकृष्ण के परम दैवत स्वीकृत होने से इस क्रिया मे कोई बाधा नही पडी होगी। भारतीय स्तोत्रो के कवि भक्ति-गद्गद भाव से भी जब कविता करते थे तो शिव, दुर्गा, विष्णु आदि देवी-देवताओ की शृगार-लीला के वर्णन करने मे कभी कुठित नही होते थे। यह समझना गलत है कि केवल राधा-कृष्ण ही एक ही साथ उपास्य और शृगार-लीला के आश्रय माने गये, चण्डी, लक्ष्मी, सरस्वती, गगा, शिव, विष्णु आदि सभी देवताओ के स्तोत्रो मे उनकी शृगार-चेष्टाओ का भूरिशः उल्लेख है। यह जरूर है कि श्रीकृष्ण और गोपियो की सारी कथाएँ शृगार-चेष्टा की कथाएँ है और इसीलिए इनकी स्तुतियो मे इसी की प्रधानता हो गई है।

प्राकृत और अपभ्रश मे तो बहुत प्राचीन काल से ही गोपियो के साथ गोपाल (यह गोपाल सदा कृष्ण नही हुआ करते थे) के प्रेम की चर्चा है, पर सस्कृत मे इसका सर्व-प्राचीन उल्लेख आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक के एक उदाहरण मे ही पाया जाता है[1]। बाद मे ग्यारहवी शताब्दी मे लीला-शुक के कृष्ण-कर्णामृत की रचना हुई। अपनी सरसता और तन्मय भावना के कारण यह ग्रथ सारे भारतवर्ष मे शीघ्र ही फैल गया।

---

१ तेषा गोपवधूविलाससुहृदो राधारह साक्षिणाम्।
क्षेम भद्र कलिन्दराजतनया तीरे लतावेश्मनाम् ।। इत्यादि।

उनके बाद ही जयदेव कवि के गीत-गोविन्द मे यह भावप्रवण कवित्व अपने चरम उत्कर्ष को पहुँचा हुआ पाया जाता है। इसके बाद विद्यापति, चण्डीदास और सूरदास की रचनाओ मे, जो लोक-भाषा मे लिखित है, राधा-कृष्ण और अन्य गोपियो की प्रेम-लीलाएँ सम्पूर्ण विकसित रूप मे पाई जाती है। इसके पूर्व निश्चय ही लोक-मुख मे ऐसी अनेक गीतियाँ काफी प्रचलित रही होगी। वैष्णव धर्म के प्रचार के साथ ही साथ लोक-गीतियाँ शास्त्र-सिद्ध आचार्यो द्वारा परिष्कृत की गई होगी। यह ध्यान देने की बात है कि बगाल के चैतन्यदेव के शिष्यो ने, जिनमे मुख्य रूपसनातन और जीवगोस्वामी है, इन लीलाओ को सूक्ष्म रूप दिया था। इन्ही ग्रन्थो मे पहले-पहल अलकारो और नायिकाओ के विवेचन के लिए राधा-कृष्ण की प्रेम-लीलाओ को उदाहरण के रूप मे सजाया गया। नाट्यशास्त्रीय रस-विवेचना के अन्यान्य अगो की उपेक्षा करके केवल नायिकाओ का वर्गीकरण इस उद्देश्य से किया गया था कि गोपियो की विभिन्न प्रकृति के साथ रसराज श्रीकृष्ण के प्रेम-भाव के विविध रूपो को दिखाया जा सके। इस प्रकार लोक-भाषा का यह रूप, जो बहुत दिनो तक भीतर-ही-भीतर पक रहा था, शास्त्र की उँगली पकडकर अपने चरम उत्कर्ष को पहुँचा। हिन्दी मे वह अपने गीत-रूप से स्वतत्र होकर विकसित हो सका, अर्थात् अपने प्राचीन फुटकल पद्य-रूप मे भी विकसित हुआ।

यद्यपि गौडीय वैष्णवो ने कुछ पहले से ही नायिकाओ का इस प्रकार वर्गीकरण किया था कि उसके बहाने गोपी और गोपाल की केलि-कथाएँ गाई जा सके, परन्तु उसका कोई प्रत्यक्ष प्रभाव हिन्दी के रीतिकाल पर नही पडा। उज्ज्वल नीलमणि के साथ रीति-कालीन कवियो के लिखे हुए नायिका-भेद के ग्रथो की तुलना करने से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। यह तो निश्चित है कि गौडीय वैष्णव मतवाद का प्रभाव व्रज के भक्तो पर पडा था, कई भक्तो ने उससे प्रभावित होकर तद्भावभावित भजन भी गाये थे, एकाध ने नये सम्प्रदाय भी चलाये थे, परन्तु रीतिकाल पर उनके वर्गीकरण और विवेचना का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नही मिलता, यहाँ तक कि दोनो के कण्ठ-स्वर भी एक-से नही[1]। उज्ज्वल नीलमणि मे पहली बार उज्ज्वल रस का आस्वादयिता भक्त माना गया है समस्त अलकार और रस-ग्रथो मे पुन:-पुनः निर्दिष्ट 'सहृदय'

---

1 रीतिकाल की कविता का कठ-स्वर पश्चिमी अपभ्रश से अधिक मिलता-जुलता है। बिहारी आदि की कविताओ मे तो भाषा-भाव-भगी सब कुछ उन्ही से मिलती है। कभी-कभी बिहारी के समालोचको ने ऐसे भाव बिहारी मे पाये है जो उनके मत से मुसलमानी ससर्ग के फल है। वियोग-ताप से गुलाब की शीशी का फूटना या दृष्टि का हृदय बेधकर मार डालना, ऐसी ही उक्तियाँ बताई गई है। यह स्पष्ट ही अतिरजना है। हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण मे अपभ्रश के प्रकरण मे इन भावो के दोहे आये है जो बिहारी के निश्चित रूप से मार्ग-दर्शक होगे। दो ऐसे ही पद्य यहां दिये जाते है—

> विट्टीए मइ भणिय तुहुँ, मा कुरु वकी दिट्ठि।
> पुत्ति सकण्णी भल्लि जिव, मारइ हिअइ पइट्ठि॥
> चूडुल्लउ चुण्णी होइसइ, मुद्धि कवोलि निहित्तउ।
> सासानल जाल झलक्किअउ, बाह सलिल ससित्तउ॥

नही। इसमे भक्ति को भी एक रस माना गया है। हिन्दी के रीतिकालीन आलकारिको (या कवियो) मे से किसी-किसी ने भक्ति को दसवाँ रस माना ज़रूर है पर श्रोता उनके सहृदय और सुकवि ही है। उनके रीझने पर ही कवि अपनी रचना को सफल काव्य मानने को तैयार है, नही तो, अगर वे न रीझे तो बाद मे वह सन्तोष कर लेगा कि चलो कविता नही तो न सही, राधाकृष्ण का सुमिरन तो हो ही गया !—

रीझिहैं सुकवि जो तो जानौ कविताई,
न तो राधिका-गुविंद सुमिरन को बहानो है।

परन्तु रीति-काल के कवियो ने रस का निरूपण बिलकुल प्राचीन रस-शास्त्रियो की शैली पर किया है। शायद ही किसी कवि ने उज्ज्वलनीलमणि के अनुकरण पर ३६३ प्रकार की भिन्न-भिन्न स्वभाव और नाम वाली गोपियो की चर्चा की हो। उज्ज्वलनीलमणि मे गोपियो के स्वभाव और वस्त्राभूषण आदि के बारे मे विस्तृत वर्णन है। कुछ गोपियाँ प्रखर स्वभाव की थी, जैसे श्यामला, मगला आदि। श्रीराधा और पाली आदि कुछ गोपियाँ मध्यम और चन्द्रावली आदि मृदु स्वभाव की थी। इनमे भी स्वपक्षा, सुहृत्पक्षा, तटस्थपक्षा और प्रतिपक्षा ये चार भेद है। इनमे कुछ वामा है, कुछ दक्षिणा है। श्रीराधिका की स्वपक्षा ललिता और विशाखा थी। सुहृत्पक्षा श्यामला, तटस्थपक्षा भद्रा और प्रतिपक्षा चन्द्रावली थी। श्रीमती राधा वामा-मध्या थी, कभी नीलवस्त्र धारण करती, कभी लाल। ललिता प्रखरा थी, और मयूर-पुच्छ जैसा वस्त्र धारण करती थी। विशाखा वामा-मध्या थी और तारावली-खचित वस्त्र पसन्द करती थी। इन्दुलेखा वामा-प्रखरा और अरुणवस्त्रा थी। रगदेवी और सुदेवी वामा-मध्या और नीलवस्त्रा, चित्रा दक्षिणा, मृद्वी और नीलवसना, तुगविद्या, दक्षिणा-प्रखरा और शुक्लवस्त्रा, श्यामदा, वामा-दाक्षिण्य-युक्त-प्रखरा और रक्तवस्त्रा, भद्रा दक्षिणा, मृद्वी और चित्रवसना तथा चन्द्रावली दक्षिणा, मृद्वी और नीलवसना थी। इनकी सखी पद्मा दक्षिणा और प्रखरा तथा शैव्या दक्षिणा और मृद्वी थी। ये सभी रक्तवस्त्र धारण करती थी। इस प्रकार उज्ज्वलनीलमणि ने गोपियो की बडी विस्तृत सूची दी है। सबके स्वभाव, वस्त्र और व्यवहार-भगी को निपुण भाव से चित्रित किया है। परन्तु रीति-काल के किसी कवि ने इन गोपियो मे से अधिकाश का नाम शायद ही लिया हो। भूले-भटके क्वचित् कदाचित् ललिता, विशाखा और चन्द्रावली का नाम आ जाता है। राधिका इस स्थान पर निश्चयपूर्वक प्रधान स्थान ग्रहण करती है। समूचे रीतिकाल के साहित्य मे गोपियो की स्वपक्षता, सुहृत्पक्षता और तटस्थपक्षता की चर्चा नही आती।

इन विविध नायिकाओ और उनकी दूतियो तथा उनके अगज (अर्थात् भाव, हाव, हेला), अयत्नज (अर्थात् शोभा, कान्ति, माधुर्य, दीप्ति, प्रगल्भता, औदार्य, धैर्य) तथा स्वभावज (लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिञ्चित्, मोट्टायित, कुट्टमित, विव्वोक, ललित और विहृत) अलकारो तथा विविध सचर्यादि भावो का आश्रय करके कवियो ने बहुत-कुछ लिखा, पर सर्वत्र वे प्राचीन ग्रन्थो से चालित हो रहे थे। अत्यन्त

पुराने काल मे नाट्यशास्त्र मे जो कुछ इस विषय मे कहा गया था और बाद मे दश-रूपक और साहित्यदर्पणादि ग्रन्थो मे उसी के अनुवाद के रूप मे जो कुछ कहा गया था उससे अधिक किसी ने नही लिखा। इस प्रकार समूचा नायिका-भेद का साहित्य नाट्य-शास्त्र के एक सामान्य अग पर लोकगम्य भाष्य के सिवा और कुछ नही है। परन्तु सस्कृत के नाटको और काव्यो को केवल भरत या धनजय के नायिका-भेद चालित नही कर रहे थे। उनके सामने एक और भी इतना ही महत्त्वपूर्ण शास्त्र था जो प्रत्यक्ष रूप से उनकी कृतियो का सयमन कर रहा था।

यह शास्त्र है वात्स्यायन का कामसूत्र। यह तो नही कहा जा सकता कि वात्स्यायन का काल क्या था, पर इतना निश्चित है कि इस ग्रन्थ के बनने के बहुत पहले से भारतवर्ष की साम्पत्तिक अवस्था और राजकीय व्यवस्था बहुत ऊँचे दर्जे की रही होगी। कालिदास के ग्रथो से पण्डितो ने ऐसे प्रमाण ढूँढ निकालने के प्रयत्न किये है कि उक्त कवि को कामसूत्र का ज्ञान था। वात्स्यायन का बताया हुआ नागरिक या रसिक अत्यन्त समृद्ध विलासी हुआ करता था। उसके पास प्रचुर सम्पत्ति, पर्याप्त अवकाश, अकल्पनीय निश्चिन्तता होती थी। ऐसे विलासियो की सम्भावना उसी समय हो सकती है जब देश धन-धान्य से समृद्ध और सुरक्षित हो। अनुमानतः कामसूत्र का काल सन् ईसवी की दूसरी शताब्दी के आस-पास होना चाहिए। वात्स्यायन ने अपने पूर्ववर्ती अनेक विस्तृत कामशास्त्रो का सार सकलन करके यह ग्रन्थ लिखा था। इसमे युवा-युवतियो की बहुविध शृगार-चेष्टाओ का केवल वर्णन ही नही दिया गया है, मर्यादा भी बाँध दी गई है। किस स्त्री के साथ किस पुरुष का कैसा व्यवहार साधु-जनोचित है और कैसा ग्राम्य और अभद्रजनोचित, इसकी भी मर्यादा इस ग्रन्थ मे बताई गई है। नायक-नायिकाओ की शृगार-चेष्टाओ मे, दैनिक जीवन मे, आहार-शयन-भोजन मे, एक विशेष प्रकार के शिष्टाचार की धारणा कवियो ने इसी ग्रन्थ के आधार पर बनाई थी। देश की अवस्था बदलती गई। नागरिक-नागरिकाओ की स्थिति भी निश्चित ही परिवर्तित होती गई होगी, परन्तु कामशास्त्रीय मर्यादा ज्यो-की-त्यो ही बनी रही। सस्कृत के अन्यान्य काव्य-ग्रन्थो की तरह कामसूत्र का सामाजिक वर्णन काल्पनिक नही जान पडता। वास्तव मे ही उन दिनो उस प्रकार की अवस्था रही होगी। अवस्था-परिवर्तन के साथ-ही-साथ यह अनुभव किया जाने लगा कि कामसूत्र अपने विशुद्ध रूप मे नागरो के काम का नही हो सकता, इसलिए उसके अनावश्यक अग छाँटकर केवल काम की चीजो का आश्रय करके बहुत से ग्रन्थ लिखे गये। कालान्तर मे यही बाद के लिखे गये ग्रन्थ मध्य-काल की सामाजिक अवस्था के अनुकूल बनाकर हिन्दी मे ग्रन्थित हुए। ये उत्तरकालीन ग्रन्थ ही रीतिकालीन कवि के आदर्श थे। नायिका-भेद मे नायक-नायिकाओ के व्यवहार, कथोपकथन, शृङ्गारचेष्टा और दैनिक कार्य-समूह इन्ही ग्रन्थो से चालित हो रहे थे। यहाँ तक आकर नागर का वह पुराना आदर्श (उसका अतिरिक्त विलासमय जीवन) घिस-घिसाकर साधारण गृहस्थ के रूप मे परिणत हो गया था। इस प्रकार एक तरफ नायिका-भेद का विषय

जहाँ नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थो से लिया गया वहाँ उसका व्यावहारिक अग कामशास्त्रीय ग्रन्थों से अनुप्राणित था। फिर भी यह नही कहा जा सकता कि रीतिकाल का कवि केवल नाट्यशास्त्र और कामशास्त्र की रटन्त विद्या का जानकार था। यह स्पष्ट करके समझ लेना चाहिए कि रीति-काल मे लक्षण-ग्रथो की भरमार होने पर भी वह उस प्राचीन लोक-भाषा के साहित्य का ही विकास था जो कभी सस्कृत-साहित्य को अत्यधिक प्रभावित कर सका था। इस विशेष काल मे जबकि शास्त्र-चिन्ता लोक-चिन्ता का रूप धारण करने लगी थी, वह पुरानी लौकिकतापरक लोक-काव्य-धारा शास्त्रीय मत के साथ मिलकर देखते-देखते विशाल रूप ग्रहण कर गई। कवियो ने दुनिया को अपनी आँखो से देखने का कार्य बन्द नही कर दिया। नायिका-भेद की सकीर्ण सीमा मे जितना लोकचित्र आ सकता था, इस काल का उतना चित्र निश्चय ही विश्वसनीय और मनोरम है। इतना दोष जरूर है कि यह चित्र असम्पूर्ण और विच्छिन्न है। शास्त्रमत की प्रधानता ने इस काल के कवियो को अपनी स्वतन्त्र उद्भावना-शक्ति के प्रति अतिरिक्त सावधान बना दिया, उन्होने शास्त्रीय मत को श्रेष्ठ और अपने मत को गौण मान लिया, इसलिए स्वाधीन चिन्ता के प्रति एक अवज्ञा का भाव आ गया। यह भाव उत्तरोत्तर बढता ही गया और वही इस युग मे सबसे अधिक खतरनाक बात थी।

उपसंहार

समूचे भारतीय प्राचीन साहित्य को दो मोटे-मोटे विभागो मे बाँट लिया जा सकता है, एक को साधारण भाव से वैदिक साहित्य और दूसरे को लौकिक साहित्य कह सकते है। इतिहास के अध्येता के लिए इन दोनो विभागो के बीच लकीर खीचने मे विशेष सकोच नही करना पडेगा। शुरू मे लेकर तूरानियन आक्रमण तक वैदिक साहित्य की एक अविच्छिन्न धारा स्पष्ट ही मालूम पडती है। तूरानियन आक्रमण के बाद भारतवर्ष के दो सौ वर्षो का इतिहास अन्धकाराच्छन्न है। यह वही काल है जिसे विन्सेण्ट स्मिथ ने 'डार्क एज' या तिमिरावृत युग नाम दिया है। सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय जायसवालजी के उद्योग से इस युग के राजनीतिक इतिहास पर एक हल्का-सा आलोक पहुँचा जरूर है, पर इस विषय मे दो मत नही हो सकते कि यह युग भारतीय इतिहास मे सबसे कम परिचित है। साहित्यिक दृष्टि से भी यह युग एक तरह से अन्धकार मे ही है। सन् ईसवी की पहली से तीसरी शताब्दी तक का साहित्य का विद्यार्थी सहज ही उसे दो बडे-बडे हिस्सो मे बाँट ले सकता है। पहले भाग की रचनाएँ निश्चयपूर्वक दूसरे विभाग की रचनाओ से भिन्न कोटि की हैं। यद्यपि साहित्यिक विभागो का नाम देना कभी निर्दोष नही होता, पर काम चलाने के लिए कुछ नाम रख लेना आवश्यक होता है। इस अध्याय मे हमने पहले भाग का नाम वैदिक साहित्य और दूसरे का लौकिक रख लिया है। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत सहिता, ब्राह्मण, उपनिषद्, बौद्ध-ग्रन्थ, जैन आगम और सूत्र-साहित्य शामिल है और लौकिक साहित्य मे परवर्ती युग के काव्य, नाटक, आख्यायिका आदि है।

ध्यान देने की बात यह है कि पूर्ववर्ती साहित्य मे केवल रस-सृष्टि के लिए या लोक-रजन के लिए कुछ भी नही लिखा गया, परवर्ती साहित्य मे जिसे काव्य कहते है, वह वस्तु उसमे नही है। एक खास विषय को सामने रखकर, एक खास उद्देश्य से पूर्ववर्ती साहित्य रचित हुआ था। फिर भी, यह नही समझना चाहिए कि उस युग मे 'कवि' शब्द द्योत्य तत्त्व बिलकुल सोचा ही नही गया। पण्डितो ने देखा है ऋग्वेद मे पाया जाने वाला 'कारु' शब्द कवि का ही वाचक है। कहते है कि इस बात का प्रमाण ऋग्वेद से ही पाया जा सकता है कि कवि (कारु) वैद्य की ही तरह एक पेशेवर आदमी होता था (ऋ० ९-११२-३)। इतना ही नही, वह राजाओ और धन-सम्पन्न व्यक्तियो के दरबार मे भी रहता था और उनकी कीर्ति-गाथा का गान भी करता था (७-७३ १)। लेकिन यह सब अनुमान-ही-अनुमान है। जिन मन्त्रो को लेकर ये बाते सोची गई हैं, उनमे कवि शब्द आता ही नही। 'कवि' शब्द समस्त वैदिक साहित्य मे उसी गौरव और आदर के साथ प्रयुक्त हुआ है जिसके साथ 'ऋषि' शब्द। ऋग्वेद मे ही ऐसे

बीसियो मन्त्र उद्धृत कर दिये जा सकते है जहाँ सूक्त-रचयिताओ को ऋषि और कवि कहा गया है। इतना ही नही, 'कवि' शब्द से कभी-कभी सृष्टिकर्ता को भी स्मरण किया गया है।

सन् १८८२ मे सिविल सर्विस के अँगरेज परीक्षार्थियो के सामने व्याख्यान देते हुए प्रो० मैक्समूलर ने इस वैदिक साहित्य का एक शब्द मे बडा सुन्दर परिचय दिया था। वह शब्द है अतीत, परे—Transcendent Beyond ! "उससे इस सान्त जगत् की बात कहो, वह कहेगा अनन्त के बिना सान्त जगत् निरर्थक है, असम्भव है। उससे मृत्यु की बात कहो, वह इसे जन्म कह देगा। उससे काल की बात कहो, वह इसे सनातन तत्त्व की छाया बता देगा। हमारे (यूरोपियनो के) निकट इन्द्रिय-साधन है, शस्त्र है, ज्ञानप्राप्ति के शक्तिशाली इजन है, किन्तु उसके (वैदिक युग के कवि के) लिए अगर सचमुच धोखा देने वाले नही तो कम-से-कम सदा ही जबर्दस्ती वन्धन है, आत्मा की स्वरूपोपलब्धि मे बाधक है। हमारे लिए यह पृथ्वी, यह आकाश, यह जीवन, यह जो हम देख सकते है और हम छू सकते है, और जो हम सुन सकते है, निश्चित है, ध्रुव है, हम समझते है, यही हमारा घर है, यही हमे कर्तव्य करना है, यही हमे सुख-सुविधा प्राप्य है; लेकिन उसके लिए यह पृथ्वी एक ऐसी चीज है जो किसी समय नही थी, और ऐसा भी समय आवेगा जब यह नही रहेगी, यह जीवन एक छोटा-सा सपना है जिससे शीघ्र ही हमारा छुटकारा हो जायगा। हम जाग जायँगे। जो वस्तु औरो के निकट नितान्त सत्य है, उससे अधिक असत्य उसके निकट और कुछ है ही नही और जहाँ तक उसके घर का सम्बन्ध है, यह निश्चित जानता है कि वह और चाहे जहाँ कही भी हो, इस दुनिया मे नही है।"

सन् ईसवी के आरम्भ मे ये विचार भारतीय समाज मे निश्चित सत्य के रूप मे स्वीकार कर लिये गए थे, उसमे विचिकित्सा का भाव एकदम जाता रहा था। जो कुछ इस जगत् मे दृष्ट हो रहा है उसका एक अदृष्ट कारण है, यह बात निस्सन्दिग्ध मान ली गई थी। जन्मान्तर-व्यवस्था और कर्मफलवाद के सिद्धान्त ने ऐसी जबर्दस्त जड जमा ली थी कि परवर्ती युग के कवियो और मनीषियो के चित्त मे इस जागतिक व्यवस्था के प्रति भूल से भी असन्तोष का आभास नही मिलता। जो कुछ जगत् मे हो रहा है, उसका एक निश्चित कारण है, उसमे प्रश्न करने और सन्देह करने की जगह ही नही। कवि एक शान्तिमय जगत् मे निवास करते थे, उसमे दु ख भी कष्ट भी, हास्य भी क्रन्दन भी, एक सामजस्यपूर्ण व्यवस्था का परिणाम समझा जाता था। कवि इन बातो से विचलित नही होता था। इसीलिए सस्कृति के इस युग के कवियो मे समाज-व्यवस्था के प्रति किसी प्रकार के विद्रोह की भावना, क्लेशपिष्ट जनसमुदाय के प्रति सहानुभूतिमय असन्तोष का भाव एकदम नही पाया जाता। कवि स्वय दरिद्र या दुखी न होते हो, सो बात नही। गरीबी का जितना करुण और हृदयस्पर्शी वर्णन सस्कृत-काव्यो मे है वह अन्यत्र दुर्लभ है, फिर भी यह सारा प्रयत्न मानो एक बेबसी का प्रयत्न है, मानो उसको कवि अवश्यभावी और ध्रुव मान बैठा है, ऐसा अनुभव

होता है । आप करुणा-विगलित हृदय की धडकन के साथ विधवा का मर्मस्पर्शी रोदन पढ जाएँगे, अपमानिता का साश्रु क्रन्दन सुन जाएँगे, निर्दलिता का उच्छ्वासपूर्ण आवेग बर्दाश्त कर जाएँगे, पर बहुत कम ऐसा देखेंगे कि कवि ने एक बार भी आपका हृदय सहला देने के लिए विद्रोह के साथ कहा हो कि यह अन्याय है, हम इसका विरोध करते है । व्यक्तित्व की इतनी ज़बर्दस्त उपेक्षा ससार के साहित्य मे दुर्लभ है, क्योकि सस्कृत का कवि अपने-आपको,—अपने सुख-दु ख को अभिव्यक्त करने के लिए कविता करने नही बैठता था । उसका उद्देश्य कुछ और ही होता था ।

२

वह उद्देश्य क्या था ?

आज के भारतीय लेखक के निकट इस प्रश्न का उत्तर जितना ही सहज है, उतना ही कठिन भी । आए दिन श्रद्धापरायण आलोचक यूरोपियन मत-वादो को धकिया देने के लिए भारतीय आचार्य-विशेष का मत उद्धृत करते है और आत्मगौरव के उल्लास मे घोषित कर देते है कि 'हमारे यहाँ' यह बात इस रूप मे मानी या कही गई है । मानो भारतवर्ष का मत केवल वही एक आचार्य उपस्थित कर सकता है, मानो भारतवर्ष के हजारो वर्ष के सुदीर्घ इतिहास मे नाम लेने योग्य एक ही कोई आचार्य हुआ है और दूसरे या तो है ही नही, या है भी तो एक ही बात माने बैठे हे । यह रास्ता गलत है । किसी भी मत के विषय मे भारतीय मनीषा ने गड्डलिका-प्रवाह की नीति का अनुसरण नही किया है । प्रत्येक बात मे ऐसे बहुत-से मत पाए जाते है जो परस्पर एक-दूसरे के विरुद्ध पडते है । काव्य के उद्देश्य और वक्तव्य के सम्बन्ध मे भी मत-भेद है, पर एक बात मे आश्चर्यजनक एकता है । प्राय सभी पडित स्वीकार करते है कि काव्य का मुख्य उद्देश्य लोकोत्तर आनद और कीर्ति प्राप्त करने का है । कवि कविता के द्वारा अमर हो जाता है और जैसा कि भामह ने कहा है, वह मरकर भी जीता रहता है । जहाँ तक इस बात का सम्बन्ध है, सभी एकमत है । पर आनन्द प्राप्त करने की पद्धति मे मतभेद है । कोई तो यह समझता है कि कवि कविता कर लेने के बाद जब स्वय आलोचक की हैसियत से उसे देखता है तो उसे लोकोत्तर आनन्द प्राप्त होता है, और कोई यह समझता है कि काव्य के करते समय भी उसे वह आनन्द प्राप्त होता है । जो हो, इस विषय मे सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कवि कीर्ति प्राप्त करता है । यह कीर्ति की लिप्सा ही कविता की सृष्टि के मूल मे है । शास्त्र-ग्रन्थो मे कीर्ति प्राप्त करने के उपायो का वर्णन है । कैसे राजाओ को प्रभावित किया जा सकता है, अभ्यास, शास्त्र-निष्ठा और तपोबल से किस प्रकार कवित्व-शक्ति की प्राप्ति हो सकती है, इत्यादि बातो का बडा विशद वर्णन किया गया है । राजशेखर की प्रसिद्ध पुस्तक काव्य-मीमासा से जान पडता है कि कवि को कीर्ति प्राप्त करने के लिए कितना आयास करना पडता था । एक बात जो यहाँ स्मरण कर लेने योग्य है वह यह है कि यद्यपि कविता की रचना के लिए

प्रतिभा, शिक्षा और अभ्यास की आवश्यकता बताई गई है, पर इस वात पर अधिक जोर नही दिया गया कि केवल प्रतिभा ही कवित्व का कारण हो सकती है। सच पूछा जाय तो जिस व्यक्ति ने शास्त्राभ्यास नही किया वह सस्कृत आलकारिक की दृष्टि मे कवि ही नही हो सकता। कवि के लिए शास्त्राभ्यास नितान्त आवश्यक है। सस्कृत आलकारिक की दृष्टि मे ग्रामीण गीतो या सन्तो की अटपटी बानी मे कवित्व ही नही हो सकता। इस मनोवृत्ति का परिणाम पिछले खेवे के हिन्दी समालोचको की आलोचनाएँ है जिनमे देव, विहारी आदि आलोच्य कवियो को सर्वशास्त्रो से परिचित सिद्ध करने की चेष्टा की गई थी।

मध्य-युग मे जब नये सिरे से हिन्दी कविता सिर उठाने लगी तो उसमे ये सब वाते नही थी। उसमे शास्त्राभ्यास का स्थान गौण था। धार्मिक शास्त्रो के सम्बन्ध मे भी कुछ सुनी-सुनाई बाते ही उसकी उपजीव्य थी, पर शीघ्र ही शास्त्राभ्यास ने इस क्षेत्र मे भी प्रवेश किया और वाद की कविताएँ जीवन से विच्छिन्न हो गई। कविगण नायक और नायिकाओ के और अलकार तथा सचारी आदि भावो के पूर्व-निर्णीत वर्गीकरण का आश्रय लेकर एक वँधे-सधे सुर मे एक वँधी-सधी बोली की कवायद करने लगे। सस्कृत के उत्तरकालीन साहित्य का प्रभाव ही उसे चालित कर रहा था।

इस ओर इसके उपजीव्य उत्तरकालीन सस्कृत-साहित्य के साथ जब हम उन रचनाओ की तुलना करते है जो लोक-जीवन के साथ घनिष्ठ भाव से जडित थी, तो सहज ही दोनो का भेद स्पष्ट होता है। मेरा मतलब गाँवो मे प्रचलित गीतो और कथानको से है। वहाँ हम प्रेम और वियोग मे तडपते हुए सच्चे हृदयो का वर्णन पाते है। भाई से विच्छिन्न वहन की करुण-कथा, सौत के, ननद के और सास के अकारण निक्षिप्त वाक्य-बाणो से विद्ध वहू की मर्म-कहानी, साहूकार, जमीदार और महाजन के सताये गरीबो की करुण-पुकार, आन पर कुर्बान हो जाने वाले विस्मृत वीरो की वीर्य-गाथा, अपहार्यमाणा सती का वीरत्वपूर्ण आत्मघात, नई जवानी के प्रेम के घात-प्रतिघात, प्रियतम के मिलन-विरह और मातृ-प्रेम के अकृत्रिम भाव इन गीतो मे भरे पडे है। जन्म से लेकर मरण तक के काल मे और सोहाग-शयन से लेकर रणक्षेत्र तक फैले हुए विशाल स्थान मे सर्वत्र इन गानो का गमन है। यही हिन्दी-भाषा की वास्तविक विभूति है। इसकी एक-एक वहू के चित्रण पर रीतिकाल की सौ-सौ मुग्धाएँ, खण्डिताएँ और धीराएँ निछावर की जा सकती है, क्योकि ये निरलकार होने पर भी प्राणमयी है और वे अलकारो से लदी हुई होकर भी निष्प्राण है। ये अपने जीवन के लिए किसी शास्त्र-विशेष की मुखापेक्षी नही है। ये अपने-आपमे ही परिपूर्ण है। मध्य-युग की हिन्दी की सुसस्कृत समझी जाने वाली कविता मे जो वात सबसे अधिक खटकने वाली है, वह है उसकी परमुखापेक्षिता। क्या अलकार, क्या नायिका-भेद, सर्वत्र इसमे उत्तरकालीन सस्कृत-साहित्य की नकेल की गई है और साथ-ही-साथ यह समझकर कि भाषा मे किया हुआ यह प्रयत्न सस्कृत के कवियो की तुलना मे नितान्त तुच्छ है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, यह चित्र का एक पहलू है। उसका दूसरा पहलू

उसने कहीं अधिक उज्ज्वल और महत्त्वपूर्ण है। पिछले दो हजार वर्षों का भारतीय साहित्य जहाँ कवि के व्यक्तित्व को उत्तरोत्तर खोता गया है, जनसाधारण के वास्तविक सुख-दुखों से हटकर अपने ही द्वारा निर्मित बन्धनो मे बराबर बँधता गया है, कीर्ति-प्राप्ति का केन्द्र अपने-आपको न बनाकर किसी अन्य ऐश्वर्य को बनाता गया है, वैयक्तिकता की स्वाधीनता को छोडकर 'टाइप' रचना की पराधीनता को स्वीकार करता गया है, वहाँ निश्चयपूर्वक उसने कुछ ऐसी बाते संसार को दी है, जो अनुपम है। विशेषज्ञ पडितो ने समसामयिक ग्रीक, रोमन तथा अन्य समृद्ध समझे जाने वाले साहित्य के साथ तुलना करके देखा है कि कालिदास तो कालिदास, माघ और भारवि के साथ भी जिनका नाम लिया जा सके, ऐसे कवि भी समसामयिक साहित्य मे नही है। यदि हम पहली बातो को सामने रखकर इस बात पर विचार करते है, तो यह एक अद्भुत विरोधाभास-सा जान पडता है; किन्तु है यह ठीक। कारण यह है कि विविध बन्धनो के भीतर रहकर संस्कृत के कवि ने एक अपूर्व सयम का अभ्यास किया है, अपने-आपको मिटाकर वह सहज ही सर्वसाधारण का प्रतिनिधि हो सका है और वास्तविकता की कठोर विषमता के भीतर एक शाश्वत मगल को प्राधान्य दे सका है। सच पूछा जाय तो जैसा कि रवीन्द्रनाथ ने कहा है, उसकी दृष्टि मे स्त्री-पुरुष का प्रेम स्थायी नही हो सकता अगर वह वन्ध्य हो, अगर वह अपने-आपमे ही सकीर्ण हो रहे, कल्याण को जन्म न दे और ससार मे पुत्र-कन्या, अतिथि-प्रतिवेशी आदि के बीच विचित्र सौभाग्य रूप से व्याप्त न हो जाय। एक ओर संसार का निविड बन्धन और दूसरी ओर आत्मा की बन्धनहीन व्यापकता, इन दोनो का सामजस्य संस्कृत कविता को एक अपूर्व माधुर्य से मण्डित कर सका है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है संस्कृत कवि की श्रद्धा और निष्ठा। शास्त्राभ्यास के साथ जहाँ प्रतिभा का मणि-काचन योग हुआ है, वहाँ संस्कृत का कवि अतुलनीय है।

लेकिन उन्नीसवी शताब्दी के शुरू मे हिन्दी की रीतिकालीन कविता मे वह उज्ज्वल पक्ष बहुत-कुछ म्लान हो गया था और पूर्ववर्णित अनुज्ज्वल अंश गाढ हो उठा था। इसी समय हमारा सम्बन्ध पश्चिमी दुनिया से हुआ। बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे यह प्रभाव स्पष्ट लक्षित हुआ और पिछले पन्द्रह-बीस वर्षो मे इसने हिन्दी-साहित्य मे युगान्तर उपस्थित कर दिया है। इस नये साहित्य की आलोचना करने के पहले हम एक बार फिर स्मरण कर ले कि यहाँ तक हमारी क्या पूँजी थी।

संस्कृत मे लिखे हुए शास्त्रो पर हमारी अविचल श्रद्धा थी। हिन्दी मे जो कुछ लिखा जा रहा था, वह निश्चित रूप से, कम अच्छा और inferior मान लिया गया था। कवि का व्यक्तित्व कविता मे यथासम्भव कम प्रस्फुटित होता था, बँधे-बँधाए नियमो की अनुवर्तिता मे कवित्व का साफल्य स्वीकृत हो चुका था, कविता रसपरक हो गयी थी, पर वह सम्पूर्णत अपने को धर्म से अलग नही कर सकी थी। जन्मान्तरवाद निश्चित रूप से स्वीकृत हो जाने के कारण प्रचलित रूढियो के विरुद्ध तीव्र सन्देह एकदम असम्भव था, काव्य-शास्त्र की रूढियाँ कविता का अविच्छेद्य अग हो गई थी और

साहित्य के नाम पर एकमात्र पद्य का राज्य था। इसी सपद को लेकर हम पश्चिम के सस्पर्श मे आये। अपना पूर्व गौरव हम भूल चुके थे।

३

हम कविता की बात करते आ रहे थे। यह अच्छा ही हुआ था, क्योकि नवयुग के आरम्भ मे अपने प्राचीनो से हमने जो कुछ वर्तमान साहित्य का पाया था वह कविता ही थी। यहाँ हम बिना रुके कविता की बात करते जा सकेंगे। जहाँ तक कविता का सम्बन्ध है, बहुत कम दिन पहले ही हमारे साहित्यिको को नवयुग की हवा लगी है। जिस दिन कवि ने परिपाटी-विहित रसज्ञता और रूढि-समर्थित काव्य-कला को साथ ही चुनौती दी थी, उस दिन को साहित्यिक क्रान्ति का दिन समझना चाहिए। सब-कुछ झाड-फटकार कर कवि ने आत्म-निर्मित आधार की कठोर भूमि पर अपने-आपको आजमाया। पहली बार उसने अपनी अनुभूति के ताने-बाने मे एक सकीर्ण दुनिया तैयार की, सकीर्ण होने के साथ ही यह प्रसारधर्मा थी। इस भूमि पर, इस आत्म-निर्मित वेडे के अन्दर खडे होकर हिन्दी के कवि ने अपनी आँखो से दुनिया को देखा, कुछ समझा। पहली बार उसने प्रश्न-भरी मुद्रा से दुनिया के तथाकथित सामजस्य की ओर देखा। उसे सन्देह हुआ, असन्तोष हुआ, ससार रहस्यमय दिखा। हिन्दी कवि के विचार और हिन्दी-कविता की रूप-रेखा दूसरी हो गई। केवल इसी दृष्टि से देखा जाय, तो हमारे आधुनिक कवियो का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है।

लेकिन नवयुग की बात कहते समय हमे कविता को अन्त मे ही ले आना चाहिए था। जो कोई भी नवयुग का आदिप्रवर्तक क्यो न हो, वह निश्चय ही गद्य-लेखक था। सच पूछा जाय तो नवयुग का साहित्य गद्य का साहित्य है। भाषा ने परिवर्तन के अनेक रूप देखे है, शब्दकोष मे आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है, गद्य की शैलियो मे जबर्दस्त परिवर्तन हुआ है, पद्य की भाषा एकदम बदल गई है। हिन्दी के उपन्यास और कहानियाँ एकदम नई चीज है। इस क्षेत्र मे हिन्दी साहित्य की वेगवती यात्रा, जो 'चन्द्रकान्ता' से शुरू होकर 'गोदान' तक पहुँच चुकी है, बडे मार्के की है। नाटको मे यद्यपि इतना बडा विकास नही हुआ है, पर वह नितान्त कम भी नही है। लिरिक (गीति काव्य) मे अभूतपूर्व परिवर्तन और नया प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है, और जैसा कि कभी वृद्ध पण्डित झुझलाकर कहा करते है, छन्द, भाषा, रीति-नीति और यहाँ तक कि उपमा-रूपक आदि मे भी आज की कविता प्रत्येक अग्रेजी ताल-सुर पर नाचने लगी है। चाहे इन वृद्ध पण्डितो की आलोचना को ले लीजिए, या भारतीय राष्ट्र की विशुद्धता के वकीलो के लेख और व्याख्यान या धार्मिक और दार्शननिक मतवादो की व्याख्याएँ, या मासिक और सामयिक साहित्य—सर्वत्र सुर बदल गया है, अग्रेजी ढग का अनुकरण हो रहा है और हमारा साहित्य निश्चित रूप से प्राचीनो की निर्धारित नियमावली से अलग हट गया है। यह तथ्य है, इसे अस्वीकार नही किया जा सकता।

लेकिन फिर भी साहित्य के उपरिलिखित रूप मे जो परिवर्तन हुआ है, वह उसके अभ्यन्तर रूप को देखते हुए वहुत मामूली है। साहित्य का स्पिरिट ही बदल गया है। मनुष्य की वैयक्तिकता ने निश्चित रूप से साहित्य मे स्थान पाया है। नारी ने अपने समाधानाधिकार के दावे के साथ साहित्य मे प्रवेश किया है और दृढ तथा उदात्त कण्ठ से पिछली शताब्दी की कल्पित अवास्तविक नारी-मूर्ति के चित्रण का प्रतिवाद किया है। साहित्य अनजान मे इस कल्पना से दूर हट गया है। वह दिन अव जाता रहा है जब प्रकृति सिर्फ उद्दीपन भाव के रूप मे, या केवल सजावट के रूप मे चित्रित की जाती थी और यदि नही गया है, तो जाने की तैयारी मे है। आज प्रकृति के साथ साहित्य का रिश्ता आलम्बन का रिश्ता है, उद्दीपन का नही। आधुनिक कविता मे प्रकृति मे आध्यात्मिकता का भी आरोप देखा गया। ईश्वर का स्थान आज मानवता ने ले लिया है, पूजन-भजन के स्थान पर आज पीडित मानवता की सहायता और हमदर्दी प्रतिष्ठित हो चुकी है। प्राचीन धार्मिक विश्वासो की रूढियो के हिल जाने के कारण आज के साहित्यिक ने ससार को नई दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया है और यूरोपियन साहित्य की रहस्य-भावना क्रमश उसे अपनी ओर खीचने लगी है। प्रत्येक क्षेत्र मे ऐतिहासिकता की प्रतिष्ठा इस बात का पक्का सबूत है कि भारतीय चिन्ता अपना पुराना रास्ता केवल छोड ही नही चुकी है, भूल भी गई है।

ऊपर की कहानी एक जाति के बनने या बिगडने की कहानी है। एक मामूली वार आश्चर्य होता है उस भाषा की अपूर्व ग्राहिका-शक्ति पर, जो पचीस बरस के अरसे मे इतना ग्रहण कर सकती है—नही, इतना परिवर्तन स्वीकार करके भी निर्विकार-सी वनी रह सकती है! और फिर आश्चर्य होता है उस जाति पर जो इतनी जल्दी इतना भूल सकती है! आज का हिन्दी-साहित्य हमारे लिए इतना निकट है कि हम उसको ठीक-ठीक नही देख सकते। साख्यकारिका मे बताया गया है कि अत्यन्त दूर और अत्यन्त नजदीक ये दोनो ही अवस्थाएँ प्रत्यक्ष की उपलब्धि मे बाधक है। फिर विविध परिवर्तनो के आलोडन-विलोडन से इसकी ऊपरी सतह कुछ ऐसी फेनिल हो गई है कि नीचे की गहराई साफ नजर नही आती। पर हम चाहे जितने भी उन्नत या अवनत हो गये हो, चाहे जितना भी आगे या पीछे हट आये हो, जो वात सर्वाधिक स्पष्ट है, वह है हमारी अनुकरणक्षमता। हमने अन्धाधुन्ध अनुकरण किया है, अच्छा-बुरा जो कुछ मिला है, उसे उदरस्थ करने की चेष्टा की है, सत्-असत् जो कुछ अपना था, सव छोडते और भूलते गये है। शायद हम ऐसा करने को वाध्य थे, शायद यही स्वाभाविक है, पर जिस त्रुटि को कोई भी वर्दाश्त नही कर सकता वह यह है कि हमने अपनी वह सवसे वडी सम्पत्ति खो दी है, जिसने भारतीय साहित्य को, उसके सम्पूर्ण दोष-त्रुटियो के वाद भी, ससार के साहित्य मे अद्वितीय वना रखा था। वह सम्पत्ति है—सयम, श्रद्धा और निष्ठा।

इस अनन्य-साधारण गुण के अभाव मे कई जगह हमारी वैयक्तिकता साहित्य मे गलदश्रु-भावुकता से आरम्भ करके हिस्टीरिक प्रमाद तक का रूप धारण करती जा

रही है, प्रकृति का आलम्बन थोथी बकवाद और शून्यगर्भ प्रलाप-वाक्यो के रूप मे प्रकट हो रहा है, व्यक्तिगत प्रेम-चर्चा विज्ञापनबाजी-सी मालूम होती है और मानवता के प्रति 'अर्पित श्रद्धाजलि' रटी हुई सूक्तियो का आकार ग्रहण कर गई है। हमने ससार को नई दृष्टि से देखा जरूर है, पर साधना और सयम के अभाव से हमारी दृष्टि व्यापक नही हो सकी है। नकल की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढती जा रही है। इसके अपवाद भी है और आशा का कारण इन अपवादो की बढती हुई सख्या ही है।

४

सही बात, जैसा कि रवीन्द्रनाथ ने कहा है, शायद यह है कि—"यूरोप का साहित्य और यूरोप का दर्शन मानस-शरीर को सहला नही देता, केवल धक्का मार देता है। यूरोप की सभ्यता चाहे अमृत हो, मदिरा हो, या हलाहल हो, उसका धर्म ही है मन को उत्तेजित करना, उसे स्थिर न रहने देना। इसी अग्रेजी सभ्यता के सस्पर्श से हम समूचे देश के आदमी जिस किसी एक दिशा मे चलने के लिए तथा अन्य लोगो को चलाने के लिए छटपटा उठे हैं। सौ बात की एक बात यह कि हम उन्नति-शील हों या अवनतिशील, लेकिन हम सब गतिशील जरूर है—कोई स्थितिशील नही।" हिन्दी के साहित्यिक भी गतिशील है, पर हजारो वर्ष की पुरानी सम्पत्ति को छोड देने के कारण हमारी गति सदा वाछित दिशा की ओर ही नही जा रही है। फिर भी इस बात को कोई अस्वीकार नही कर सकता कि हम एक जीवित जाति के सस्पर्श मे आये है और जीवन के आघात से ही जीवन की स्फूर्ति होती है। हजारो वर्ष के सुपुप्त देश को जगाने मे भी कुछ समय लगेगा। आज की गतिशीलता वाछित दिशा मे हो या अवाछित दिशा मे, वह हमारे जागरण का निश्चित सबूत है। जो लोग इसे आशका और भय की दृष्टि से देखते है, वे गलती करते है। उन्हे याद रखना चाहिये कि 'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्' और जो लोग इसे आत्यन्तिक उन्नति समझ-कर झूमने लगते हैं, वे और भी गलती करते है, क्योकि उन्हे महसूस करना चाहिए कि सभी पुरानी चीजे सड़ा ही नही करती।

एक दूसरी महत्त्वपूर्ण सम्पत्ति भी है, जिसे हमने नवीनता के नशे मे छोड दिया है। वह है हमारी सुदीर्घ साधनालब्ध दृष्टि। अपने काव्य के अभिधेय अर्थो की सीमा पार करके जिस प्रकार हमारा कवि एक अन्य अर्थ को ध्वनित करता था, उसी प्रकार वह इस ठोस रूपावरण जागतिक व्यापारो के भीतर भी एक रूपातीत सत्य को देखा करता था, हमारे कहने का मतलब यह नही है कि वह कविता मे फिलासफी झाडा करता था—यह काम तो हम लोग अब करने लगे है, बहुत हाल मे,—हम केवल यही कहना चाहते है कि जिस प्रकार अर्थ मे, उसी प्रकार परमार्थ मे भी वह एक ठोस रूप के परे की वस्तु—रस—को देखा करता था। इसीलिए हजार बन्धनो के भीतर रहकर भी वह मंगल की सृष्टि कर सकता था। अब इस युग मे, जिस प्रकार हमने

अन्य विपयो ने यूरोपियन कला का अनुकरण किया है, उसी प्रकार काव्य के क्षेत्र मे भी हम अभिव्यक्ति को प्रधानता देने लगे है, व्यजना को हमने छोड और भुला दिया है। हम रूप की वास्तविकता की ओर प्रलुब्ध भाव से दौड पडे है, परन्तु अरूप की वास्तविकता हमसे दूर हट गई है। अनित्य का चित्रण हम सफलता के साथ करने लगे है, पर उसमे निहित शाश्वत का चित्रण हमारे साध्य के वाहर हो गया है। प्रो० लेवी ने कहा था कि कला के क्षेत्र मे भारतीय प्रतिभा ने ससार को एक नूतन और श्रेष्ठ दान दिया था, जिसे प्रतीक-रूप से 'रस' शब्द के द्वारा प्रकट कर सकते है और जिसे हम वाक्य मे इस प्रकार कह सकते हैं कि कवि अभिव्यक्त (express) नही करता, व्यग्य या ध्वनित (suggest) करता है। आज हमने अपने इस श्रेष्ठ दान को भुला दिया है और इसी के फलस्वरूप काव्य और आख्यायिका के क्षेत्र मे कुरुचि और जुगुप्सामूलक रचनाओ की अधिकता हो गई है। फिर भी हम कवि के साथ आश्वस्त हो सकते हैं, क्योकि—"दूर देश का मलयसमीर देशान्तर के साहित्य-कुज मे पुष्पोत्सव का ऋतु लाने मे समर्थ हुआ है, इस वात का प्रमाण इतिहास मे है। जहाँ से हो और जैसे भी हो, जीवन के आघात से जीवन जाग उठता है, मानवचित्त के लिए यह चिरकाल के लिए एक वास्तविक सत्य है।"

५

हाल ही मे हिन्दी कविता गत पन्द्रह-वीस वर्षो की परम्परा से भी अलग होने लगी है। यह अलगाव मुख्यत वक्तव्य-विपय मे स्पष्ट हुआ है। असहयोग आन्दोलन के वाद से खडी वोली की कविता मे उन्नीसवी शताब्दी के अँग्रेजी कवियो का प्रभाव उत्तरोत्तर वढता रहा है। इस श्रेणी के कवियो ने वाह्य जगत् को अपने अन्तर के योग मे उपलब्ध किया था। कवि जगत् को अपनी रुचि, अपनी कल्पना और अपने सुख-दु खो मे गुँथा हुआ देखता था और रचना-कौशल से उसका व्यक्ति-जगत् पाठक का उपभोग्य हो उठता था। यूरोपीय महायुद्ध के वाद से इस विशेप दृष्टि मे वहुत परिवर्तन हो गया है। वैसे तो परिवर्तन के लक्षण वहुत पहले से ही दृष्टिगोचर हो रहे थे, पर महायुद्ध की कठोरता, क्रूरता और घिनौनेपन ने यूरोपीय कवि के अन्दर वडी तीव्र प्रतिक्रिया का भाव ला दिया। इधर की हिन्दी कविता मे अप्रत्यक्ष रूप से इस युद्धोत्तरकालीन प्रतिक्रिया का प्रभाव भी दिखाई पडा है। इधर जो परिवर्तन हिन्दी कविता मे अप्रत्यक्ष रूप से दिखाई दिया है वह युद्धोत्तरकालीन काव्य के प्रभाववश या अनुकरण करने की चेप्टावश नही, वल्कि आधुनिक युग के विचारो के कारण हुआ है। पिछले पचीस-तीस वर्षो की हिन्दी कविता मे, उसकी सैकडो वर्ष की परम्परा के विरुद्ध वैयक्तिकता का अवाध प्रवेश हुआ है। चाहे कवि कल्पना के द्वारा इस जगत् की विसदृशताओ से मुक्त एक मनोहर जगत् की सृष्टि कर रहा हो या चिन्ता द्वारा किसी अज्ञात रहस्य के भीतर प्रवेश करने की चेप्टा कर रहा हो, या अपनी अनुभूति

के बल पर पाठक के वासनान्तर्विलीन मनोभावो को उत्तेजित कर रहा हो,—सर्वत्र उसकी वैयक्तिकता ही प्रधान हो उठती रही है। अत्यन्त आधुनिक कवि इस भावुकता को पसन्द नही करता। वह वस्तु को आत्म-निरपेक्ष भाव से देखने को ही सच्चा देखना मानता है। यह वात उसके निकट सत्य नही है कि वस्तु को उसने कैसा देखा, वल्कि यह कि वस्तु उसके बिना भी कैसी है। इस वैज्ञानिक चित्तवृत्ति का प्रधान आनन्द कौतूहल मे है, उत्सुकता मे है, आत्मीयता मे नही। और जैसा कि इस विषय के पण्डितो ने बताया है, विश्व को व्यक्तिगत आसक्त-भाव से न देखकर अनासक्त और तद्गत भाव से देखना ही आधुनिक दृष्टिकोण है। हाल के बहुत-से हिन्दी कवियो ने जगत् को इस दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। इसी दृष्टिकोण को उन्होने रूप से भाव की ओर जाना कहा है। इसके विरुद्ध कल तक वे भाव से रूप की ओर आने का ही प्रयत्न करते थे।

कविवर सुमित्रानन्दन पन्त की कविताओ मे इस निर्वैयक्तिक दृष्टिकोण का सबसे अधिक प्रकाश हुआ है। उनके द्वारा सम्पादित 'रूपाभ' नामक मासिक-पत्र मे इस प्रकार बाह्य जगत् को तद्गत और अनासक्त भाव से देखने का प्रयत्न करने वाले कवियो की बहुत-सी कविताएँ प्रकाशित हुई थी, किन्तु यह समझना ठीक नही कि इस प्रकार के कवियो मे कोई एक सामान्य प्रवृत्ति ही दिखाई पडी है। छोटी-मोटी ऐसी अनेक प्रवृत्तियाँ बीज-रूप से दृष्टिगोचर हुई है जो भविष्य मे निश्चित और विशेष आकार धारण कर सकती है। उनका मूल उद्गम भी सर्वत्र एक नही और आपातत एक जैसी दिखाई देने पर भी उनका भावी विकास भी एक रूप मे ही नही होगा। नीचे कुछ विशेष प्रवृत्तियो का उल्लेख किया जाता है।

साहित्य मे समाजवादी सिद्धान्त के बहुल प्रचार से हो या प्रान्तीय स्वायत्त-शासन की प्रतिक्रिया से हो, राष्ट्रीय भाव के कवियो मे से अधिकाश ने भारतमाता के स्थान पर किसानो और मजदूरो का स्तव-गान आरम्भ किया है। इन स्तव-गायको के सिवा बहुत से ऐसे युवको ने भी, जो भविष्य मे चमक सकते है, गरीबो, मजदूरो और किसानो के सम्बन्ध मे कविताएँ लिखी है। इन कविताओ की सख्या वर्गीकरण और विवेचना के लिए पर्याप्त नही है, फिर भी इनमे चार प्रकार की प्रवृत्तियाँ स्पष्ट ही लक्षित हो रही है। वे चार प्रकार के कवि ये है—(१) पहले वे लोग जो स्वय गरीबी का जीवन बिता चुके या बिता रहे है अथवा गरीबो मे हिल-मिलकर उनके सुख-दु खो को गाढ भाव से अनुभव कर चुके है। ऐसे कवियो मे गरीबो या शोषितो के प्रति हमदर्दी की अपेक्षा पूँजीपतियो और जमीदारो या शोषको के प्रति प्रतिशोध और विक्षोभ के भाव ही अधिक प्रकाशित हुए है। इस श्रेणी के कवि बिहार मे अधिक दिखाई दे रहे है। (२) दूसरे वे जो वर्तमान सामाजिक बुराइयो को ग्रथ-गत ज्ञान के द्वारा या आत्म-चिन्तन के द्वारा समझने की कोशिश करके इस नतीजे पर पहुँचे है कि आर्थिक वितरण की विषमता ही समस्त दोषो का मूल कारण है। इन्होने बुद्धि द्वारा विषय की उपलब्धि की है, इसलिए इनकी भाषा मे आक्रामक गुण नही है, पर ये

मध्यश्रेणी के उन लोगो को अपने विचारो के अनुकूल बना लेने की शक्ति रखते है जिन्हे समाज के अत्यन्त निचले और उपेक्षित स्तरो का प्रत्यक्ष अनुभव नही है। (३) तीसरे वे हैं, जिन्होने हवा मे उडते हुए विचारो को पकडकर छन्द के फ्रेम मे बाँधा है। इनमे अधिकतर कवि-सम्मेलनो के वे अखाडेबाज कवि है जो प्रत्येक महत्त्वपूर्ण विषय का कारण किसानो और मजदूरो को ही बताते है। (४) चौथी श्रेणी के कवि गरीबो की ओर मानवता के विचार से आकृष्ट हुए है। वे उन्हे शोषित समझकर शोषको के विरुद्ध पाठक को उत्तेजित करने के लिए नही बल्कि उनके कष्टों का वर्णन कर मनुष्य की सत्प्रवृत्तियो को उत्तेजित करने के लिए कलम उठाते है। कभी-कभी एक ही कवि मे इनमे की एकाधिक प्रवृत्तियाँ दृष्ट हुई है। अभी ये प्रवृत्तियाँ ऐसी कोमलावस्था मे हैं कि उनके प्रतिनिधि कवियो को ढूँढ निकालना कठिन है। पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रथम दो मे से अन्यतर का प्रकाश कई कवियो मे अधिक स्पष्टता के साथ हुआ है।

कुछ छिटके-फुटके प्रयत्न उस जाति की कविता के लिए भी हुए है जिन्हे प्रभाववादी सम्प्रदाय की कविता कहते है। इस श्रेणी के कवि वक्तव्य विषय की प्रत्येक छोटी-मोटी विशेपताओ को या उनके सौकुमार्य आदि विशेष धर्मो को अनावश्यक विस्तार के साथ वर्णन करने के पक्षपाती नही है। वे कहते है कि कला की मनोहारिता को तूल देना व्यक्तिगत मोह का लक्षण है। वक्तव्य-वस्तु की रमणीयता नही, बल्कि उसकी यथार्थता वर्णनीय होती है। उसका 'कॅरेक्टर' उसकी समग्रता मे से प्रकाशित होता है, विशेषता मे नही। इस समग्रता को प्रस्फुटित करने की अभी चेष्टा-भर ही हुई है, सफलता कम ही मिली है।

इन नवीनतम प्रवृत्तियो के साथ-ही-साथ पुरानी कल्पना-प्रधान और चिन्तन-मूलक प्रवृत्तियाँ भी विद्यमान है। श्री निराला ने 'तुलसीदास' के द्वारा एक नवीन मार्ग पर चलने की सूचना दी है। अपेक्षाकृत तरुण कवियो मे अनुकरण की प्रवृत्ति खूब दिखाई पडी है। अधिकाश अनुकरण प्रसादजी, पन्तजी और महादेवीजी की कविताओ का हुआ है। कुछ अश तक विवशतामूलक नैराश्य भावनाओ और तज्जन्य क्षणिक आनन्द के यथा-लाभ-सन्तोपवाद के अनुकरण की भी चेष्टा हुई है। ऐसे तरुणो की यह ग्राहिका शक्ति मौलिकता के अभाव की निशानी है। इसका नियोग अन्य क्षेत्रो मे होता तो साहित्य के लिए मगल की बात होती।

६

दो कारणो से बहुत हाल मे कविता की भाषा और शैली मे भी परिवर्तन हुआ है। एक विषय को जब अनासक्त और तद्गत भाव से देखा जाता है तब स्वभावतः ही भावुकता को स्थान नही रह जाता। ऐसी अवस्था मे कवि वैज्ञानिक की भाँति गद्यमय भाषा लिखने लगता है। दूसरे, विषय की नवीनता को सम्पूर्ण रूप से अनुभव कराने

के लिए कवि लोग जान-बूझकर ऐसी भाषा और शैली का व्यवहार करते है जो पाठक के मन को इस प्रकार झकझोर दे कि उसपर से प्राचीनता के सस्कार झड जायँ। वे ऐसी उपमाओ, ऐसे रूपको और ऐसी वक्रोक्तियो का व्यवहार करते है जो केवल नवीन ही नही, अद्भुत भी जँचे। इस श्रेणी का कवि अनायास ही, अपनी प्रिया के प्रेम की महत्ता दिखाते समय, कह सकता है—हे प्रिये, तुम सूर्य से भी बडी हो, समुद्र से भी, मेढक से भी, कुकुरमुत्ते से भी। यहाँ मेढक और कुकुरमुत्ता केवल पाठक के चित्त को झकझोरने के लिए ही व्यवहृत होगे, यद्यपि उनका अन्तर्निहित तत्त्व यह हो सकता है कि समुद्र और सूर्य अपनी महत्ता मे जितने सत्य है उतने ही सत्य मेढक और कुकुरमुत्ते भी है। ठीक इसी प्रकार की उक्तियाँ हिन्दी मे अभी नही हुई है पर इस जाति की बहुत हुई है। कवि महानगरी की सडको पर घूमता हुआ उसकी अट्टालिकाओ मे बैठी हुई प्रतीक्षा-परायण नवोढा या पार्कों मे उद्विग्न-भाव से टहलते हुए प्रेमी को नही देखता, बल्कि गन्दी नालियो और कुष्ठ जर्जर पीपवाही शव-कल्प शरीरो को देखता है। सिद्धान्तत उसकी दृष्टि मे नवोढा या उद्विग्न प्रेमी अपने-आप मे जितने सत्य है, उतने ही सत्य गन्दी नालियाँ और दुर्गन्धित शरीर भी है। परन्तु दूसरे का उल्लेख वह झकझोर देने के लिए और अपने नवीन विचारो को पूरे जोर से हृदयगम करने के उद्देश्य से ही करता है। इन दो बातो के सिवा जिन निर्वैयक्तिक कवियो का लक्ष्य अपनी कविता को अपढ जनता तक पहुँचाना है, उनकी भाषा मे भी सरलता की प्रवृत्ति दिखाई दी है। पुराने रास्ते पर चलने वाले कवियो की भाषा मे और कोई खास परिवर्तन तो नही हुआ पर लाक्षणिक वक्रता का ह्रास होता हुआ जान पडता है।

आधुनिक हिन्दी कविता की भाषा पर विचार करते समय जो बात सबसे अधिक उल्लेख-योग्य है वह यह है कि अत्यधिक प्रचारित और विज्ञापित होने पर भी वह अधिकाश मे हिन्दी जानने वाले पाठको के बहुत नज़दीक नही आ सकी है। इसका कारण यह जान पडता है कि कवियो की प्रेरणा अधिकाश मे विदेशी माध्यम के द्वारा आती है और जो शास्त्र आधुनिक युग के मनुष्य को प्रभावित कर रहे है उनकी बहुत कम चर्चा हिन्दी भाषा मे हुई है। इस युग के मनुष्य की विचार-धारा मुख्यत दो यूरोपियन आचार्यो से बहुत दूर तक प्रभावित है। ये है, मार्क्स और फ्रायड। एक ने बहिर्जगत् के क्षेत्र मे और दूसरे ने अन्तर्जगत् के क्षेत्र मे क्राति ला दी है। इनके विचारो और ग्रथो का हिन्दी मे बहुत कम प्रचार हुआ है, परन्तु इनके द्वारा प्रभावित साहित्य का निर्माण होने लगा है। फिर मानवता की नई कल्पना भी, जिसने आधुनिक साहित्य मे ईश्वर का स्थान ले लिया है, अधिकाश मे हिन्दी के लिए नई चीज है। यह प्राचीन विश्वमैत्री के आदर्श से पूर्णत. भिन्न है जिसमे 'आब्रह्मस्तम्भपर्यन्त' सर्वभूत के हित की चिन्ता रहती थी। इन और अन्य प्रेरणामूलक विचारो का यथेष्ट प्रचार न होने से केवल हिन्दी समझने वाली जनता के लिए इस कविता का रसास्वाद करना कठिन हो गया है। इसलिए अग्रेजी साहित्य से परिचित सहृदय जन, जिन लोगो को बहुत उच्च कोटि के कवि मानते है, उन्हे ही उस साहित्य से अपरिचित लोग 'छायावादी' कहकर

और अबोध-गम्य मानकर उपेक्षा करते है। हाल मे ही 'इम्प्रेशनिस्ट' कहकर व्यग्य करने की प्रवृत्ति भी परिलक्षित हुई है। यह प्रवृत्ति कभी-कभी उच्च कोटि की पत्रिकाओ मे भी प्रकाशित होती देखी गई है। काव्य-पुस्तको मे लम्बी-लम्बी भूमिकाओ द्वारा कवि बेबसी के साथ अपने और अपने पाठको के बीच के व्यवधान को भरने की चेष्टा करता है। यह चेष्टा कभी-कभी उपहासास्पद अवस्था तक पहुँच गई है। लेकिन असल मे इस व्यवधान को आधुनिक शास्त्रो के प्रचार द्वारा ही भरा जा सकता है।

वैयक्तिकता और भावुकता के ह्रास के साथ-ही-साथ और इन्ही के परिणामस्वरूप इधर पिछले वर्षो की तुलना मे सस्ते और भाव-प्रवण गीतो की बहुत कमी हुई है। रच-नाओ मे मुश्किल से दो-एक गीत मिलेगे। परन्तु कुछ लोग इस दिशा मे अग्रसर होकर अपने लिए नये क्षेत्र की सूचना दे रहे है। जिन कवियो ने इस नये रास्ते पर चलना पसन्द नही किया है, उनमे भी गीत लिखने की प्रवृत्ति कम ही दिखाई पडी है।

७

जैसा कि ऊपर कहा गया है, वैयक्तिकता का ह्रास और वक्तव्य-वस्तु के याथार्थ्य की वृद्धि ही इधर की प्रधान उल्लेखनीय घटना है। इस प्रवृत्ति का परिणाम ध्वनि-मूलक रचनाओ की प्रधानता ही होनी चाहिए। पिछली व्यक्तित्वप्रधान कविताओ मे कवि अपने अनुराग-विराग का इतना अधिक गाना गाता था, अपने भीतर स्थायी-सचारी भावो का इतना अधिक वर्णन करता था (अब भी यह प्रवृत्ति चली नही गई है) कि उसका वक्तव्य अर्थ बहुत-कुछ वाच्य के रूप मे ही प्रकट होता था, उसमे व्यञ्जनत्व की गुजायश बहुत कम रह जाती थी।

आज जबकि कवि अपनी ओर से यथासम्भव कम कहकर वस्तु के याथार्थ्य को समझने की चेष्टा कर रहा है, व्यग्यार्थ का प्रधान होना ही उचित था। युद्धोत्तर-कालीन यूरोपीय काव्य मे, कहते है, ऐसा ही हुआ है। परन्तु हिन्दी मे ऐसा अभी नही हो पाया है। यहाँ काव्य का व्यग्य गुणीभूत हो गया है। इस अत्यन्त सीमित काल की कुछ परिमित कविताओ मे, जो अभी नितान्त भ्रूणावस्था मे ही है, यह बात चिन्ता-जनक नही है। अभी कवि के समस्त पाठ्य-निरीक्षणो के भीतर से आधुनिक युग की हडबडी, उसकी दीनता और उसके दुख प्रकाशित नही हो पाये है। अधिकाश कविताएँ चाहते हुए भी यह व्यग्य करने मे असमर्थ रही है कि आज के युग का व्यक्ति वर्ग-सघर्ष से ऐसी बुरी तरह से पिस गया है कि उसे रोने-हँसने की या दुलार-प्यार जताने की फुरसत भी नही। फिर भी इतनी आशा तो की ही जा सकती है कि इस प्रवृत्ति की बढती के साथ-ही-साथ कविता मे ध्वनिप्राणता की मात्रा बढती ही जाएगी। लेकिन ध्वनि-प्राणता बढे या घटे, जो बात निश्चित है वह यह है कि प्राचीनो द्वारा निर्धारित रसो की ध्वनि की सम्भावना क्रमश कम होती जा रही है। ये कविताएँ किसी स्थायी भाव को नही बल्कि नितान्त स्थायी मनोभावो को उत्तेजित

करती है। ऐसा जान पडता है कि आगे चलकर इनमे सघर्ष की, असन्तोष की और असामजस्य की ध्वनि प्रधान होती जाएगी और सहयोग की, सन्तोष की और सामजस्य की ध्वनि क्रमशः क्षीण होती जाएगी। काल-प्रवाह हमे इसी ओर लिये जा रहा है। ऊपर हम कविता की चर्चा ही प्रधान रूप से करते आये है किन्तु पिछले पचीस-छब्बीस वर्षों मे केवल कविता ने ही नवीन रूप ग्रहण किये हो ऐसी बात नही है। यह समय हिन्दी की चौमुखी उन्नति का है। प्राय प्रत्येक क्षेत्र मे प्रतिभाशाली लेखको का उदय हुआ है। सक्षेप मे इस विकास की चर्चा कर लेनी चाहिए।

८

सन् १९२० ई० भारतवर्ष के लिए युगातर ले आने वाला वर्ष है। इस वर्ष भारतवर्ष का चित्त पुराने सस्कारो को झाडकर नवीन मार्ग के अनुसन्धान मे प्रवृत्त हुआ था। नवीन आशा और नवीन आकाक्षा के प्रति जैसा अडिग विश्वास इस समय दिखा दिया वह शताब्दियो से अपरिचित-सा हो गया था। इसके पहले का भारतवर्ष यद्यपि आत्म-चेतना से शून्य नही था पर उसका चित्त पूर्ण मुक्त नही हुआ था। धर्म और समाज के क्षेत्र मे उन दिनो आर्यसमाज का जबर्दस्त प्रभाव था। आर्यसमाज ने भारतीय चिन्ता को बहुत झकझोर दिया था पर प्राचीन आप्त-वाक्य को प्रमाण मानने की प्रवृत्ति को उसने और भी अधिक प्रतिष्ठित कर दिया। इसका परिणाम सभी क्षेत्रो मे देखा गया। साहित्य के क्षेत्र मे इस समय तक प्रमाण-ग्रन्थो के आधार पर विवेचना करने की प्रथा चल पडी थी। किसी कवि के काव्य के उत्कर्ष या अपकर्ष का निर्णय करने के लिए अलकार-ग्रन्थो के प्रमाण ढूँढे जाते थे। पुराने कवियो ने ऐसा कहा है या नही, इस बात पर विचार किया जाता था, पुराने शास्त्रो मे ऐसा कहना अच्छा समझा गया है या बुरा, इस पर शास्त्रार्थ किया जाता था और तब कही अच्छाई या बुराई पर फैसला दिया जाता था। नई शिक्षा ने भी हमारा आप्त-वाक्यो वाला सस्कार ज्यो-का-त्यो रहने दिया था। मैथ्यू आरनाल्ड और कार्लाइल भी हमारे लिए प्रमाण कोटि मे उसी प्रकार आ गये थे जिस प्रकार पुराने आलकारिक आचार्य। नयी शिक्षा की एक प्रतिक्रिया यह भी हुई थी कि हर बात मे 'हमारे यहाँ ऐसा लिखा है' कहकर अपने देश के किसी आचार्य का मत, किसी आधुनिक लेखक के मत से उसकी तुलना करके, श्रेष्ठ बताया जाता था। आधुनिक लेखको को प्रमाणरूप मे उद्धृत करने की प्रवृत्ति तो हास्यास्पद रूप धारण कर चुकी थी। बहुत से बगाली और उर्दू लेखको के मत भी बिना समझे-बूझे उद्धृत किये जाते थे। उद्धृत करना यह उन दिनो गुण माना जाता था। किस साहब ने हमारी भाषा और हमारे साहित्य के बारे मे कौन-सी स्तुति लिखी है, वह बडे आदर के साथ याद किया जाता था। अत्यन्त मनोरजक बात यह थी कि कालिदास को 'भारतवर्ष का शेक्सपियर' कहने मे हम गर्व अनुभव करते थे, क्योकि किसी श्वेताग पडित ने ऐसा लिख दिया था। तुलसीदास, सूरदास, देव

और बिहारी के साथ भी शेक्सपियर की एकाध उक्ति उद्धृत करके हिन्दी कवियो का उत्कर्ष दिखाया जाता था।

भारतवर्ष मानो दीर्घ निद्रा के बाद उठकर नवीन आलोक की ओर देख रहा था, कभी उसके मन मे सन्देह का उदय होता था, कभी आशा का सचार होता था। हर नई वस्तु को देखने के बाद वह एक बार अपनी पुरानी याद्दाश्त पर ज़ोर डाल देता था, वह जान लेना चाहता था कि जो कुछ वह नया देख रहा है वह उसके पुराने अनुभवो के विरुद्ध तो नही है। पुराना वैभव उसे अभिभूत किए हुए था और नवीन बातो को अस्वीकार करने का कोई उपाय न था। इन दिनो प्राय प्रतिवर्ष भूगर्भ के नीचे से कोई-न-कोई खण्डहर निकलकर भारत की प्राचीन समृद्धि की स्मृति को ताजा कर देता था, कोई-न-कोई पुरानी पोथी भारतीय मनीषा की उत्कृष्टता के प्रति दुनिया को आस्थावान् बना देती थी। आज चीन से तो कल जावा से आकर भारतीय सतो और आचार्यो के अपूर्व धैर्य, उत्साह और पाडित्य की कहानी इस देश के शिक्षितो को अभिभूत कर जाती थी। प्राचीन गौरव रह-रहकर मानो पृथ्वी के नीचे से धक्का मारकर धरातल पर आ जाता था और पराधीन, दुर्गत भारत के चित्त मे उदासी और गर्व दोनो एक साथ भर जाता था। उधर विज्ञान नित्य नवीन आश्चर्य ले आकर नवीन के प्रति उसको आस्थायुक्त बना रहा था।

इस द्विमुख-प्रवृत्ति का निदर्शन उन दिनो का साहित्य है। इस युग का भारत महावीरप्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिह उपाध्याय और मैथिलीशरण गुप्त का भारतवर्ष है—पुराने गौरव के प्रति अत्यधिक श्रद्धावान् और नवीन ज्ञान के प्रति भी आस्थायुक्त। इस युग के साहित्य का सबसे बडा गुण यह है कि अपने-आपको पहचानने मे पूर्ण प्रयत्नशील है, पर दोष यह है कि हर एक बात मे किसी आप्त वाक्य पर अवलबित है। किसी वस्तु का मूल्य उसकी अपनी योग्यता के बल पर ही आँकने की प्रवृत्ति उन दिनो शिशु-अवस्था मे ही थी। इस देश के साहित्यिक उन दिनो निश्चित रूप से आप्त-वाक्यो से चालित हो रहे थे। ये 'आप्त' देशी भी हो सकते थे और विदेशी भी, नये भी हो सकते थे और पुराने भी। इनके 'आप्तत्व' के लिए भी खोज-पूछ करना उन दिनो आवश्यक नही माना जाता था। हमारे शिक्षित वर्ग का अधिकाश उन दिनो यूरोपीय मनीषा की श्रेष्ठता स्वीकार कर चुका था।

अचानक यूरोप का प्रथम महायुद्ध आँधी की तरह आया और यूरोपीय श्रेष्ठता को अपने प्रचण्ड वेग मे बहा ले गया। देखा गया कि सारी बडी-बडी बातो के बावजूद भी मनुष्य सर्वत्र मनुष्य ही है। यूरोप के राष्ट्रीय सघटन वस्तुत दुनिया को लूटने के लिए परस्पर प्रतिस्पर्धी है। हम यह समझे बैठे थे कि हममे सघटन की क्षमता ही नही है। यह भ्रम टूट गया। यूरोपीय राष्ट्रो के सघटित दलो मे जो एकता है वह उस एकता से मिलती-जुलती है जो ठगो मे पाई जाती है। दुनिया के शोषण के लिए ही इनके विशेषज्ञो ने नाना प्रकार की राजनीतिक और आर्थिक नैतिकता की 'बोलियाँ' बना रखी है। इतिहास को देखने की इनकी अपनी विशेष दृष्टि है, नृतत्त्व-विद्या को

समझने के अपने तरीके है। और सब-कुछ एक विशेष प्रकार की स्थिति बनाये रखने के उद्देश्य से लिखा गया है। साहित्य भी इस दृष्टि से एकदम अस्पष्ट नही है। भारतवर्ष ने बहुत दिनो के बाद पहली बार अनुभव किया कि हाथ पसारना लज्जा की बात है। ज्ञान के क्षेत्र मे भी वही पाने का अधिकारी होता है जो देने का सामर्थ्य रखता है। हर क्षेत्र मे दूसरो का अनुसरण लज्जाजनक है। वही चल सकता है जो अपने पैरो पर खडा हो सकता है, वह नही जो केवल चलने वालो के चलने की नकल करना चाहता है। हमारा अतीत जो अब तक अभिभूत करने वाला साबित हुआ था अब प्रेरणादायक सिद्ध हुआ। पुराने शास्त्रो का महत्त्व इस बात मे नही है कि उनसे आधुनिक विदेशी ज्ञान-विज्ञान की तुलना या आधुनिक व्यक्तियो के उत्कर्ष-अपकर्ष की जाँच की जाय, उनका महत्त्व इस बात मे है कि वे हमारी मानसिक दुर्बलता को झाडकर हममे आत्म-बल का सचार करते है। दुनिया मे हम नौसिखुए नही है। हमने ज्ञान की प्रत्येक शाखा पर स्वतन्त्र दृष्टि से विचार किया है। हम आलसी नही थे, इस समय जैसे है उसी प्रकार बने रहना हमारा स्वाभाविक धर्म नही है। ससार के अन्यान्य देशो की तुलना मे, समय पर विचार किया जाए तो, हम आगे ही रहते आये है। विपत्तियो का सामना हमे पहली बार नही करना पड रहा है। हमारे इतिहास मे सघर्पो और सघातो की विशाल शृखला है। हम बराबर उन सघर्षो मे से तेजोदृप्त होकर निकले है।

हममे स्वतन्त्र उद्भावना-शक्ति की कमी कभी नही रही। दीर्घ निद्रा के बाद भारतवर्ष पूर्ण चैतन्य के साथ जाग पडा। उसने सोचा ससार की जातियो को अपने से श्रेष्ठ समझने की भी आवश्यकता नही है, उनकी नकल करने की भी जरूरत नही है, हम अपना रास्ता आप निकाल लेंगे। १९२० ई० मे भारतवर्ष के मानस मे कुछ इसी तरह की विचारधारा बह रही थी। परन्तु यह समझना भूल है कि अनुध्यात मार्ग सदा अनुध्यात मार्ग होता है। कार्य-क्षेत्र मे उतरने पर नाना भाँति की वस्तु-स्थिति अनुध्यात मार्ग बदलने को विवश करती है। इजीनियर गाडी के चक्को को देखकर गन्तव्य तक पहुँचने का जो हिसाब बताता है वह सडक की ऊबड-खाबड विषमताओ के कारण बाधित होता है। भारतवर्ष जिस रास्ते १९२० ई० मे जाने की सोच रहा था उस रास्ते पूर्ण रूप से नही जा सका। भीतरी कमज़ोरियाँ और बाहरी बाधाएँ कम नही थी। फिर भी इस वर्ष का महत्त्व है और वह यह कि इस बार भारतवर्ष ने अपनी आँखो से दुनिया को देखने का सकल्प किया।

यह काल तीन मोटे विभागो मे बाँट लिया जा सकता है। सन् १९२० से १९३० ई० तक का समय पुराने सस्कारो के प्रति विद्रोह और नवीन सस्कारो के बीजारोपण का समय है। इस काल मे बहुत से पुराने कवि और लेखक अपनी लेखनी चला रहे थे, पर उनमे से बहुत थोडो ने नेतृत्व किया। जिन पुराने पण्डितो और कवियो ने नेतृत्व किया उनमे युगधर्म को पहचानने की अपूर्व क्षमता थी। थोडे ही नाम ऐसे लिए जा सकते है जो १९२० के पहले भी ज्ञात थे और बाद मे भी नेतृत्व के उपयुक्त थे। सबसे प्रमुख ये तीन है—रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द और 'प्रसाद': बाबू

श्यामसुन्दर दास का नाम इस प्रसग मे जान-बूझकर हम छोड रहे है। आगे उनकी चर्चा आयेगी। यहाँ उन लोगो के नाम लिये जा रहे है जो उस विशेष प्रवृत्ति के प्रतिनिधि थे, जो हमारी आलोच्य है, अर्थात् ये लोग पुराने सस्कारो के प्रति विद्रोह और नवीन सस्कारो के वीजारोपण मे सक्रिय भाग लेने वाले थे। इस प्रवृत्ति के और भी कई उन्नायक हुए पर सभी करीव-करीव नये थे। सन् १९२० के पूर्व उनके नाम क्वचित् कदाचित् ही सुनाई पडे थे। काव्य के क्षेत्र मे सियारामशरण गुप्त, निराला, पन्त, महादेवी वर्मा ऐसे ही हैं। उपन्यास के क्षेत्र मे जैनेन्द्रकुमार एकमात्र उल्लेख्य जान पडते हैं।

ऊपर जिन तीन नामो की चर्चा आई है उन्हे दर्जनो नामो से चुन लेने का कारण वताना आवश्यक है। (१) रामचन्द्र शुक्ल हमारे आलोच्य काल के पहले से लिखते आ रहे थे, पर उनकी सर्वोत्तम कृतियाँ इसी काल की रचना है। भारतीय काव्यालोचन शास्त्र का इतना गम्भीर और स्वतत्र विचारक हिन्दी मे तो दूसरा हुआ ही नही, अन्यान्य भारतीय भाषाओ मे भी हुआ या है नही, ठीक नही कह सकते। शायद नही हुआ। अलकार शास्त्र के प्रत्येक अग पर उन्होने सूक्ष्म विचार किया था—शव्द-शक्ति, गुण-दोष, अलंकार-विधान, रस आदि सभी विषयो पर उनका अपना सुचिन्तित मत था। वे प्राचीन भारतीय आलकारिको को खूब समझते थे पर उनका अन्धानुकरण करने वाले नही थे। रामचन्द्र शुक्ल से सर्वत्र सहमत होना सम्भव नही। वे इतने गम्भीर और कठोर थे कि उनके वक्तव्यो की सरसता उनकी बुद्धि की आँच से सूख जाती थी और उनके मतो का लचीलापन जाता रहता था। आपको या तो 'हाँ' कहना पडेगा या 'ना', वीच मे खड़े होने का कोई उपाय नही। उनका 'अपना' मत सोलह आने अपना है। वे तनकर कहते हैं—"मै ऐसा मानता हूँ, तुम्हारे मानने-न-मानने की मुझे परवाह नही।" फिर भी शुक्लजी प्रभावित करते है। नया लेखक उनसे डरता है, पुराना घवराता है, पण्डित सिर हिलाता है। वे पुराने की गुलामी पसन्द नही करते और नवीन की गुलामी तो उनके लिए एकदम असह्य है। शुक्लजी इसी वात मे वडे हैं और इसी जगह उनकी कमजोरी है। यदि किसी को उन्होने एक वार नवीनता की गुलामी करते देख लिया तो फिर दीर्घकाल तक वह उनके अविश्वास का पात्र वना रहा।

(२) प्रेमचन्द हिन्दी कथा-साहित्य की प्रौढता के सवूत है। उन्होने अतीत गौरव का पुराना राग नही गाया। वे ईमानदारी के साथ अपनी वर्तमान अवस्था का विश्लेषण करते रहे। उन्होने अपनी आँखो समाज को देखा था। वे इस नतीजे पर पहुँचे थे कि वन्धन भीतर का है, वाहर का नही। वाहरी वन्धन भी दो प्रकार के है—भूतकाल की सञ्चित स्मृतियो का जाल और भविष्य की चिन्ता से वचने के लिए सगृहीत जड-सभार। एक का नाम है सस्कृति, दूसरे का सम्पत्ति। एक का रथ वाहक धर्म है, दूसरे का राजनीति है। अपने एक मौजी पात्र (प्रोफेसर मेहता) के मुँह से 'गोदान' मे उन्होने कहलवाया है—मैं भूत की चिन्ता नही करता, भविष्य की परवाह

नही करता। भविष्य की चिन्ता हमे कायर बना देती है, भूत का भार हमारी कमर तोड देता है। हममे जीवन की शक्ति इतनी कम है कि भूत और भविष्य मे फैला देने से वह और भी क्षीण हो जाती है। हम व्यर्थ का भार अपने ऊपर लादकर रूढियो और विश्वास तथा इतिहासो के मलवे के नीचे दबे पडे है, उठने का नाम नही लेते।" प्रेमचन्द का यह विश्वास ही उनकी विशेषता है। उन्होने बडी ईमानदारी और गहराई के साथ अपना विशेष दृष्टिकोण उपस्थित किया है।

(३) प्रसाद' ने यद्यपि प्राचीन गौरव का अध्ययन और मनन बहुत अधिक किया था, परन्तु उन्होने अपने समस्त अध्ययन को मनुष्य की दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया। अध्ययन अध्ययन के लिए नही है, मनुष्य के उद्धार और उन्नयन के लिए है। शास्त्र-ज्ञान इसी महान् उद्देश्य की सिद्धि से सार्थक होता है। प्रसाद ने नाटक, काव्य और कहानी-उपन्यास लिखे है। विषय अधिकाश प्राचीन साहित्य से लिये है पर सबको नवीन भारत के बीजारोपण मे विनियुक्त किया है। यह बात ध्यान देने की है कि प्रसादजी ने हमारे आलोच्य काल मे अपनी भाषा और प्रकाशनभगी बदल दी थी।

अब तक हम भाषा के स्वरूप के विषय मे झगड रहे थे। पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे पुरुष और ईमानदार व्यक्ति के हाथो भाषा परिमार्जित और परिष्कृत हो चुकी थी। हिन्दी गद्य सब-कुछ को आत्मसात् और अभिव्यक्त करने की आकाक्षा लेकर आगे बढा। इस काल मे मनुष्य की वैयक्तिकता ने निश्चित रूप से साहित्य मे स्थान पाया। वह दिन सचमुच ही हिन्दी की कविता की मुक्ति का दिन था जब कवि ने परिपाटी-विहित रसज्ञता और रूढि-समर्थित काव्य-कला को साथ ही चुनौती दी। मर्यादा-विषयक अज्ञान और उपेक्षा दोनो ने उसकी मुक्ति मे सहायता दी। यद्यपि वह मुक्त होकर ठीक रास्ते नही गया पर मुक्त वह निस्सन्देह हो गया। पुराने पण्डितो ने झुँझला कर रोष प्रकट किया, मजाक उडाया, भद्दे-भद्दे नाम देकर उसे हतोत्साह करना चाहा, पुराने शास्त्रो के जटिल तर्कों की अवतारणा करके उसे डराना चाहा, पर वह इनसे विचलित नही हुआ। प्रसाद, निराला, पन्त, सियारामशरण गुप्त, महादेवी वर्मा आदि कवियो ने रूढिमुक्त होकर अपनी बात कही। साहित्यकार का ध्यान ईश्वर की ओर से हटकर मानवता की ओर गया। भजन-पूजन के स्थान पर पीडित मानवता के प्रति सहानुभूति का भाव प्रतिष्ठित हुआ। प्रकृति केवल उद्दीपन सामग्री न रहकर मनुष्य की सहधर्मशीला बन गई। प्राचीन धार्मिक विश्वास—कर्मफल की अवश्यम्भाविता, पूर्व और परजन्म आदि—जिसने कवियो को इस ससार को सामञ्जस्यपूर्ण विधान के अनुकूल देखने की दृष्टि दी थी, शिथिल हो गया और कवि प्रत्येक वस्तु को अपनी दृष्टि से देखने का प्रयास करने लगे। पुराने भारतीय साहित्य मे समाज-व्यवस्था के प्रति तीव्र असन्तोष के भाव नही थे, इस काल मे वे जमकर प्रकट होने लगे, परन्तु प्रथम दस वर्षो तक साहित्य मे यह बात अभाव रूप मे ही दिखाई दी। कवि ने प्रश्नभरी दृष्टि से दुनिया को देखा सही, परन्तु उसका अपना विश्वास ऊपर नही आया। सम्भवत वह अब भी उस बीज की भाँति, जो अकुर का

पूर्वरूप होता है, फूल कर केवल फटने की अवस्था मे था।

समाज को सुधारने के लिए जो प्रयत्न थे वे इस काल मे राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त करने की ओर मुड गये। राजनीति ने निश्चित रूप से हमारे समस्त प्रयत्नो को आत्मसात् करना आरम्भ किया। इस वात ने सामयिक समाचारपत्रो मे बहुत बडा परिवर्तन कर दिया। इस काल मे हिन्दी मे कुछ इतने महत्त्वपूर्ण पत्रकार पैदा हुए जो दीर्घकाल तक याद किये जायँगे। बुद्धिगत प्रौढता के साथ-साथ चरित्रगत दृढता ने इन पत्रकारो को बडी सफलता दी। गणेशशकर विद्यार्थी, पराडकर, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, लक्ष्मणनारायण गर्दे और बनारसीदास चतुर्वेदी ऐसे ही पत्रकार हुए।

(४) दूसरा काल सन् १९३० से वर्तमान महायुद्ध के आरम्भ तक माना जा सकता है। इस काल मे असन्तोष ने भी निश्चित रूप ग्रहण किया और साथ ही नवीन रचनात्मक विचारधाराएँ भी उद्भूत हुई। पुरानी सामाजिक व्यवस्था, उसका आर्थिक ढाँचा और उसका धार्मिक आधार नवीन विचारको को अत्यन्त असन्तोपजनक जँचे। नये सिरे से सब-कुछ को सजाने की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर विकसित होती गई। वैयक्तिकता यद्यपि प्रतिष्ठित रही परन्तु अवैयक्तिक अनासक्त दृष्टि से वस्तुओ को देखने की प्रवृत्ति भी वढी। प्रसाद, निराला, पन्त आदि नये कवियो के प्रति जो विरोध-भाव था वह शिथिल होता गया और आगे चलकर उनका सम्मान किसी भी पूर्ववर्ती कवि से अधिक हुआ। यह इस बात का सबूत था कि हिन्दी-भाषी जनता नवीन विचारो को ग्रहण करने के लिए तैयार है। भगवतीचरण वर्मा, बच्चन आदि कवियो को बहुत सम्मान मिला। इन कवियो मे समाज-व्यवस्था के प्रति असन्तोष स्पष्ट रूप से प्रकट हुआ। प्रसाद, महादेवी और पन्त ने इस काल मे अपने नवीन विचारो को मूर्त रूप दिया। सभी नवीन कवियो को एक ही नाम देकर जो गलती की गई थी वह अब प्रकट हुई। कहानी और उपन्यास के क्षेत्र मे जैनेन्द्रकुमार, अज्ञेय, चन्द्रगुप्त, यशपाल आदि ने केवल असन्तोष की भावना को ही नही उकसाया, अपने रचनात्मक सुझाव भी उपस्थित किये। कुछ थोडे-से अपवादो को छोडकर अधिकाश प्रवृत्ति समाजवादी रही। विहार मे 'दिनकर' ने बहुत ही क्रान्तिकारी गान गाये। शुरू-शुरू मे उनकी कविताओ मे युवजनोचित कल्पना का प्राधान्य रहा, पर बाद मे उनकी प्रवृत्ति भी नवयुग के अन्यान्य कवियो के समान ही हो गई। इस काल मे बिहार मे कई प्रतिभाशाली कवियो का प्रादुर्भाव हुआ। 'नेपाली' और आरसीप्रसाद सिंह ने अधिक कीर्ति प्राप्त की। नये नाटककारो मे सेठ गोविन्ददास, लक्ष्मीनारायण मिश्र और 'प्रेमी' ने नये आदर्श उपस्थित किये।

द्वितीय महायुद्ध आरम्भ होने के बाद—विशेपकर रूस के युद्ध-क्षेत्र मे आ जाने के बाद—नवीन साहित्यिको मे मतभेद दिखाई दिया। कुछ दिनो तक हमारे नेताओ मे भी निष्क्रियता का भाव बना रहा। युद्ध अप्रत्याशित नहीं था। परन्तु हमने कम-से-कम साहित्यिको ने—युद्धकालीन कर्तव्य की वात सोची ही नही थी और जब युद्ध शुरू हुआ तो कुछ दिनो तक ऐसा भाव बना रहा जैसे हमे कही भी कुछ सूझ

यद्यपि विज्ञान मे हमारी भाषा ने कुछ नया नही दिया तथापि इस क्षेत्र मे भी अनेक कृति वैज्ञानिक ग्रन्थ लिखते रहे। रामदास गौड, फूलदेव सहाय वर्मा, गोरखप्रसाद, त्रिलोकीनाथ वर्मा, सत्यप्रकाश, महावीरप्रसाद आदि वैज्ञानिको ने भिन्न-भिन्न विषयो की वहुत उपयोगी पुस्तकें लिखी। इस प्रकार आज से पचीस वर्ष पहले हिन्दी ने जो वहुत-कुछ को अपनी आँखो देखने की दृष्टि पाने का यत्न आरम्भ किया था उसमे वह सब-कुछ सफल काम रही। परन्तु यह सत्य है कि अभी तक इन अध्ययनो मे उतनी मौलिकता नही आ पाई है जितनी की आशा की जानी चाहिए। हिन्दी ससार की सर्वाधिक वोली जाने वाली छ-सात भाषाओ मे से है। उसका विस्तार जितना अधिक है उसकी आवश्यकताएँ भी उतनी ही अधिक हैं। जितना कार्य हुआ है वह सन्तोष-जनक विलकुल नही है, पर आशाजनक अवश्य है। हमने युक्त दृष्टि पाई है, हम ससार की प्रत्येक वस्तु को अपनी आँखो देखना चाहते है, यह कम नही है। यदि हममे सुवुद्धि उत्पन्न हो गई है तो चिन्ता की कोई बात नही, क्योकि कुलीन जन की निर्धनता खलने वाली बात नही होती, उसकी बुद्धिहीनता या कुबुद्धि ही चिन्ता का कारण होती है। हम कुलीन है, हमारे पूर्वजो ने ज्ञान-विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र मे गम्भीर चिन्ता की थी, हमारा पुराना साहित्य यद्यपि अधिकाश खो गया है, तो भी जितना है उतना ही अत्यन्त विशाल और गहन है। हममे अगर आत्मचेतना आ गई है तो निराश होने का कोई कारण नही।

ज्यो-ज्यो भारतवर्ष अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे आलोचना का प्रधान विषय होता है त्यो-त्यो उसे उसके यथार्थ रूप मे जानने की प्रवृत्ति सारी दुनिया मे—विशेषकर एशिया मे—बढती गई है। इसीलिए हिन्दी अब भारतवर्ष की सीमा के बाहर भी पढी-पढाई जाने लगी है। उसके विचारको के आधार पर भारतवर्ष की आशा-आकाक्षा को समझने का प्रयत्न होने लगा है।

———

परिशिष्ट

: १ :

संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त परिचय

संस्कृत मे लिखे हुए ग्रन्थ

सन् १८४० ई० मे एलफिन्स्टन नामक यूरोपियन पडित ने हिसाब लगाकर देखा था कि सस्कृत साहित्य मे जितने ग्रन्थ विद्यमान है, उनकी सख्या ग्रीक-लैटिन मे लिखे हुए ग्रन्थो की मिली हुई सख्या से कही अधिक है। मगर उस समय तक सस्कृत के बहुत कम ग्रथ पाये गये थे। इसका अनुमान इसी से किया जा सकता है कि सन् १८३० मे फ्रेडरिक जैसे साहित्यान्वेपी को केवल साढे तीन सौ सस्कृत ग्रथो का पता था और सन् १८५२ मे वेवर ने अपने सस्कृत साहित्य के इतिहास मे जिन ग्रथो की चर्चा की थी उन सवकी सख्या ५०० के ही आस-पास थी। बाद मे वेवर की सगृहीत पुस्तको की सख्या १३०० हो गई थी। यदि १८४० मे ही एलफिन्स्टन की बात ठीक थी तो आज तो कहना ही क्या है। सन् १८९१ ई० मे थियोडोर आफ्रेक्ट ने 'कैटलॉगस केटलागॉरम' नाम की सूची तैयार की। इसमे उस समय तक के पाये गये समस्त सस्कृत ग्रथो के नाम थे। इसमे वर्णित ग्रथों की सख्या ३२ हजार के आस पास थी। और सन् १९१६ मे महामहोपाध्याय प० हरप्रसाद शास्त्री ने, जिन्हे नेपाल से बहुत-सी अज्ञात पुस्तको को प्रकाश मे लाने का श्रेय प्राप्त है, ४० हजार से ऊपर सस्कृत ग्रथो की चर्चा की थी। आज सख्या इससे भी कही ज्यादा है। तब से अब तक सुदूर मध्य एशिया, तिव्वत और नेपाल से बहुत से खोये हुए समझे जाने वाले तथा अल्पज्ञात ग्रथो का पता लगा है और लगता जा रहा है। हाल मे ही महापडित राहुल साकृत्यायन की तिव्वत-यात्रा ने इस सख्या को और भी अधिक बढा दिया है। नि सन्देह इस समय तक सस्कृत मे लिखे गये ग्रथो की सख्या आधे लाख के पार हो गई है। फिर भी सस्कृत ग्रथो की खोज का काम अभी बाल्यावस्था मे ही है। सन् १९१९ ई० मे, जब यह खोज का काम शुरू किया गया था, जर्मन विद्वान् श्लिगल को एक दर्जन से अधिक ग्रथो का भी पता न था।

इन ग्रंथो का वर्गीकरण

विण्टरनित्ज ने लिखा है कि 'लिटेरेचर' (साहित्य) शब्द अपने व्यापक अर्थ मे जो कुछ भी सूचित कर सकता है, वह सब सस्कृत मे वर्तमान है। धार्मिक और ऐहि-कता-परक (सेक्यूलर) रचनाएँ, महाकाव्य, लिरिक, नाटकीय और नीति-सम्बन्धी कविता, वर्णनात्मक, अलकृत और वैज्ञानिक गद्य,—सब-कुछ इसमे भरा पडा है।

साधारणतः निम्नलिखित कई अशो मे विभक्त कर लेने पर इस साहित्य की चर्चा सुगम होगी।

(१) वैदिक साहित्य

(२) वेदाग-साहित्य जिसमे शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्दशास्त्र और ज्योतिष सम्मिलित है।

(३) पुराण और इतिहास

(४) धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और कामशास्त्र

(५) दर्शन

(६) सस्कृत का बौद्ध और जैन साहित्य

(७) आयुर्वेद और अन्य उपवेद

(८) अलकृत काव्य, गद्य, नाटक, चपू और कहानियाँ

(९) नाटक और काव्य के विवेचनात्मक ग्रथ

(१०) सकीर्ण काव्य, धर्म और दर्शन पर टीकाएँ

(११) निबध

(१२) तत्र-ग्रथ और भक्ति-साहित्य

(१३) पत्थरो और ताम्रपत्रो का साहित्य

ये काहेपर लिखे गये है ?

सस्कृत मे ये ग्रथ नाना पदार्थो पर लिखे गये है जिनमे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ताड़ के पत्ते है। पजाब और काश्मीर को छोडकर बाकी सारे भारत मे इन पत्तो का उपयोग होता था। उत्तर भारत मे उन पर स्याही से लिखा करते थे और दक्षिण भारत मे लोहे की कलम से अक्षर कुरेद दिया करते थे, बाद को उस पर स्याही फेर देते थे। सबसे प्राचीन ताडपत्रो की पुस्तक सन् ई० की दूसरी शताब्दी की है। मकार्ट ने काशगर से जो प्राचीन हस्तलेख सग्रह किये थे, उनमे का एक ताडपत्र का ग्रथ सन् ईसवी की चौथी शताब्दी का है। जापान मे इस देश की सन् ईसवी की छठी शताब्दी की लिखी हुई दो पुस्तके 'प्रज्ञापारमिता-हृदय' और 'उष्णीषविजयधारिणी' सुरक्षित है।

ताडपत्रो के बाद भूर्ज-त्वक् या भोजपत्रो का स्थान है। मध्ययुग की भूर्जपत्र वाली पुस्तको की जिल्द भी बँधने लग गई थी। हिमालय के पाददेश मे इन पत्रो का अधिक उपयोग होता था। भूर्ज-पत्र का सबसे प्राचीन ग्रथ जो अब तक मिला है 'धम्मपद' (पाली) की एक प्रति है जो सन् ईसवी की तीसरी शताब्दी की है। सस्कृत की सबसे पुरानी पुस्तक जो भोजपत्र पर लिखी पाई गई है 'सयुक्त्यागम सूत्र' (बौद्ध) है जो सम्भवत चौथी शताब्दी की है।

कागज पर लिखी गई सबसे पुरानी पुस्तक ईसा की तेरहवी शताब्दी की बताई जाती है; पर पडितों का खयाल है कि मध्य एशिया मे गडी हुई सस्कृत की लिखी हुई जो पुस्तके कागज़ की प्राप्त हुई है,उनका काल सन् ईसवी की चौथी शताब्दी होना चाहिए।

इन चीजो के सिवा रुई के कपड़े, लकड़ी के पट्टे, रेशमी कपडे और चमडे पर भी सस्कृत पुस्तके लिखी जाती थी। इन चीजो पर लिखी पुस्तकें विभिन्न पुस्तकालयो मे सुरक्षित हैं। छोटे-छोटे दान-पात्र, प्रशस्तियाँ आदि तो पत्थर, ईट, सोने, चाँदी, ताँवे, पीतल, काँसे तथा लोहे के पत्तरो पर लिखी जाती थी।

ऊपर का दिया हुआ वर्गीकरण कालक्रमान्वयी भी कहा जा सकता है, हालाँ कि वह सम्पूर्णत कालक्रमान्वयी नही। लेकिन लक्ष्य करने की वात यह है कि अज्ञात-काल से आज तक सस्कृत साहित्य धारावाहिक रूप से बनता आ रहा है, कही भी इसमे छेद नही हुआ। रिकेट को गर्व है कि अग्रेजी साहित्य की यह विशेषता है कि उसकी धारावाहिकता (कण्टिन्युइटी) कही भी क्षुण्ण नही हुई, लेकिन सस्कृत साहित्य की हजारो वर्षों की धारावाही रचना के सामने अंग्रेज़ी के साहित्य की धारावाहिकता कितनी अल्प है।

वैदिक साहित्य
(१००० ई० पू० तक)

चारो वेदो के नाम सर्व-विदित है। इनमे सामवेद और यजुर्वेद का ज्यादा सम्बन्ध तो यज्ञो से ही है, लेकिन ऋग्वेद और अथर्ववेद नाना दृष्टियो से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। ऋग्वेद की ऋचाएँ कब बनी थी इस विषय मे नाना विज्ञजनो के नाना मत है, पर इतना निर्विवाद है कि सन् ई० से डेढ हजार वर्ष पहले ये ऋचाएँ बन चुकी थी। इनकी भाषा एक-सी नही है, कही-कही उसमे अत्यन्त प्राचीनता के चिह्न है और कही-कही अपेक्षाकृत कम प्राचीनता के। कुछ पण्डितो की राय मे सामवेद और अथर्ववेद के अनेक मन्त्र ऋग्वेद से भी बहुत पुराने है। अथर्ववेद मे ऐसे बहुत तरह के लोक-प्रचलित टोटको का सग्रह है जो आश्चर्यजनक रूप मे जर्मनी और पोलैण्ड मे प्रच-लित प्राचीन युग के टोटको से मिल जाते है। वेदो के जो भाष्य इस समय मिलते है, वे अपेक्षाकृत आधुनिक है। सायण और मध्व के प्रसिद्ध भाष्य चौदहवी सदी मे लिखे गये थे। वगाल मे प्राप्त नगुद-भाष्य दसवी सदी की रचना है। आलोचनात्मक दृष्टि से देखने वाले पण्डितो ने वताया है कि ये भाष्य अपेक्षाकृत आधुनिक परम्पराओ पर आश्रित है, इसीलिए कभी मन्त्रो के यथार्थ भाव को नही वताते। फिर भी, जैसा कि मैक्समूलर ने कहा है, यह तो मानना ही पडेगा कि सायण का भाष्य अन्धे की लकड़ी है। यूरोपियन पण्डितो के सत्प्रयत्न से इन प्राचीन मन्त्रो के समझने के अनेक द्वार उद्घाटित हुए है। जेन्दावस्ता के पाये जाने के बाद से इन अध्ययन को और भी बल मिला है। इसके अतिरिक्त असीरिया, मिस्र और वैविलोनिया मे आविष्कृत प्राचीन भग्नावशेषो को, पौराणिक कथाओ तथा अन्यान्य वातो ने इस दिशा मे वडी सहायता पहुँचाई है।

वैदिक साहित्य को पण्डितो ने तीन भागो मे विभक्त किया है, सहिता, जिसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है, ब्राह्मण और उपनिषद्। ब्राह्मण गद्य मे लिखे गये है और इनमे

कर्मकाण्ड की ही प्रधानता है। कब और कैसे अग्नि प्रज्वलित करना चाहिए, कुश किधर और क्यों रखना चाहिए आदि यज्ञ-सम्बन्धी अनेक छोटी-मोटी बातों का विवेचन किया गया है, तथा जगह-जगह ऐतिहासिक और परम्परा-प्राप्त कहानियाँ भी हैं जो बाद में चलकर पुराण और इतिहास का रूप धारण करती हैं। यह ध्यान देने की बात है कि ब्राह्मणों मे सम्पूर्ण सहिता को प्रामाण्य रूप मे स्वीकार कर लिया गया है, अर्थात् सहिता और ब्राह्मण-काल में भीतर काफी अन्तर वर्तमान था। लेकिन इससे यह नही समझना चाहिए कि सहिता और ब्राह्मणो के बीच मे कुछ और साहित्य बना ही नही। असल में ब्राह्मणो मे से ही अनेक लुप्त हो गये है और यह जानने का कोई उपाय नही रह गया है कि उनमें क्या था। ब्राह्मणो ने जिस दृष्टि से सहिता को देखा है वह यद्यपि कर्मकाण्ड-प्रधान है, फिर भी उसमे व्याकरण, यजुर्वेद, दर्शन आदि का अस्पष्ट रूप विद्यमान है। ब्राह्मणो के अन्त मे दार्शनिक अध्यायो के रूप मे आरण्यक और उपनिषद् है। इनमे आध्यात्मिक बातो का बड़ा गम्भीर विवेचन किया गया है। भारतवर्ष के सभी दार्शनिक सम्प्रदाय (बौद्धो और जैनों को छोड़कर) इन उपनिपदो में ही अपना आदि अस्तित्व स्वीकार करते हैं।

प्रधान-प्रधान ब्राह्मण ये हैं; ऐतरेय और शांखायन (ऋग्वेद); तैत्तिरीय (कृष्ण यजुर्वेद का); शतपथ (शुक्ल यजुर्वेद का); ताण्ड्य या पञ्चविंश, तवल्कार या जैमिनीय (सामवेद का), और गोपथ (अथर्ववेद का)। जैसा कि पहले ही बताया गया है ब्राह्मणो के अन्त मे अरण्यक हैं और आरण्यको के अन्त में उपनिषद्। उपनिषदो की संख्या वैसे तो बहुत है पर ग्यारह प्राचीन है—ऐतरेय और कौषीतकी (ऋग्वेद के); छान्दोग्य और केन (सामवेद के); तैत्तिरीय, कठ और श्वेताश्वतर (कृष्ण यजुर्वेद के); बृहदारण्यक, ईश (शुक्ल यजुर्वेद के) और प्रश्न, मुण्डक तथा माण्डूक्य (अथर्ववेद के)। महामहोपाध्याय पडित हरप्रसाद शास्त्री का विचार है कि सन् ईसवी से एक हजार वर्ष पहले तक यहाँ तक का साहित्य निश्चित रूप मे रचित हो चुका था।

वेदाङ्ग-साहित्य

(ई० पू० १०००-४०० ई० तक)

वैदिक साहित्य काफी बड़ा हो चुका था। उसकी वैज्ञानिक छान-बीन भी आरम्भ हो गई थी। वेदांग युग मे इन्ही प्रयत्नोंका सग्रह हुआ। उन दिनो पढ़ने-पढाने के लिए कण्ठस्थ करना निहायत जरूरी था, इसीलिए इस युग मे सूत्र रूप से बाते लिखी गईं। उद्देश्य यह था कि थोडे मे बहुत याद कर लिया जाय। वेदांग साहित्य-सूत्रो मे लिखा गया है। कही-कही ये सूत्र पद्य मे भी हैं पर अधिकतर गद्य मे हैं। वैदिक साहित्य स्वत- प्रमाण माना जाता था पर इस (वेदांग) श्रेणी के ग्रन्थो के लेखको का नाम प्रायः सर्वत्र पाया जाता है, अर्थात् यह साहित्य मनुष्यकृत माना जाता था। (१) शिक्षा में उच्चारण की विधियो का निर्देश होता है। इस अग पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये थे जो दुर्भाग्यवश अधिकतर लुप्त हो गये हैं। जो बचे है उनमे से कई यूरोपियन,

अमेरिकन और भारतीय पण्डितो द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हुए है। (२) कल्प-सूत्र तीन तरह के है; श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र और गृह्यसूत्र मे वैदिक यज्ञो का विधान किया गया है। इन सूत्रो को आश्रय करके रचित बहुत थोडा साहित्य प्राप्त हुआ है। इस समय इनके आधार पर लिखित साहित्य मे का अधिकाश सन् ईसवी की छठी से लेकर बारहवी शताब्दी तक ही लिखा गया था। धर्मसूत्रों मे ब्राह्मण के नित्य और नैमित्तिक कर्म का विधान है। छठी शताब्दी से लेकर आज तक इन सूत्रों को आश्रय करके एक विशाल साहित्य का निर्माण हुआ है। बाद की बनी स्मृतियो, टीकाओ, भाष्यो और निबन्धो मे इस साहित्य का प्रचुर प्रसार हुआ है। स्मृतियाँ, धर्मसूत्र तथा श्रौत और गृह्यसूत्रो मे द्विज के सस्कारों और अन्यान्य कर्मों का विधान है। उस युग के सामाजिक आदर्श और परिस्थिति का अध्ययन करने की दृष्टि से इन सूत्रो का बड़ा महत्त्व है। विण्टरनित्ज का कहना है कि 'गृह्यसूत्र' नृतत्त्वविशारदो के बड़े काम की चीज़ है। यह याद रखना चाहिए कि ग्रीक और रोमन सामाजिक विधान को जानने के लिए पण्डितो को कितना परिश्रम करना पडा है, कितने प्रकार की बहुधा विस्रस्त सामग्री की छान-बीन करनी पडी है, पर यहाँ भारतवर्ष मे अत्यन्त प्रामाणिक विवरण प्राप्त है और इन विवरणो को हम आँखोदेखा विवरण कह सकते है। ये सूत्र मानो प्राचीन 'फोकलोर जर्नल' है। इन तीन प्रकार के सूत्रो के बाद एक चौथे प्रकार का सूत्र है जो सीधे श्रौत-सूत्रो से सम्बद्ध है। इसे शुल्व-सूत्र कहते है। इसमे यज्ञवेदियों के माप करने की विधि है। भारतीय पण्डितो का दावा है कि शुल्व-सूत्रो मे रेखागणित सम्बन्धी नियमो का वैज्ञानिक व्यवहार ससार मे सबसे पहले हुआ था।

व्याकरण के सबसे प्रसिद्ध आचार्य पाणिनि का समय निश्चित रूप से ईसवी सन् से चार शताब्दी पहले है। इनकी लिखी अष्टाध्यायी की महिमा इस देश मे अब भी प्रतिष्ठित है। कहते है कि ससार मे इतना परिपूर्ण व्याकरण अब तक नही लिखा गया। अष्टाध्यायी मे ३८६३ सूत्र हैं, इन पर कात्यायन के शोधन और परिवर्तन-सम्बन्धी वार्तिक है। सूत्रो और वार्तिको की मिली हुई सख्या ५१०० से भी ऊपर है। इन दोनो पर पतजलि ने लगभग १५० ई० पू० मे अपना प्रसिद्ध महाभाष्य लिखा। पाणिनि के पूर्व और भी अनेक व्याकरण-सम्प्रदाय थे। पाणिनि को आधार करके बहुत से व्याकरण ग्रथ लिखे गये है। अकेली अष्टाध्यायी पर ५० से अधिक व्याख्याएँ थी, जिनमे की अधिकाश लुप्त हो गई है। पाणिनि के बाद, उन्ही की शैली और प्रतिपादित अर्थों के अनुकरण मे कई अन्य व्याकरण लिखे गये थे। इनमे प्रसिद्ध ये है—(१) कलाप (द्वितीय शताब्दी), (२) चान्द्र (षष्ठ शताब्दी), (३) जैनेन्द्र (आठवी शताब्दी), (४) शाकटायन (नवम शताब्दी), (५) सक्षिप्त सार (नवम शताब्दी), (६) सारस्वत (एकादश शताब्दी,) (७) हेमचन्द्र (बारहवी शताब्दी), (८) मुग्धबोध (तेरहवी शताब्दी), (९) सुपद्म (चौदहवी शताब्दी)। आजकल पाणिनि के सम्बन्ध मे सबसे लोकप्रिय ग्रन्थ भट्टोजि दीक्षित की सिद्धान्तकौमुदी है।

निरुक्त वैदिक निघण्टु के भाष्य के रूप मे सम्भवत. ईसा से छ सौ वर्ष पहले

लिखा गया था। इसमे वैदिक शब्दो की निरुक्ति बताई गई है। कौन-सा शब्द क्यो किसी विशेष अर्थ मे व्यवहृत हुआ है, यह बात समझाई गई है। आधुनिक भाषाशास्त्री इन सभी निरुक्तियो से सहमत नही होते, पर वे यह स्वीकार करते है कि वेदो को समझने के लिए निरुक्त नितान्त आवश्यक है। निरुक्त की एक टीका पाई गई है जो बारहवी शताब्दी के आस-पास की लिखी हुई है। इस सम्बन्ध मे यह ध्यान देने की बात है कि हिन्दुओ ने सन् ईसवी के बहुत पूर्व कोष-ग्रन्थ लिखे थे। इन कोषो मे विषयानुसार एकार्थ के शब्दों का सग्रह रहता था, ससार की किसी जाति ने इतने पुराने जमाने मे कोष नही लिखे। सन् ई० के आसपास का लिखा हुआ अमरकोष एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है और इस तरह के बीसियों कोष सस्कृत मे बने थे। आयुर्वेदिक वनस्पतियो के अर्थ और गुण के निदर्शक निघण्टुओ का वर्गीकरण आज भी विज्ञान-सम्मत समझा जाता है।

छन्द : शास्त्र का सबसे प्राचीन ग्रंथ पिंगल-छन्द सूत्र है। पिंगल कौन थे और कब पैदा हुए थे, यह अब भी निश्चित नही हुआ है। कुछ पण्डितो के मत से वे सम्राट् अशोक के गुरु थे। पिंगल का एक अन्य सस्करण प्राकृत पिंगल है जिसमे प्राकृत छन्दो के नियम बताये गये हैं, पर यह चौदहवी शताब्दी से अधिक प्राचीन नही है। इस विषय पर बहुत-से ग्रन्थ लिखे गये है पर सभी अपेक्षाकृत नवीन हैं।

वेदागो मे ज्योतिष एक महत्त्वपूर्ण विषय है। वेदाग-ज्योतिष नामक लगध-मुनिप्रणीत ग्रथ उपलब्ध हुआ है। इसके दो रूप है, ऋग्वेद का वेदाग और यजुर्वेद का वेदाग। दोनो मे बहुत थोडा अन्तर है। इनमे सब मिलाकर ४५ श्लोक है। इनमे की ज्योतिषिक गणना बहुत पुरानी है; केवल सूर्य और चन्द्रमा इन दो ही ग्रहों की मध्यम गति बताई है। दिन और रात की वृद्धि तथा क्षय को एक नियमित वेग से चालू मान लिया गया है। बाद के हिन्दू ज्योतिष को तीन स्कधों मे विभाजित कर सकते है—सहिता, गणित और जातक। प्राच्यविद्या-विशारदो मे से अधिकाश का मत है कि सहिता, स्कध मगो से[1] और जातक ग्रीको से ग्रहण किया गया था। इन तीनो स्कधो पर सस्कृत मे विशाल साहित्य का निर्माण हुआ है। विशेषकर गणित मे हिन्दुओ ने संसार को बहुत बडा ज्ञान दिया है, हालाकि उन्होने थोड़ा-बहुत ग्रीकों से भी ग्रहण किया है। आर्यभट्ट, लल्ल, वराह, ब्रह्मगुप्त, मुञ्जाल और भास्कराचार्य ने गणित-ज्योतिष को अभिनव समृद्धि से समृद्ध किया था। अत्यन्त आधुनिक काल मे भी सस्कृत मे ज्योतिष के ग्रथ बराबर लिखे जाते रहे हैं। म० म० चन्द्रशेखर सामन्त और म० म० प० सुधाकर द्विवेदी के ग्रथ इस विषय मे विशेष उल्लेख योग्य हैं।

पुराण इतिहास
(ई० पू० ६००—४०० ई० तक)

सूत्रकाल के अन्त मे सस्कृत मे एक विशेष जाति का छन्द बहुत लोकप्रिय

---

१. Mag 11

होने लगा था। इसका शास्त्रीय नाम 'अनुष्टुभ्' है पर साधारणत यह 'श्लोक' नाम से मशहूर है। पुराण और इतिहास का अधिकाश इसी श्लोक मे लिखा गया है। कहते हैं कि महाभारत और रामायण सन् ईसवी से लगभग चार सौ वर्ष पहले लिखे गये थे। महाभारत परम्परा-समागत इतिहासो का सग्रह था और रामायण परम्परा से प्राप्त काव्य या एपिक था। लेकिन इन दोनो ग्रथो को हम जिस रूप मे आज पाते है वह उतना पुराना नही है। समय-समय पर इनमे परिवर्तन होता रहा है। महाभारत साधारणत कई रूपो मे उपलब्ध होता है। उत्तर भारत मे उसका एक रूप है, दक्षिण भारत मे दूसरा और मलाबार मे तीसरा। तीसरा महाभारत, विद्वानो की राय मे, ई० पूर्व की दूसरी शताब्दी मे पूर्ण हो गया था। उत्तर और दक्षिण के महाभारत मे बहुत-सा प्रक्षेप है। रामायण भी पूर्वी भारत मे एक तरह की है, मध्य भारत मे दूसरी तरह की और पश्चिम भारत मे तीसरी तरह की। म० म० हरप्रसाद शास्त्री का कहना है कि रामायण के प्रथम और सप्तम काण्ड बाद के प्रक्षिप्त है।

पुराणो की सख्या इस देश मे कितनी है, यह बताना कठिन है। साधारणत अठारह महापुराण और इतने ही उपपुराणो की प्रधानता है, फिर भी पुराण नाम से प्रचलित ग्रथो की सख्या सौ से भी ऊपर है। पुराण कब बने थे, यह कहना बडा मुश्किल है। सभी पुराण एक ही समय मे नही बने। पर्जिटर, जो इस विषय के वैज्ञानिक विवेचक माने जाते है, कुछ पुराणो को सन् ईसवी के पूर्ववर्ती मानने मे नही हिचकते। एक अत्यन्त विवादास्पद सिद्धान्त जैकसन ने स्थिर किया था जिसके अनुसार सन् ई० के छ सौ वर्ष पूर्व पुराण नामक कोई ग्रन्थ था जिसने नाना सम्प्रदायो के हाथ मे पडकर नाना भाँति का रूप धारण किया है। आजकल यह विश्वास किया जाने लगा है कि पुराणो मे ऐसी बहुत-सी कहानियाँ और ऐतिहासिक घटनाएँ विकृत है जो आर्य-पूर्व-जातियो की चीज़ है। स्व० विद्ववर काशीप्रसाद जायसवाल ने पुराणो के आधार पर इतिहास की प्रामाणिक सामग्रियाँ सग्रह की है। सो कुछ भी क्यो न हो, म० म० हरप्रसाद शास्त्री का यह कहना बिलकुल ठीक है कि सन् ई० की पाँचवी शताब्दी मे पुराण तैयार हो चुके थे, यद्यपि बाद मे भी उनमे प्रक्षेप होता रहा है। इन पुराणो मे भारतीय धर्ममत, इतिहास और साधना के अध्ययन की प्रचुर सामग्री भरी पडी है। पौराणिक साहित्य बहुत बडा और मूल्यवान् साहित्य है। जैनो के भी बहुत से पुराण लिखे गये जो अधिकाश मे ब्राह्मणो के पुराणो की प्रतिद्वन्द्विता मे लिखे गये होगे।

धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और कामशास्त्र

कल्पसूत्रों की चर्चा करते समय बताया गया है कि इन सूत्रो को आश्रय करके एक विशाल साहित्य का निर्माण हुआ। स्मृतियाँ, जो इस विशाल साहित्य की अग हैं, ऊपर बताये हुए पुराण-काल मे ही अधिकतर लिपिबद्ध हुईं। सन् ईसवी के पहले इस प्रकार की अनेक स्मृतियाँ तैयार हो गई थी। मानव-धर्मशास्त्र या मनुस्मृति

इन्ही स्मृतियो के निचोड़ का सग्रह है। अर्थशास्त्र की भी अनेक पुस्तकें उस युग मे लिखी गई थी। अर्थशास्त्र-सम्बन्धी बहुत से सिद्धात विभिन्न आचार्यो के नाम पर चल पड़े थे। कौटिल्य का अर्थशास्त्र इन्ही सिद्धान्तो का सग्रह है। बाद मे भी इस विषय पर ग्रथ लिखे गये जिनमें से अधिकाश इस समय लुप्त हो गये है।

कामशास्त्र की भी उन दिनों काफी चर्चा थी। अनेक आचार्यों ने ऐहिक सुख भोग के नाना अगो पर ग्रथ लिखे थे। इन सबका सार सग्रह करके सन् ई० की पहली या दूसरी शताब्दी में वात्स्यायन ने अपना प्रसिद्ध कामसूत्र लिखा। बाद मे कामशास्त्र अत्यन्त सीमित अर्थ मे बरता जाने लगा और सीमित अर्थ के विधायक बहुत-से ग्रंथ लिखे गये।

दर्शन
(सन् ई० २०० से ८०० ई० तक)

भारतीय दर्शनो के मूल मे वेद और उपनिषद् है। जैन और बौद्ध दर्शन भी जो अपने को वैदिक सम्प्रदाय का प्रतिद्वन्द्वी समझते हैं, इनसे प्रभावित हुए थे। हाल ही मे विश्वास किया जाने लगा है कि अध्यात्मवाद का मूल उत्स भारतवर्ष की आर्येतर जातियाँ थी। जो हो, इसमे सन्देह नही कि जिस रूप मे आज हम भारतीय दर्शन को पाते है उसकी प्रेरणा वेदो से प्राप्त हुई थी। दर्शन छ माने जाते हैं यद्यपि चौदहवी शताब्दी में मध्वाचार्य ने सोलह दर्शनो का उल्लेख किया था। छः मुख्य दर्शनो के नाम इस प्रकार है: साख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमासा और उत्तरमीमासा (वेदान्त)। ये दर्शन सूत्ररूप मे लिखे गये थे और इनको समझने के लिए भाष्यो की बडी ज़रूरत थी। सबसे पुराना भाष्य मीमांसा (पूर्व) पर शबर-भाष्य है। शबर के ही सम्प्रदाय में सुप्रसिद्ध कुमारिलभट्ट हुए जिन्हे बौद्धो को भारतवर्ष से निर्मूल करने का नाम प्राप्त है। इसके बाद न्याय का वात्स्यायन-भाष्य है। फिर वैशेषिक दर्शन पर का प्रशस्तपाद-भाष्य है। आगे चलकर न्याय और वैशेषिक एक मे मिल गये और 'नव्य न्याय' नाम से उत्तरकाल में एक प्रबल साहित्य सृष्ट हुआ। योगदर्शन के भाष्य-कार व्यास का समय, म० म० हरप्रसाद शास्त्री के मत से, पाँचवी सदी होना चाहिए। सांख्य के मूल सूत्र और भाष्य शायद खो गये है। साख्य-सूत्र नाम से प्रचलित ग्रन्थ बाद का है। इस दर्शन पर सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ ईश्वरकृष्णाचार्य की सांख्यकारिका है, जो शायद सन् ईसवी की पाँचवी शताब्दी (४७६ ई०) की लिखी है। कुछ यूरोपियन पण्डितो का विश्वास है कि जैन और बौद्ध दर्शन के मूल मे साख्य दर्शन है जो भारतवर्ष का अत्यन्त प्राचीन मत है। सांख्यकारिका पर गौडपाद और वाचस्पति मिश्र की टीकाएँ प्रसिद्ध है।

वेदान्तसूत्र के सबसे बड़े और पुराने भाष्यकार अद्वैतवाद के गुरु शंकराचार्य हैं। वेदान्तसूत्र के सर्वाधिक प्रामाणिक यूरोपियन पण्डित डायसन की राय मे शकर

ससार के तीन महाबुद्धिशालियो मे से[1] थे। ये तीन है—प्लेटो, शकर और काण्ट। शकराचार्य के मत पर बहुत बडा साहित्य रचित हुआ है। शकर के सिवा वेदान्त सूत्रो के और भी अनेक भाष्यकार हुए है जिनमे रामानुज, मध्व, विष्णुस्वामी, वल्लभ आदि प्रधान हैं। इनमे से प्रत्येक आचार्य के मत की पुस्तको का अपना-अपना विशाल सग्रह है। म० म० हरप्रसाद शास्त्री का अनुमान है कि प्रत्येक सम्प्रदाय की पुस्तको की अलग-अलग सख्या ५०० से कम न होगी।

इन आस्तिक दर्शनो के सिवा ऐसे दर्शन भी है जिन्हे नास्तिक कहते थे। ये दर्शन न तो वेदो मे ही विश्वास करते थे और न आत्मा मे ही। चार्वाक इनमे बहुत प्रसिद्ध है, पर इनके ग्रन्थ सम्पूर्ण रूप से लुप्त हो गये है। इनके सिवा बौद्ध और जैन दर्शन का विशाल साहित्य है। जैन न्याय भारतीय दर्शनो मे अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस दर्शन की उत्तम पुस्तके दूसरी से छठी शताब्दी तक लिखी गई थी, हालाँकि जिन सिद्धान्तो से इन ग्रन्थो को प्रेरणा मिली थी वे बहुत पुराने थे। बारहवी सदी में हेमचन्द्र जैन दर्शन के प्रख्यात आचार्य हुए। अपने समय मे शायद भारतवर्ष मे वे अद्वितीय प्रतिभाशाली दार्शनिक थे।

संस्कृत का बौद्ध साहित्य
(सन् २०० ई०—८०० ई०)

सन् ईसवी की दूसरी शताब्दी के आस-पास बौद्धो के महायान मत का प्रादुर्भाव हुआ। इत मत के अनुयायियो को शक और सीथियन राजाओ का आश्रय प्राप्त हुआ और देखते-देखते यह मत भारतवर्ष की सीमा लाँघकर अन्य देशो मे चला गया। इस मत के आचार्यो ने पाली मे न लिखकर सस्कृत मे ग्रथ लिखे जो बहुत-कुछ पाली ग्रन्थो के अनुवादमात्र थे, पर एक अश तक मौलिक भी थे। अश्वघोष ने बुद्धचरित नामक एक काव्य लिखा जिसे यूरोपियन पण्डित बहुत पसन्द करते हैं। इन्होने कुछ नाटक और अन्य काव्य भी लिखे जो बड़े ही उत्तम उतरे। इन बौद्ध आचार्यो ने सस्कृत मे और भी बहुत-से ग्रन्थ लिखे, खासकर इनके दर्शन और तर्क-शास्त्र के ग्रथ बहुत उच्च कोटि के थे। दुर्भाग्यवश बौद्ध धर्म के इस देश से लोप होने के साथ इन ग्रथो का भी लोप हो गया। अब तक इस मत के जो कुछ ग्रथ उपलब्ध हुए हैं वे मध्य एशिया, तिब्बत और नेपाल मे पाये गये हैं। तिब्बती, चीनी आदि भाषाओ मे इन ग्रन्थो के अनुवाद विद्यमान है। म० म० पण्डित विधुशेखर शास्त्री ने इन अनुवादो के आधार पर कई मूल ग्रन्थो का उद्धार किया है। इधर हाल मे ही महापण्डित राहुल साकृत्यायन ने कई महत्त्वपूर्ण ग्रथ तिब्बत मे पाये हैं।

आयुर्वेद और अन्य उपवेद

चारो वेदो के चार उपवेद हैं। इनका नाम है आयुर्वेद, धनुर्वेद, गाधर्ववेद-

---

१ Gigantic intellects

और शिल्पवेद या विश्वकर्म-शास्त्र । चौथा उपवेद किसी-किसी के मत से तत्र है। इनमे सर्वाधिक उल्लेख योग्य आयुर्वेद है । अथर्ववेद मे आयुर्वेदिक औषधियो का प्रचुर वर्णन है। आयुर्वेद के आठ अग है —शल्य,[१] शालाक्य,[२] कायचिकित्सा, भूतविद्या,[३] कौमार-भृत्य, अगदतन्त्र[४], रसायनतन्त्र[५] और बाजीकरण[६] । सन् ईसवी के बहुत पहले इन अगो पर अनेक बडी-बडी पोथियाँ लिखी गई थी। पर दुर्भाग्यवश उनका अब नाम-भर शेष रह गया है । ग्रन्थो का सार सकलन करके चरक और सुश्रुत ने अपनी-अपनी प्रख्यात संहिताएँ लिखी जो बाद मे चलकर सारे ससार के चिकित्सा-शास्त्र को प्रभावित करने मे समर्थ हुईं । बौद्ध त्रिपिटको के सारे चीनी सस्करणो से जाना जाता है कि चरक महाराज कनिष्क (सन् ई० की प्रथम शताब्दी) के राजवैद्य थे । सुश्रुत का भी लगभग यही काल होना चाहिए, क्योंकि काशगर मे मिले हुए बोअर मैनुस्क्रिप्ट्स से (जो निश्चय ही चौथी शताब्दी के होने चाहिए) चरक और सुश्रुत के उद्धरण पाये जाते है । पुरानी सहिताओ मे भेड़ सहिता की एक प्रति पायी गई है । चरक और सुश्रुत की सहिताओ के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रथ वाग्भट का अष्टागहृदय है । इन तीनो को आयुर्वेद की बृहत्त्रयी कहते है । बाद मे इस शास्त्र पर असख्य ग्रन्थ लिखे गये और अब तक लिखे जा रहे हैं । इन ग्रन्थो मे से कई के तिब्बती अनुवाद सुरक्षित है जो मूल सस्कृत मे खो गये माने जाते है । आधुनिक काल मे म० म० गणताथसेन का 'प्रत्यक्षशारीरम्' आयुर्वेदिक साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं ।

अन्य उपवेदो मे गान्धर्ववेद की पुस्तकें पाई जाती है, पर अधिकतर बाद की लिखी है । शिल्पशास्त्र की पुस्तको का बहुत कम पता लग पाया है । इस विषय के अधिकांश ग्रन्थ लुप्त हो गये है । कोई ग्रन्थ मेरे देखने मे नही आया । केवल अग्नि-पुराण मे, जिसे उस युग का विश्वकोष कह सकते है, इसकी चर्चा है । तत्रशास्त्र की चर्चा अन्यत्र की गई है ।

अलंकृत काव्य, गद्य, नाटक, चम्पू और कहानियाँ

सन् ईसवी के आरम्भ तक सस्कृत मे कविता या तो धार्मिक उद्देश्य से लिखी जाती थी या आध्यात्मिक उद्देश्य से। (विण्टरनित्ज़ का खयाल है कि बहुत प्राचीन युग मे ऐसी कविता भी जरूर लिखी जाती थी जिसका उद्देश्य केवल रस-सृष्टि था । नल-दमयन्ती का उपाख्यान एक ऐसा ही काव्य है जो बाद मे महाभारत मे अन्तर्भुक्त हो गया ।) पर बाद मे बात ऐसी नही रही । सन् ईसवी के आस-पास कविता केवल रस-सृष्टि के उद्देश्य से लिखी जाने लगी और इस क्षेत्र मे सस्कृत के कवियो ने कमाल किया । कालिदास के अमर काव्य रस-जगत् की अनमोल सम्पत्ति है । बाद मे माघ, भारवि और श्रीहर्ष की मनोहारिणी रचनाओ ने सस्कृत साहित्य को अधिक समृद्ध किया । सैकडो कवियो के प्रबन्ध-काव्यो और उद्भट रचनाओ से सस्कृत का साहित्य

---

१ Major Surgery. २. Minor Surgery. ३. Demonology. ४. Toxicology ५. Elixirs
६. Aphrosidiacs

बेजोड हो गया है।

पद्यमय काव्य के साथ ही गद्यमय काव्य का भी सस्कृत मे विकास होने लगा था। इतना कलामय और 'रिद्मिक' गद्य ससार की और किसी भाषा ने नही पैदा किया। वसुबन्धु की वासवदत्ता और बाणभट्ट की कादम्बरी अपने ढग की अनोखी रचनाएँ है। गद्य और पद्य के मिलाये हुए रूप मे एक और तरह की रचना भी सस्कृत साहित्य की एक विशेषता है। इसे चम्पू कहते है। गद्य का एक दूसरा रूप पञ्चतन्त्र आदि कहानियो के रूप मे पाया जाता है। वेनिफी ने पहले पञ्चतन्त्र की कहानियो का अनुवाद करके यूरोपियन कहानियो से तुलना की। उन्हे इस निष्कर्ष पर पहुँचना पडा कि ससार की कहानियो का मूल भारतवर्ष ही है। पचतन्त्र की कहानियो ने ससार की सारी भाषाओ के साहित्य को आश्चर्यजनक रूप मे प्रभावित किया है। पचतन्त्र का माहात्म्य सारे ससार मे प्रतिष्ठित हो गया है। वेनिफी के प्रयत्न से एक नये शास्त्र का ही जन्म हुआ जिसे कहानियो की आलोचना का तुलनात्मक साहित्य कहा जाता है। गुणाढ्य ने लगभग दो हजार वर्ष पहले पैशाची प्राकृत मे बृहत्कथा नामक कथा का ग्रन्थ लिखा था। यह मूल ग्रथ खो गया है पर उसके सस्कृत रूपांतर, जिनमे कथासरित्सागर, बृहत्कथा-मजरी, बृहत्कथा श्लोक सग्रह आदि मुख्य है, पाये जाते हैं। इन कहानियो का आश्रय करके सस्कृत मे अनेक कथा-ग्रन्थ लिखे गये है।

नाटक भी सस्कृत के कवियो की अपनी विशेषता है। ये ग्रीक नाटको के समान नही है। प्रो० सिलवाँ लेवी ने कहा है कि भारतीय प्रतिभा ने एक नई चीज को पैदा किया है जिसे सूत्ररूप मे 'रस' कहा जा सकता है, अर्थात् भारतीय नाटककार अभिहित[१] नही करता, व्यग्य[२] करता है। शूद्रक का मृच्छकटिक यूरोपियन दृष्टि से भी एक सफल नाटक है। इसकी रचना सन् ईसवी की तीसरी शताब्दी मे हुई थी। बहुत दिनो तक विश्वास किया जाता था कि यह सस्कृत का आदि नाटक है। पर अब यह विश्वास निराधार साबित हुआ है। श्री गणपति शास्त्री ने भास के नाटकों का उद्धार किया है। ये नाटक सन् ईसवी के पहले के है। मध्य एशिया से कुछ बौद्ध नाटको का भी उद्धार हुआ है। फिर कालिदास के नाटक हैं जिनमे से एक अभिज्ञान शाकुन्तल सम्पूर्ण जगत् का हृदयहार बन चुका है। भवभूति का उत्तर-चरित भी समान रूप से समादृत हुआ है। श्रीहर्ष की रत्नावली भारतीय आलोचको की टेकनिक की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। मुद्राराक्षस और वेणी-सहार अपने ढग की अनोखी रचनाएँ है। नाटक बहुत-से बने और अब भी बनते जा रहे हैं। कुछ आधुनिक सस्कृत विद्वानो ने भी इस दिशा मे अच्छा कार्य किया है।

नाटक और काव्य के विवेचनात्मक ग्रन्थ

नाटक और नाट्यकला-सम्बन्धी आलोचना इस देश मे बहुत पुरानी है। कुछ पण्डितो की राय मे वह वेदो से भी बहुत पुरानी है। सन् ईसवी के बहुत पूर्व अनेक

१ Express २ Suggest

नाट्यसूत्र रचे जा चुके थे। इनमे नाटको का ही विवेचन नही था, रस, अलकार, सगीत, अभिनय आदि काव्य-सम्बन्धी सभी विषयो का समावेश था। सन् ईसवी के आरम्भ के समय इन सभी ग्रन्थो का सार सकलन करके भारती नाट्यशास्त्र सगृहीत हुआ। इसके बाद भामह और दण्डी के अलकार-विवेचन के ग्रन्थ पाये जाते है जो शायद पाँचवी और छठी शताब्दियो मे लिखे गये थे। वामन, रुय्यक, राजशेखर आदि अनेक आचार्यों ने अपने-अपने विशेष काव्य-सिद्धान्त के प्रतिपादनात्मक अलकार-ग्रन्थ लिखे। आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक मे अत्यन्त विद्वत्ता के साथ इस बात का प्रतिपादन किया कि ध्वनि ही काव्य की आत्मा है; रस सर्वोत्तम ध्वनि है। आनन्दवर्धन के मत को सर्वाधिक बल अभिनवगुप्त जैसे प्रतिभाशाली टीकाकार से मिला। फिर नाना सिद्धान्तो पर गम्भीर विवेचना करके मम्मट ने ईसा की दसवी शताब्दी मे काव्यप्रकाश लिखा जो इस विषय का सर्वोत्तम ग्रन्थ माना जाता है। मम्मट के बाद उल्लेख योग्य आचार्य साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ और रसगगाधरकार जगन्नाथ हुए। पण्डितराज जगन्नाथ स्वय अच्छे कवि थे। उनके विषय मे कहा जा सकता है कि वे आलोचको मे सबसे बड़े कवि और कवियो मे सबसे बड़े आलोचक थे। इन आचार्यो के बाद और भी अनेक पण्डितो ने ग्रन्थ और टीकाएँ लिखी। पर अलकार शास्त्र के इस अभ्युदय से वास्तविक काव्य को लाभ नही पहुँचा। इन अलकारो ने फुटकर श्लोको की प्रथा को उत्तेजित किया और उक्ति चमत्कार पर जोर दिया। यह एक आश्चर्य की बात है कि काव्य-विवेचना जिस समय अपने चरम उत्कर्ष पर थी, कविता उसी समय गिरती जा रही थी।

संकीर्ण काव्य, धर्म और दर्शन पर टीकाएँ
(८००—१४०० ई०)

काव्य के अपकर्ष-काल मे भी सस्कृत साहित्य मे अच्छी कविताओ की कमी न थी, पर इन कविताओ मे ज्यादातर कृत्रिम वाक्य-विन्यास और दरबारीपन आ गया था। इस काल मे कुछ जीवन-चरित, ऐतिहासिक प्रबन्ध लिखे गये। पर इस युग की सबसे बडी विशेषता है धर्मशास्त्रो की टीकाएँ। ये टीकाएँ कभी-कभी विराट् मौलिक ग्रन्थ हुआ करती थी। टीकापन इनमे नाममात्र को ही रहता था। मनु के टीकाकार कुल्लूक भट्ट, मेधातिथि और गोविन्दराज टीकाकार के रूप मे ही विख्यात है। अपरार्क, कर्क, नारायण, वरदराज, असहाय, रगनाथ, सायण आदि आचार्य अपनी टीकाओ से अमर हो गये है। इन टीकाओ मे टीकाकारो के अद्भुत पाडित्य और बहुश्रुतता को देखकर दग रह जाना पडता है।

पर इससे भी अधिक आकर्षक है इस युग की दार्शनिक भाष्यो की टीकाएँ। न तो दर्शनो पर के भाष्य ही महज टीका है और न इन भाष्यो की टीकाएँ ही। मूल को अपने विशेष सिद्धान्त का समर्थक सिद्ध करने के लिए ही ये भाष्य लिखे गये थे और इन भाष्यो की टीकाओ मे विषय को और भी सावधानी से, और भी सूक्ष्मता के साथ निवृत्त

किया गया है। भाष्यकारो की भाँति ये टीकाकार भी असाधारण प्रतिभाशाली पण्डित थे। सस्कृत साहित्य का अधिकाश पाण्डित्य इन टीकाकारो के ही हाथ रक्षित हुआ है। वाचस्पति मिश्र ने छहो दर्शनो पर टीकाएँ लिखी थी। नव्य न्याय के ग्रन्थो मे टीकाएँ मूलग्रन्थ से कही अधिक जटिल समझी जाती हैं। एकाधिक वार टीका की टीका तथा उसकी भी टीका होती है और फिर भी टीका करने का अवसर रहा ही करता है। आये दिन पण्डितगण टीका की चौथी, पाँचवी और छठी पुश्त तक तैयार करते रहते हैं। यह क्रम आज भी चल रहा है।

निबन्ध

राजा भोज एक तरह से अन्तिम हिन्दू सरक्षक थे जिन्होने केवल विद्वानो को आश्रय ही नही दिया, नये सिरे से ग्रन्थ भी लिखे। इन्होने ज्योतिष, तत्र और स्मृति पर ग्रंथ लिखे। वाद मे मुसलमानी शासन के प्रभाव से मौलिक ग्रथो की वृद्धि रुक गई। इसी समय वडे-वडे निवन्ध लिखे गये जिनमे शत-शत प्रामाणिक ग्रथो के मतो की आलोचना करके शास्त्रीय व्यवस्थाओ का निर्देश होता था। कन्नौज के लक्ष्मीधर; कर्नाटक के मध्वाचार्य, वगाल के शूलपाणि और जीमूतवाहन, मिथिला के चण्डेश्वर और वाचस्पति मिश्र, उडीसा के विद्याधर और नरसिंह, बुन्देलखण्ड के मित्र मिश्र, कुमायूँ के अनन्तभट्ट और तिलगाने के देवान्नभट्ट, काशी के कमलाकर भट्ट और नवद्वीप के रघुनन्दन आदि पण्डितो के निवन्ध-ग्रन्थों मे अद्भुत पाण्डित्य का परिचय मिलता है।

तन्त्र-ग्रन्थ और भक्ति-साहित्य

म० म० प० हरप्रसाद शास्त्री का विश्वास है कि तन्त्र सातवी शताब्दी मे भारत मे आये। उसी समय नाथ-सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ था और इनके प्रधान आचार्य, मीननाथ और गोरक्षनाथ ने इसके सम्वन्ध मे अनेक ग्रथ लिखे थे। किंतु ऐसे अनेक पण्डित है जो इस मत मे सन्देह करते हैं और विश्वास करते हैं कि अज्ञात काल से यह मत इस देश मे वर्तमान है। हाल ही में स्वर्गीय श्री वुडरफ के तत्त्वावधान मे इग्लैण्ड मे तन्त्र सोसायटी स्थापित हुई है जिसने तन्त्र के अनेक प्राचीन ग्रथो को प्रकाशित किया है। तन्त्रो के सम्वन्ध मे अभी विशेष कार्य नही हुआ है। लेकिन तन्त्र की सैकड़ो पुस्तके विभिन्न पुस्तकालयो में सुरक्षित है। तत्रो का वनना उन्नीसवी सदी तक जारी रहा है।

इस युग मे एक वहुत वडा भक्ति-साहित्य रचित हुआ जिसका अधिक सम्वन्ध वैष्णव भक्तों से है। भक्ति-साहित्य के अधिकाश ग्रन्थ दक्षिण और वगाल मे रचित हुए। वंगाल के गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय मे भक्ति-मूलक नाटक, चम्पू, निवन्ध,—सव कुछ लिखे गये हैं, यहाँ तक कि व्याकरण भी हरिनाम से विभूपित करके लिखे गये है। इन आचार्यो मे चैतन्य महाप्रभु के शिष्य रूप सनातन और जीवगोस्वामी का नाम

विशेष रूप से उल्लेख्य है। भक्ति-साहित्य के साथ ही एक अनोखा साहित्य इस युग मे रचित हुआ जो ससार के साहित्य मे विरल है। यह है स्तोत्र-साहित्य। जैनो, वैष्णवो, शैवों और शाक्तो के इस विशाल साहित्य की तुलना नही की जा सकती।

पत्थरों और ताम्रपत्रों का साहित्य

सस्कृत-साहित्य का एक बहुत बडा हिस्सा पुस्तको के बाहर शिलाओ, पर्वत-पृष्ठों, मन्दिरो और ताम्रपत्रो पर बिखरा हुआ है। सबसे पुरानी लिपियाँ ईसवी सन् से भी पुरानी है। इन्हे महाराज अशोक ने लिखवाया था। परन्तु ये पाली मे है। सस्कृत की लिपियाँ इसके बाद मिलती है। इन लेखो से महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक अनुसन्धान हुए हैं। महाक्षत्रप रुद्रदामा का खुदवाया हुआ गिरनार का शिलालेख (१५० ई०) गद्यकाव्य का उत्तम नमूना है। इसमे अलकारो का उपयोग ही नही है, अलकार-शास्त्र का भी उल्लेख है। जब तक यूरोपियन पण्डितो ने इधर ध्यान नही दिया था, साहित्य का यह अग उपेक्षित और अज्ञात पडा हुआ था। पर आज, यद्यपि ये अब भी सम्पूर्णत उद्धृत नही हुए है, कोई भी सस्कृत का पण्डित इनको जाने बिना अपने को पूर्ण नही समझ सकता। इन विशाल लेखों का सग्रह बीसियो जिल्दो मे हुआ है और होता जा रहा है।

फुटकर विषय

सस्कृत-साहित्य के अनेक अगो पर यहाँ कुछ भी नही कहा गया है। इसमे शिल्प-शास्त्र है, वास्तु-विज्ञान है, क्रीड़ापरक ग्रथ है, नाचने और गाने की विद्या है, पशुओं और पक्षियो के स्वभाव और पालन-पोषण की विद्या है, सामुद्रिक शास्त्र है, अरबी और फारसी विद्याओं का अनुवाद है, व्यवहार-शास्त्र है, नीति-ग्रथ है और सबके ऊपर सुभाषितो का अतुलनीय भण्डार है। अनेक विषयो के ग्रन्थ लुप्त हो गये है, क्वचित् ये मिलते रहते है और प्रकाशित किये जाते है। पर अधिकाश विषयो के ग्रथ नाम-शेष रह गये है और उनका परिचय अन्यान्य ग्रथो के उद्धरणो से मिला करता है। इसके अतिरिक्त पाली, प्राकृत और अपभ्रश का समूचा साहित्य किसी-न-किसी रूप में सस्कृत को आश्रय करके गठित हुआ था। आगे के पृष्ठो मे कुछ विस्तृत रूप से इनकी चर्चा की जा रही है।

अन्तिम बात

जिस भाषा के ग्रन्थो की सख्या अधिकांश नष्ट हो जाने पर भी आधे लाख से ऊपर चली गई है,—और इन ग्रथो मे से सैकडो ऐसे हैं जो दस हजार या उससे भी अधिक कभी लाख-लाख श्लोको से बने है, जिस भाषा के साहित्य की रचना कम-से-कम पाँच हजार वर्षो से अविच्छिन्न भाव से हो रही है, जिस भाषा के ग्रन्थो की रचना, पठन-पाठन और चिन्तन मे भारतवर्ष के हजारो सर्वोत्तम मस्तिष्क सैकड़ो

पुश्त तक लगे रहे हैं और आज भी बीसियो देशो के सैकडो मनीषी जिस भाषा की ओर से नवीन प्रकाश पाने के लिए आँखे बिछाये हुए है, उस भाषा के साहित्य का परिचय इन कई पृष्ठो मे देना असभव है। सक्षेप मे इतना ही कहा जा सकता है कि हजारो वर्ग-मील मे विस्तृत करोडो की वास-भूमि इस महादेश की हजारो वर्ष की चिरन्तन साधना का सर्वोत्कृष्ट सार इस भाषा मे सञ्चित है। सस्कृत भाषा ससार की अद्वितीय महिमाशालिनी भाषा है।

: २ :

महाभारत क्या है ?

महाभारत को केवल एक ग्रथ या एक महाकाव्य कहने-भर से इसके बारे मे कुछ भी नही समझा जा सकता। असल मे, जैसा कि सुप्रसिद्ध जर्मन पण्डित विण्टरनित्ज ने कहा है, महाभारत अपने-आप मे सम्पूर्ण एक समग्र साहित्य (Whole Literature) है। महाभारत शब्द का अर्थ महायुद्ध है, क्योकि पाणिनि (४-२-५६) के मत से 'भारत' का अर्थ सग्राम ही होता है। पर जान पड़ता है, 'भारत' शब्द का सम्बन्ध भरत-वश से है, क्योकि स्वय महाभारत मे ही इस कथा को 'महाभारत-युद्ध' (१४-८१-८) और 'महाभारताख्यान' (१-६२-३९) कहा गया है। सम्भवत 'महाभारत' शब्द इन्ही शब्दो का सक्षिप्त रूप हो, इसीलिए पण्डितो ने महाभारत का अर्थ किया है, 'भरत वश वालो के युद्ध की कथा'। स्वय महाभारत मे इस नामकरण का एक मजेदार कारण दिया हुआ है। एक बार देवताओ ने इस रहस्य को चारो वेदो को तराजू के एक पलड़े पर और महाभारत को दूसरे पलडे पर रखकर तौला। महाभारत भारी न निकला। इसीलिए 'महान' और 'भारवान' (भारी) होने के कारण यह 'महाभारत' कहा जाने लगा (१-१-२६९-७१)।

ऋग्वेद मे इन भरत-वश वालो का उल्लेख है। ब्राह्मण-ग्रन्थो मे भरत को दुष्यन्त और शकुन्तला का पुत्र बताया गया था। इन्ही भरत के वश मे कुरु हुए जिनकी सन्तानो मे आपसी झगडे के कारण कभी घोर युद्ध हुआ था। भारतवर्ष के पुराने और नये साहित्य मे इस युद्ध का इतना अधिक उल्लेख है कि उसकी चर्चा करना भी अनावश्यक जान पडता है। प्रधानतः महाभारत इन्ही कुरुवशियो के युद्ध की कहानी है।

किन्तु महाभारत केवल इस युद्ध की ही कहानी नही है। इस महाग्रथ का बहुत-सा अश इस युद्ध की कहानी से किसी प्रकार सम्बद्ध नही है। शत-शत वर्षो तक मूल कहानी के इर्द-गिर्द अनेक प्राचीनतर आख्यान और तत्त्ववाद जोडे जाते रहे है। वे आख्यान मूल कहानी मे इतने प्रकार से और इतने रूप मे आ मिले है कि शायद यह निर्णय कभी नही हो सकेगा कि मूल कहानी क्या थी और उसमे कौन-सी कहानी कब जोडी गई। असल मे महाभारत उस युद्ध की ऐतिहासिक, नैतिक, पौराणिक उपदेशमूलक और तत्त्ववाद-सम्बन्धी कथाओ का विशाल विश्वकोष है। भारतीय दृष्टि से महाभारत पाँचवाँ वेद है, इतिहास है, स्मृति है (शकराचार्य), शास्त्र है और

साथ ही काव्य है। आज तक किसी भारतीय पण्डित या आचार्य ने इसकी प्रामाणिकता पर सन्देह नही किया। कम-से-कम दो हज़ार वर्ष से यह भारतीय जनता के मनोविनोद, ज्ञानार्जन, चरित्र-निर्माण और प्रेरण-प्राप्ति का साधन रहा है।

स्वय महाभारत अपने विषय मे कहता है—"जैसे दही मे मक्खन, मनुष्यो मे ब्राह्मण, वेदो मे आरण्यक, औषधो मे अमृत, जलाशयो मे समुद्र और चतुष्पदो मे गौ श्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त इतिहास मे यह 'भारत' श्रेष्ठ है (१-१-२६१-३)। इस आख्यान को सुनने के बाद अन्य कथाएँ उसी तरह फीकी मालूम होगी जिस प्रकार कोकिल की वाणी सुनकर काक की वाणी सुनना। जैसे पचभूत से लोक की तीन सविधियाँ उद्भूत होती है, उसी प्रकार इस इतिहास को सुनकर कवि-बुद्धियाँ उत्पन्न होती हैं।" (१-२-३८२-३)

व्यासदेव ने महाभारत की कथा वैशम्पायन नामक अपने शिष्य को सुनाई। इन्ही वैशम्पायन ने नागयज्ञ के अवसर पर यह कथा दूसरी बार सुनाई। तीसरी बार सूत-पुत्र शौनक ने ऋषियो को सुनाई। सारा महाभारत वैशम्पायन और जनमेजय के सवाद के रूप मे कहा गया है। इन्ही सवादो के भीतर अन्यान्य चरित्रों के सवाद होते रहते है। इन अन्तःसंवादों मे जो बात विशेष रूप से याद रखने की है वह यह है कि युद्ध की सारी कथा, जिसे महाभारत का केन्द्र कहा जा सकता है, सजय ने धृतराष्ट्र को सुनाई है। पण्डितो का विश्वास है कि इस प्रकार सवाद के रूप मे लिखा जाना ही महाभारत की प्राचीनता के प्रमाणो मे से एक है। बाद मे महाभारत का यह ढग पुराणो ने ग्रहण किया। पर यह ध्यान देने की बात है कि वाल्मीकीय रामायण मे इस प्रकार के सवाद-सूचक पृथक् वाक्याश (जनमेजय उवाच) नही है।

उपर्युक्त कथा से इतना स्पष्ट है कि महाभारत को तीन बार तीन वक्ताओ ने तीन प्रकार के श्रोताओ को सुनाया था। आदिपर्व मे बताया है कि उपाख्यानो को छोडकर २४००० श्लोको की सहिता उन्होने लिखी है। फिर उसी अध्याय मे यह भी कहा गया है कि व्यासदेव ने ६० लाख श्लोक का काव्य लिखा था जिसमे ३० लाख देवो के लिए, १५ लाख पितरो के लिए, १४ लाख गधर्वो के लिए और बाकी १ लाख मनुष्यो के लिए लिखे गये थे (१-१-१०१)। इन्ही एक लाख श्लोको का यह विशाल काव्य आज का महाभारत है, इसलिए इसे 'शतसाहस्री सहिता' या 'सौ हज़ार श्लोको का सग्रह-ग्रथ' कहा जाता है। आगे चलकर पाठकों को मालूम होगा कि इस बात का पक्का सबूत पाया गया है कि कम-से-कम दो हज़ार वर्ष पहले महाभारत मे एक लाख श्लोक मौजूद थे।

कलकत्ते से छपे हुए महाभारत के १८ पर्वों मे ९००९२ श्लोक हैं। इसमे हरिवश भी, जो महाभारत का खिल या परिशिष्ट है, जोड दिया जाय तो श्लोक सख्या १०६४६६ हो जाती है। हरिवश मे एक भविष्यपर्व नामक पर्व है, पण्डितो की राय मे यह पर्व बहुत बाद का प्रक्षिप्त होना चाहिए। अगर इस पर्व के श्लोको को छोड़ दिया जाए तो सम्पूर्ण महाभारत और हरिवश मे कुल मिलाकर १०१०५४

श्लोक होते हैं। यह संख्या एक लाख के बहुत निकट है। बम्बई से छपे हुए महाभारत मे इससे २०० के करीब श्लोकों का अन्तर है।

महाभारत की मूल कहानी में परिवर्तन

जब कहा जाता है महाभारत की मूलकथा मे परिवर्तन हुआ है तो इसका यह अर्थ नही है कि सचमुच किसी ने बैठकर खास उद्देश्य को लेकर कहानी को बदला था। शताब्दियों तक महाभारत की कहानी सूतो के मुख मे फलती-फूलती रही। सजय भी सूत और लोमहर्षण भी सूत-पुत्र थे। अन्तिम बार वैशम्पायन ने जनमेजय को जो कहानी सुनाई, उसमे निश्चयपूर्वक पांडवों की और श्रीकृष्ण की प्रशसा थी। वर्तमान महाभारत के श्रीकृष्ण एक अद्भुत व्यक्तित्व रखते हैं। पाण्डवो की ओर से जहाँ कही अन्यायाचरण हुआ है उसके सूत्रधार विचित्र रूप से वे ही रहे है; फिर भी महाभारत मे वे भगवान् के अवतार है, और उनके द्वारा अनुप्रेरित अन्यायाचरण को भी महाभारत मे उनका अलौकिक चरित्र बताया गया है। जान पड़ता है कि महाभारत ने जिन दिनों वर्तमान रूप धारण किया था, उन दिनो भागवत मत का प्राबल्य था। इस भागवत मत मे श्रीकृष्ण परम दैवत के रूप में स्वीकार किये गये थे। यह दूसरी बात है कि द्वारका के राजा श्रीकृष्ण (जो महाभारत मे अपनी कूटनीति के लिए प्रसिद्ध है) और भागवतों के परम दैवत श्रीकृष्ण मूलत एक ही व्यक्ति न हो और बाद में चलकर एक मे मिल गये हों; पर इस बात मे कोई सन्देह नही कि वर्तमान महाभारत में सबसे अद्भुत और सबसे विशिष्ट चरित्र श्रीकृष्ण का है। भगवद्गीता जैसी महिमाशालिनी पुस्तक के वे गायक हैं।

ब्राह्मण-ग्रन्थों और वेदो मे भी यत्र-तत्र दो झगड़ने वाली क्षत्रिय जातियो का उल्लेख है: ये हैं कुरु और पांचाल जातियाँ। इससे कुछ पण्डितों ने अनुमान किया है कि असली महाभारत की लड़ाई कुरुओ और पांचालो की थी, पाण्डवो का स्थान उसमे गौण था। यह ध्यान देने की बात है कि पाण्डवो में से कोई भी पाण्डु के अपने पुत्र नही थे, सब कुन्ती या माद्री के पुत्र थे। हिन्दुओं में उन दिनो एक स्त्री के बहु-विवाह का एकमात्र उदाहरण इन पाण्डवो ही के घर पाया जाता है, इसीलिए कुछ वायु-विकार-ग्रस्त आलोचक यहाँ तक कह गये हैं कि पाण्डव वास्तव में उत्तर-पार्वत्य प्रदेश के अधिवासी थे (जिनमे स्त्री का बहु-विवाह अब भी प्रचलित है) और कुन्ती ने वहीं से इनकी आमदनी की थी और अपने पुत्र बताकर दुर्योधन के राज्य का हकदार बनाना चाहा था।

जो कुछ हो, इस बारे में प्रायः सभी पडित एकमत हैं कि महाभारतीय कहानी का स्वर बाद में बदल गया है। यही कारण है कि दुर्योधन, कर्ण आदि पुरुषों के दो-दो प्रकार के चरित्र महाभारत मे ही, पास-ही-पास, लिखे पाये जाते हैं। अभी-अभी लिखा मिलता है कि कर्ण के समान उदार, बहुश्रुत, वाग्मी और सत्पुरुष दूसरा नही था (और समग्र महाभारत के चरित्रों पर विचार करने से सचमुच कर्ण एक अद्वितीय मनुष्य जान

पडते है) और थोडी देर वाद ही वताया जाता है कि उसके जैसा दम्भी और अन्याय-कारी भी दूसरा नही।

संसार में महाभारत की कथाओं की लोक-प्रियता

महाभारत की मूल कहानी के इर्द-गिर्द बहुत-सी प्राचीन वीर-गाथाएँ, नीति और उपदेश की कथाएँ, वैराग्य और मोक्ष को समझने वाली कहानियाँ आ जमी है। इनमे से वहुतेरी बहुत प्राचीन है। इन कहानियो के सभ्य भाषाओ मे अनुवाद हो चुके है। कई कथाएँ एक ही भाषा मे तीन-तीन, चार-चार बार अनूदित हुई है। शकुन्तला, ययाति, नहुप, नल, रामचन्द्र, विदुला, सावित्री आदि की कहानियाँ (उपाख्यान) वहुत लोकप्रिय हुई हैं। इन उपाख्यानो को पश्चिमी पडितो ने Epic within Epic या महाकाव्य के भीतर महाकाव्य' नाम दिया है। असल मे ये उपाख्यान अपने-आप मे पूर्ण है और मानवीय मनोविकारो के बडे सजीव और सरस चित्र है।

ऊपर जिन कहानियो की चर्चा की गई है उनके अनुवाद अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, इटालियन आदि भापाओ मे वहुत समादृत हुए है। सन् १८१६ मे एफ० बप्प ने नल की कहानी लैटिन अनुवाद के साथ प्रकाशित कराई। श्लिगल जैसे मनीषी ने इस कहानी को पढकर लिखा था—

'मैं सिर्फ इतना ही कहूँगा कि मेरी समझ मे करुणा तथा भावना की दृष्टि से और भावो की कोमलता तथा विमोहक शक्ति के खयाल से नल-दमयन्ती का उपाख्यान अद्वितीय है। इसकी रचना इस ढग से की गई है कि वह सबको आकर्षित करती है, चाहे वह वूढा हो या जवान, उच्च जातीय हो या नीच जातीय, रसज्ञ आलोचक हो अथवा सहज-वुद्धि से चीजो को पसन्द करने वाला हो।'

इसी तरह सावित्री और सत्यवान की कहानी वाहर की दुनिया मे बहुत लोक-प्रय हो गई है। विण्टरनित्ज ने इस कथा के बारे मे लिखा है—

'चाहे जिस किसी ने सावित्री के काव्य की रचना की हो, चाहे वह कोई शूद्र रहा हो या ब्राह्मण, वह अवश्यमेव सब कालो का एक सर्वोच्च कवि था। कोई महान् कवि ही इस उत्कृष्ट महिला-चरित्र को इतने मनमोहक और आकर्षक ढग से चित्रित कर सकता था और शुष्क उपदेश की मनोवृत्तियो मे पडे विना भाग्य और मृत्यु पर प्रेम तथा पातिव्रत्य की विजय दिखला सकता था; और प्रतिभाशाली कलाकार ही जादू की तरह ऐसे आश्चर्यजनक चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित कर सकता था।'

उज्ज्वल चरित्रों का वन

महाभारत को उज्ज्वल चरित्रो का वन कहा जा सकता है। वह कवि-रूपी माली का यत्नपूर्वक सँवारा हुआ उद्यान नही है जिसके प्रत्येक लता-पुष्प-वृक्ष अपने सौन्दर्य के लिए वाहरी सहायता की अपेक्षा रखते हैं, वल्कि यह अपने-आपकी जीवनी शक्ति से परिपूर्ण वनस्पतियो और लताओ का अयत्न परिवर्धित विशाल वन है जो अपनी उपमा

हो चुका था, उसने निश्चय ही कई सौ वर्ष पहले रूप-परिवर्तन करना बन्द कर दिया होगा। इसीलिए पण्डितो का अनुमान है कि कम-से-कम आज से दो हज़ार वर्ष पहले महाभारत को यह विशाल रूप प्राप्त हो गया होगा।

महाभारत के जितने रूप हैं, उनमे दो मुख्य हैं उत्तरी रूप और दक्षिणी रूप। इतना निश्चित है कि किसी एक ही मूल रूप के ये दो रूपान्तर अति प्राचीन काल में पृथक् हो गये थे। उत्तरी रूपान्तर के कई उपभेद है जो मूलत एक होकर भी कई बातो मे अपना विशेष रूप रखते है। काश्मीर मे उत्तरी रूपान्तर दो उपभेदो मे बँट गया है: शारदा मे लिखा हुआ और देवनागरी लिपि मे लिखा हुआ। पूर्वी प्रान्तो मे आकर उत्तरी महाभारत ने तीन भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण किये है नेपाली, मैथिली और बगाली। ये तीनो रूप अपनी-अपनी विशेष लिपियो मे लिखे पाये जाते हैं। युक्तप्रान्त और मध्यप्रदेश मे उत्तरी महाभारत का एक सामान्य रूप पाया जाता है जिसे पण्डितो ने देवनागरी रूपान्तर नाम दिया है। इस प्रकार उत्तर मे आकर महाभारत ने छ. भिन्न-भिन्न रूप धारण किये है।

दक्षिणी महाभारत के तीन मुख्य रूप है—मलयालम, तेलुगु और ग्रन्थलिपि मे लिखा हुआ। तेलुगु और ग्रन्थ-लिपियो के पाठ प्राय मिलते है, पर मलयालम का महाभारत इन दोनो से अलग है। किसी-किसी पण्डित के मत से यह अन्तिम महाभारत अपने मूल रूप के बहुत निकट है।

महाभारत का काल

स्वभावत ही यह प्रश्न हो सकता है कि महाभारत का काल क्या है ? जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, निश्चयपूर्वक इतना ही कहा जा सकता है कि आज से लगभग दो हजार वर्ष पहले महाभारत को वर्तमान रूप प्राप्त हो चला था, परन्तु महाभारत की अनेक कहानियाँ उतनी ही पुरानी है जितने कि स्वय वेद। महाभारत के काल के सम्बन्ध मे नाना विचारो की अवतारणा के बाद प्रो० विण्टरनित्ज़ निम्नलिखित नौ सिद्धान्तो पर पहुँचे है—

(१) महाभारत की कितनी ही पौराणिक कहानियाँ, काव्य और वर्णनात्मक कथाएँ वैदिक काल तक पहुँचती है। (२) लेकिन वैदिक काल मे 'भारत' या 'महाभारत' नामक किसी काव्य का अस्तित्व नही था। (३) नीति-सम्बन्धी कितनी ही सूक्तियाँ और कथाएँ जो वर्तमान महाभारत के अन्तर्गत सगृहीत है, वैराग्य-प्रवण सम्प्रदायो (जैन, बौद्ध आदि) से ग्रहण की गई है। इनमे से कितनी ही ईसवी सन् से पूर्व की छठी शताब्दी तक की हो सकती है। (४) यदि ई० पूर्व की छठी से लेकर चौथी शताब्दी तक कोई महाभारत नामक काव्य-ग्रथ रहा भी हो, तो यह बौद्धधर्म की आवास-भूमि मे अपरिचित ही था, क्योकि बौद्ध ग्रथो मे इसकी कोई चर्चा नही मिलती। (५) ई० पूर्व की चौथी शताब्दी से पहले महाभारत-काव्य के अस्तित्व का कोई निश्चित प्रमाण नही पाया जाता। (६) सन् ई० के पूर्व की चौथी शताब्दी से